डाक-पंजीयन म.प्र./भोपाल/4-472/2021-23
पोस्टिंग दिनांक : प्रतिमाह दिनांक 2 से 3, पृष्ठ सं. 164
प्रकाशन दिनांक : 1 से 1 प्रतिमाह

आर.एन.आई क्र. : 38470/83
आई.एस.एस.एन. क्र. : 2456-7167

अक्षरा

221

साहित्य की मासिकी

मूल्य 50/-

41 वाँ वर्ष

अगस्त 2023

साधो सबद साधना कीजै
अजित वडनेरकर

स्तंभ
रमेश दवे, रामेश्वर मिश्र पंकज, कुसुमलता केडिया

अनुवाद
विभा खरे

आलेख
देवदत्त माधव धर्माधिकारी, चन्द्र भूषण पाण्डेय, शंकर शरण, राजीव खंडेलवाल , अजहर हाशमी, आनन्दप्रकाश त्रिपाठी

संस्मरण
प्रकाश मनु, राजेश श्रीवास्तव, स्मिता मिश्र, मुकुल अमलास, सविता मिश्र

साक्षात्कार
ओम निश्चल

आत्मकथ्य
रामदरश मिश्र

अक्षरा
अंक-221
मूल्य 50/- रुपये

वरिष्ठ छायाकार
जगदीश कौशल

गिरिजा कुमार माथुर

जन्म – 22 अगस्त 1919
प्रयाण – 10 जनवरी 1994

श्री गिरिजा कुमार माथुर का जन्म मध्यप्रदेश के अशोकनगर में हुआ था। उनके पिता श्री देवीचरण माथुर स्कूल अध्यापक थे। साहित्य संगीत में उनकी विशेष रुचि थी। वे कविता भी लिखते थे। प्रारम्भिक शिक्षा झाँसी से प्राप्त करने के बाद उन्होंने लखनऊ विश्वविद्यालय से एम. ए. अंग्रेजी और एल. एल. बी. की उपाधि प्राप्त की। कुछ समय वकालत करने के बाद श्री माथुर ने दिल्ली आकाशवाणी और दूरदर्शन में काम किया।

हिन्दी में उनकी कविता यात्रा सन् 1941 में प्रकाशित उनके काव्य संग्रह 'मंजीर' से हुई जिसकी भूमिका महाप्राण कवि निराला जी ने लिखी थी। सन् 1943 में अज्ञेय जी द्वारा सम्पादित 'तार सप्तक' में उनका नाम भी शामिल था। कविता और गीतों के अलावा उन्होंने एकांकी नाटक, नाटक, कहानी और आलोचना सम्बंधी लेखन भी किया। 'मंजीर' के अतिरिक्त नाश और निर्माण, धूप के धान, 'जन्मकैद' मुझे और अभी कहना है, शिला पंख चमकीले, जो बँध नहीं सका, मैं वक्त के हूँ सामने, भीतरी नदी की यात्रा, छाया मत छूना मन उनके काव्य संग्रह हैं। मैं वक्त के हूँ सामने के लिए उन्हें साहित्य अकादमी पुरस्कार तथा व्यास सम्मान प्रदान किया गया। उन्हें शलाका सम्मान से भी पुरस्कृत किया गया। उनकी कविताओं में लोक–चेतना और वैज्ञानिक–चेतना दोनों के दर्शन होते हैं। उनका लिखा भावान्तर गीत 'हम होंगे कामयाब' समूहगान के रूप में अत्यंत लोकप्रिय है। श्री गिरिजा कुमार माथुर जी का दुर्लभ फोटो लगभग 65 वर्ष पुराना है जिसे भोपाल के सुप्रसिद्ध वयोवृद्ध छायाकार श्री जगदीश कौशल ने दिनांक 23 फरवरी 1959 को उनके रीवा प्रवास के अवसर पर क्लिक किया था।

अक्षर

221

यू.जी.सी. द्वारा मान्यता प्राप्त
41 वाँ वर्ष

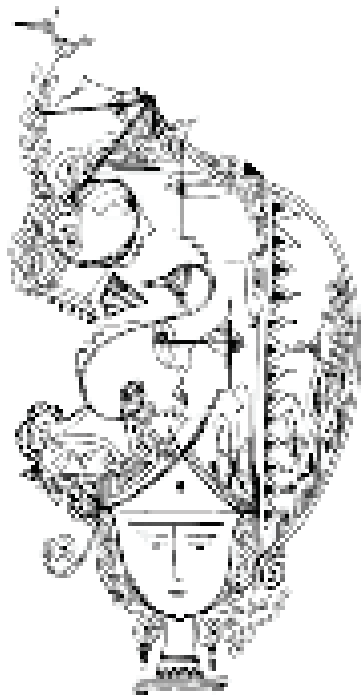

मनोज श्रीवास्तव
प्रधान सम्पादक

जवाहर कर्नावट
प्रबंध सम्पादक

जया केतकी
सम्पादन सहयोग

सुधा बाथम
अक्षर–संयोजन

वार्षिक सदस्यता शुल्क : 500 रुपए
दस वर्षीय सदस्यता शुल्क : 5000 रुपए
एक प्रति 50 रुपये
विदेशों के लिए : एक अंक : 10 डॉलर, वार्षिक : 120 डॉलर
चेक या ड्राफ्ट 'म.प्र. राष्ट्रभाषा प्रचार समिति- 'अक्षरा' के नाम देय
ऑनलाइन पेमेंट के लिये- इंडियन बैंक, हिन्दी भवन शाखा, भोपाल
Ac/ No. 50413818696, IFSC- IDIB000T610

सम्पर्क : म.प्र. राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, हिन्दी भवन, श्यामला हिल्स, भोपाल - 462002 (म.प्र.)
दूरभाष : 0755- 2660909, (लेखाविभाग-2661087)
ई-मेल - **myakshara18@gmail.com**
hindibhawan.2009@rediffmail.com
वेबसाइट - **www.akshara.page, www.madhyapradeshrashtrabhasha.com**

पन्द्रह अगस्त को जन्मे रामदरश मिश्र के भीतर एक स्वातंत्र्य-चेतना तो रही आई। सोने की नहीं, सरकंडे की कलम से लिखने को संकल्पित इस रचनाकार को बहुत पहले ही यह पता लग गया था कि-'**हमेशा आकाश से झरती है एक नदी/ और हमेशा ऊपर ही ऊपर कोई पी लेता है।**' अब यह कविता 1984 के पहले की है और एक जनवरी 1984 को प्रकाशित 'दिन एक नदी बन गया' कविता-संग्रह में संकलित भी है। क्या आपको नहीं लगता कि कविता राजनीति की तुलना में जमीन की धड़कन पहले सुनती है। जो बात बाद में बने प्रधानमंत्री श्री राजीव गाँधी ने महसूस की कि दिल्ली से चला हुआ एक रुपया गाँव तक पहुँचते पन्द्रह पैसे रह जाता है, वह कवि ने पहले पता कर ली। यानी यह जो आकाश से झरती नदी है, यह आकाश सरिता है, यह गंगा नहीं है कि जो शिव की जटाओं से नीचे उतर तक पृथ्वी पर किसी भगीरथ प्रयास से आ जाती है। इसलिए रामदरश मिश्र इस नदी का नाम नहीं लेते। वे इसे आकाशगंगा या स्वर्गंगा भी नहीं कहते। इस विद्रूप को बरतने के लिए वे हमारी संस्कृति की एक पावन स्मृति को उपमा के रूप में भी उपयोग न करने की कवि-सतर्कता और संवेदनशीलता का परिचय देते हैं। शासकीय धनराशि बर्फ का सिक्का है जितने हाथों से गुजरता जाता है, उतना-उतना गलता जाता है। ग्रासरूट (मैं तृणमूल कह सकता था पर अब तो वह शब्द भी राजनीतिक अभिप्रेतों से ग्रस्त हो गया है।) तक पहुँचते-पहुँचते दुर्घटना वही घटती है जिसकी ओर रामदरश मिश्र अपनी कविता में इंगित कर रहे हैं। और देखिए कि ये तो पाठक को मिले सिग्नल्स हैं कि जिन्हें हम इस तरह से डिकोड कर पा रहे हैं अन्यथा कवि तो आकाश और नदी की बात कर रहा है।

पर इसे यों भी न लें कि रामदरश मिश्र जी की सीधी टिप्पणी संभव नहीं। उनकी एक कविता कुछ ऐसी है :

'बजबजाती हवाओं के बीच
कच्ची दीवार की टूटी छाया
उसके तले
उसी तरह बैठा हुआ वह . . .
उसके साथ एक कुत्ता, एक बकरी
और उसका साया
. . . सामने के राजमार्ग से
बार-बार गुजरते
हाथी-घोड़ों के जुलूस की
वह जय बोलता है।'

यह कविता भी 1983 की है। और राजनीतिक टिप्पणी की ओर इशारा करता हुआ मात्र एक शब्द है इसमें 'राजमार्ग'। बाकी पूरी विडंबना को इसमें विरोध के एक दृश्य के माध्यम से चित्रित कर दिया गया है।

रामदरश मिश्र अपनी कविताओं में ही नहीं अपने उपन्यासों में इस स्वतंत्रता के मानी तलाशते रहते हैं। मसलन उनका एक उपन्यास 'अपने लोग' है। उसे उन्होंने 1976 में प्रकाशित किया। यह उपन्यास महाविद्यालय परिसरों के राजनीतिकरण के बहाने एक ऐसी तस्वीर प्रस्तुत करता है जिसमें वैचारिक ध्रुवों के बीच मोहभंग ही नहीं है, उन ध्रुवों पर भी है। प्रतिक्रियावादी ताकतों को उपन्यासकार ने अपनी ही ओर से कोई सहानुभूति नहीं दी है किंतु उपन्यास में असली विडम्बना प्रगतिशीलों की है जिनकी बड़ी-बड़ी बातों का खोखलापन उस विचारधारा के समर्थकों तक का मन उचाट कर जाता है। लेकिन उपन्यास के भीतर सबसे बड़ा आकर्षण तो इसके पात्रों का निजी और पारिवारिक जीवन है जिसे बहुत-सी सहजता और रुचि के साथ रामदरश मिश्र कई प्रसंगों में उकेरते हैं। परिवार वहाँ जीवन की तरह आता है, किसी विचारधारा की तरह नहीं। शैक्षणिक संस्थाओं में जहाँ विचारधारात्मक कर्कशता है, वहाँ परिवार तमाम असुविधाओं

और अप्रसन्नताओं के बावजूद जैसे एक शरण-सा है। हालाँकि इसके नायक को अपने घर के शोर में भी अपनी प्रकृति की सीमाओं का ज्ञान है। उसके वर्णन में मिश्र जी का उपन्यासकार लिखता भी है : **'लेकिन वह क्या करे? वह इसी वातावरण से पैदा होकर भी धीरे-धीरे उस जीवन की ओर बढ़ता गया जो सोचने के लिए विचारने के लिए, पढ़ने के लिए, लिखने के लिए, सोने के लिए, जागने के लिए एक एकांत चाहता है। वह एक विशेष दूरी में किसी भी दूसरे का हस्तक्षेप सह नहीं पाता और न दूसरों में हस्तक्षेप करना चाहता है। वह जानता है, यह जीवन-प्रक्रिया धीरे-धीरे उस परिणति तक पहुँच जाती है जहाँ दो जीवन आमने-सामने या पास-पास होकर भी एक-दूसरे के होने का कोई दबाव महसूस नहीं करते, सभी अपना-अपना सुख-दुख कंधे पर लादे हुए मौन चलते रहते हैं। वह जानता है कि यह परिणति उसे पसंद नहीं है, वह इससे घृणा करता है, किंतु एक विशेष दूरी में वह इस एकांत की कामना अवश्य करता है।'** यहाँ उपन्यासकार समाजवाद की सामूहिकता को आदर्श मानने वाले अपने इस नायक की एकांतप्रियता को कितनी-कितनी बारीकियों में पकड़ता है। यहाँ विचार नहीं, परिस्थिति नहीं है, प्रवृत्ति है। फिर भी घर या परिवार में जो मृदुलताएँ हैं, जो हमदर्दियाँ हैं-वे उन कठोरताओं और निष्ठुरताओं जो कि नायक कॉलेज परिसर में पाता है, के विरुद्ध कहीं एक वटवृक्ष की छाया रचती हैं। मिश्र जी के उपन्यासकार का संदेश संभवत: अपने उस आखिरी दृश्य में है जहाँ प्रमोद नामक यह नायक नदी किनारे खड़ा हुआ सोच रहा है : **'तुम्हारा कितना जल हमारे भीतर भरा है माँ! तुम्हीं ने तो हमारे खेतों को पानी दिया है, अन्न दिया है, तुम्हीं ने हमारे बचपन को गढ़ा है . . . तुम्हीं मुझमें जी रही हो। माना कि तुम्हारा समाजवाद अधूरा है किंतु समतामूलक तो है। क्या तुम्हारे समाजवाद से हम कुछ भी सीख नहीं सकते? कुछ भी नहीं . . . ?'**

इस प्रश्न के साथ उपन्यास खत्म हो जाता है। पर यह बताकर कि किसी वैचारिक, किसी कृत्रिम, किसी आरोपित समाजवाद से उन समस्याओं का हल नहीं होना जो हमारे युग के मनुष्य को घेरे हुए हैं। उनकी असलियत और उथलापन नायक ने देख लिया है। देख-देख कर उसका मन भर गया है। संभवत: आँखें भी। वह जिसे प्राप्य मानता है वह एक नदी का समाजवाद है। जो नैसर्गिक हो। मनुष्य के स्वभाव की विकृति वाला नहीं। प्रकृति वाला असली समतामूलक। सोचिए कि पूरा उपन्यास मानवीय क्रिया-कलापों और घटनाओं की संकुलताओं और जटिलताओं से भरा हुआ है पर उसकी अंतिम आकांक्षा उसी सरलता की है जो एक नदी के प्रवाह में प्रतिबिम्बित और चरितार्थ होती है।

यही रामदरश मिश्र जी की विशेषता है कि जब उनके दौर के कई संभावनाशील लेखकों का पतन किसी न किसी अवधारणात्मक आग्रह की खाई में फ्री फॉल की तरह हो गया तब भी मिश्र जी ने उन सीमाओं के उत्तीर्ण करने का उपक्रम और पुरुषार्थ जिंदा रक्खा। मैं उनकी कविताएँ या उपन्यासों के विवरण मात्र दृष्टांत की तरह दे रहा हूँ। संपादकीय के छोटे से परिसर में न एक शती का जीवन समा सकता है, न उनका शतग्रंथी लेखन। और रामदरश मिश्र की प्रतिभा भी ऐसी है कि वह कविता की भी एक विधा तक सीमित नहीं रही है, छंद मुक्त या छंदोबद्ध, गीत या ग़ज़ल-बल्कि रचनात्मक लेखन की सभी विधाओं में-कहानी, उपन्यास, निबंध, डायरी, यात्रा-वर्णन, संस्मरण आत्मकथा सब में। ऐसे में उसे समेटना और मुश्किल हुआ जाता है।

रामदरश मिश्र के एक बहुत पुराने उपन्यास की याद है मुझे 1969 में शाया हुआ था। 'जल टूटता हुआ' यह शीर्षक था जो नाम से ही जाहिर करता था कि किसी कविहृदय के द्वारा ही दिया जा सकता था। और उसके उपन्यासों के शीर्षकों में उनके कवि की यह सेंधमारी इतनी बार दिखती है कि आप उसे दुर्लक्ष्य कर ही नहीं सकते। जैसे 'पानी के प्राचीर' (1961), आकाश की छत (1979), थकी हुई सुबह (1994), या कहानी संग्रहों में भी : एक वह (1974), दर्द की हँसी आदि। ये सब शीर्षक ही पता देते हैं कि कविता इनके सृजनात्मक गद्य में आती ही चली गई है। 'जल टूटता हुआ' का उपन्यासकार कविमनस्क है। पर अपने विवरणों में वह उपन्यास पूरी तरह से ग्रामीण जीवन की कड़वी हकीकतों को बताता है। वह रागदरबारी की तरह का व्यंग्य नहीं है पर उसमें यथार्थ है-भले ही वह करुण हो, भले ही वह उदास हो। उस उपन्यास की भाषा इतनी विश्वसनीय है, इतनी देहाती और वह किसी आंचलिकता के अनुरोध पर नहीं आई है। वह तो ऐसा लगता है उपन्यासकार की रगों में बहती है। यदि

उच्च शिक्षा की बदहालियाँ 'अपने लोग' में हैं तो स्कूल शिक्षा की इस उपन्यास में। इसमें जातिवादी मानस तो बताया गया है पर वह सुविधा का जातिवाद है। जैसे एक प्रसंग में उपन्यासकार बताता है : '**लगता है, जहाँ स्वार्थ सधता है, जहाँ खतरा नहीं होता, वहाँ लोग ब्राह्मणत्व के होने में कसर नहीं रखते। उस दिन हंसिया को सभी पीट रहे थे। सबके भीतर का मिथ्या ब्राह्मणत्व उभर आया था। बेचारे गरीब को मारने में कोई खतरा नहीं था लेकिन आज ब्राह्मणत्व के नाम पर कोई खतरे में नहीं कूदा, और नहीं तो भूमिहार के पैसे से पवित्र होकर लोग अब्राह्मण भी बन गये। एक अजब असंगति, एक विरोध, एक दोगलापन उभरकर फैलता जा रहा है।...**'

लेकिन कितनी ही कड़वाहटों के बाद भी इस उपन्यास का अंत सुखांत है। और ऐसे है कि अप्रामाणिक कहीं से भी नहीं लगता।

एक कहानीकार की, एक कथा कहने की शैली रामदरश जी की स्वाभाविक शैली है, इसलिए अपनी आत्मकथा 'जहाँ मैं खड़ा हूँ' में भी वह कायम रहती है। पता नहीं क्यों है पर अधिकांश आत्मकथाओं के साथ मैंने यह त्रासदी घटते देखी है। उसमें 'आत्मा' तो बहुत-बहुत ज्यादा होता है, पर 'कथा' उतनी-उतनी कम होती है। लगभग एक प्रतिलोमी अनुपात में। जितना ज्यादा आत्मा, उतनी कम कथा। 'जहाँ मैं खड़ा हूँ एक उपन्यास का-सा आस्वाद देती है। है मिश्र जी की जीवन -यात्रा, पर है एक कहानी-सी। खड़े होने की लेखकीय घोषणा के बावजूद इसके नैरेशन में जबर्दस्त बाढ़ है जो बहा ले जाती है। उसमें क्रमिकता अनुभव की है, तिथियों की नहीं। यानी इस जीवन-यात्रा के वृत्त में दिनांक, वर्ष आदि के स्थूल और रूखे सूखे विवरण नहीं है। रामदरश मिश्र इन्हें कथा-रस में बाधक समझते हैं और अपनी इसी समझ के कारण भारत के उन ऋषियों की परंपरा में आ जाते हैं जिन्होंने अपने इतिहास की वस्तुनिष्ठताओं को स्वयं के बाबत जानबूझकर मिटाया था। इस शैली को अपनी इस पुस्तक में उन्होंने यह बताया है कि -'**यह एक वर्तुल जिंदगी थी जिसमें तमाम चीजें एक-दूसरे में समाई हुई थीं, जिंदगी खानों में बँटी हुई नहीं थी।**' यह पुन: रैखिक linear (लीनियर) होने से इंकार करता हुआ वक्तव्य है। अपनी एक अन्य पुस्तक 'छोटे-छोटे सुख' में मिश्र जी अपने एक निबंध में पुन: अपने उस गाँव में लौटते हैं। इस समय तक उनकी उम्र अस्सी वर्ष की हो चुकी थी। शरीर के शैथिल्य की सीमाएँ बचपन की उस आदिम पुकार के सामने विवश हो गईं थीं। तो वे वहाँ चले ही आते हैं और कैसे कितनी-कितनी यादें उस गाँव में जाते ही उनको घेर लेती हैं उस अवस्था में जबकि लोग स्मृति लोप या स्मृति भ्रंश के शिकार हो जाते हैं। यह अंत:प्रेरणा का लेखन नहीं है। यह लेखन किसी बहुत पुराने दौर के दोस्तों से मिलने जैसा है, पोखर के पानी में नहाने जैसा।

◆ ◆ ◆ ◆

समान नागरिक संहिता के विरोध में आदिवासियों को कब तक ढाल बनाया जा सकता है? यदि उनसे उतना ही प्रेम है तो क़ानून बनाने वाले उन आदिवासी समाजों को आपके गहरे प्रेम के मद्देनज़र उन्मोचन (exemption) के प्रावधान कर देंगे। वे तो स्थानिक उन्मोचन कहलायेंगे। ऐसे तो लस्ज्ञ भी एक कॉमन लॉ ही था। पर उसमें भी exemptions के प्रावधान किये ही गये। लेकिन स्थानिक के प्रावधानों के लाभ वैश्विक को थोड़ी दिये जा सकते हैं। और न उन भूतपूर्व आदिवासियों को जो धर्मांतरण न सही समाजान्तरण तो स्वयं उन्हीं के आत्म-स्वीकार के अनुसार कर चुके हैं और बाक़ायदा घोषणापत्र लिख चुके हैं कि वे अपने पूर्व समाज के रीति-रिवाज, प्रथा, परंपराओं, विश्वासों, आस्थाओं का त्याग कर चुके हैं। हमारे आदिवासी अंचलों में तो इस आशय के पर्चे भरवाने का मिशन चला हुआ है। तो वे बाहर हो ही जायेंगे इस उन्मोचन के वृत्त से। इसलिए भाई, वो कवच छोड़िये। असली बात पर आइये। विवाह पर्सनल लॉ के अंतर्गत कैसे माना जा सकता है?

जो सबसे ज़्यादा इसे कहते रहे, वहाँ भी कहा तो यही कहा गया It is a social necessity that regulates social life through the creation of certain rights and duties which both the partners are required to fulfil.

ब्रिटेनिका में भी विवाह की यही सामाजिक परिभाषा है marriage, a legally and socially sanctioned union, usually between a man and a woman, that is regulated by laws, rules, customs, beliefs, and attitudes that prescribe the rights and duties of the partners and accords status to their offspring(if any).

NCERT की पुस्तक भी यही पढ़ाती है कि we will define marriage as a legally recognized social contract between two people, traditionally based on a sexual relationship, and implying a permanence of the union.

तो जो स्पष्टत: एक सामाजिक चीज़ है, उसे कौन से तर्क से पर्सनल लॉ की चीज़ माना जा रहा है? क्या समाज पर विवाह से पैदा होने वाली संतति का भार नहीं पड़ता? इन बच्चों की शिक्षा, स्वास्थ्य, आजीविका समाज के द्वारा ही समंजित नहीं की जाती? यदि विवाह पर्सनल होता तो उसकी कोई प्रथा ही क्यों बनती? उस पर कोई सुधार किसी समाज को आपत्ति लायक लगता ही क्यों?

तब सोशल चीज़ को पर्सनल बताया कब तक जाता रहेगा?

समान नागरिक संहिता के विरोध में कुछ वामी स्वरों को देखकर आश्चर्य होता है। उनके आदर्श चीन में भी अनेक संप्रदाय, धर्मानुयायी और अनेक समाज हैं। पर वहाँ तो एक सिविल लॉ है और एक सिविल अफ़ेयर्स ब्यूरो। वे तो धार्मिक या सांस्कृतिक सहयोजन (affiliation) के आधार पर कोई रियायत किसी को नहीं बख्शते। तब यहाँ भारत में भर्राखाता क्यों चला रखा है।

दक्षिण कोरिया में भी एक ही Family Law Act है। वे अलग धार्मिक और सांस्कृतिक समूहों के लिए कोई अलग व्यवस्था नहीं रखते। जापान में भी एक ही फेमिली रजिस्ट्रेशन लॉ हो जो सबको समान तरह से बरतता है।

फ्रांस भी एक ही सिविल लॉ सिस्टम के अंतर्गत सभी संप्रदायों को ट्रीट करता है। नार्वे में भी एक ही मैरिज एक्ट है। संयुक्त राज्य अमेरिका में बहुपत्नी विवाह का स्वप्न तो छोड़िये, अपने साधारण विवाह समारोह का आयोजन करने से पहले कोर्ट क्लर्क से मैरिज लाइसेंस लेना पड़ता है।

किसी यूरोपीय देश में बहुपत्नी विवाह की किसी भी धार्मिक या सांस्कृतिक समूह के सदस्य को अनुमति नहीं है। न ऑस्ट्रेलिया में न दक्षिण अमेरिका में। घाना, रवांडा, बोत्स्वाना, युगांडा, इथियोपिया से भी गया गुज़रा रखेंगे भारत को कि इन देशों तक ने उसे सबके लिए प्रतिबंधित रखा है।

और वह तुर्की तो आजकल एक विशेष विश्वनेता बनने की उछलकूद कर रहा है, क्या स्वयं अपने देश में बहुपत्नी विवाह की अनुमति देता है? यदि वह, ट्यूनीशिया, अज़रबैजान, अल्बानिया, कज़ाखस्तान में प्रतिबंधित है, तो हमारे यहाँ उसमें ऐसा क्या है जिसकी ठेकेदारी चल रही है?

हमारे यहाँ लोग इसे नारी के अधिकार के विमर्श के रूप में क्यों नहीं देखते? कुछ घटिया प्रथाएँ विलियम बेंटिक ने बंद कीं तो उसे भारतीय समाज ने सराहा। पर सब तो बंद न हुईं, कुछ काम अभी बाक़ी है। समान नागरिक संहिता सिर्फ़ विवाह तक सीमित नहीं है। पर कुछ लोगों ने कहा तो मुझे याद आया। मुझे पता नहीं चलता कि 'स्मैश ब्राह्मिनिकल पैट्रिआर्की' वाले जैक डार्सी और होलिकादहन में पैट्रिआर्की पढ़ने-पढ़ाने वाले और जुलूस निकालने वाले विद्यार्थी और उनके गुरु लोग पितृसत्ता के इस सबसे नग्न और सबसे भोंडे प्रदर्शन पर कैसे चुप रहते हैं। इनके हिसाब से बहुपत्नीवाद का वर्तमान में भी जारी रहना पैट्रिआर्की नहीं है, किसी कथा का कुपाठ पैट्रिआर्की का प्रतीक जरूर है। इनके लिए कथा पैट्रिआर्की है, व्यथा पैट्रिआर्की नहीं है। कथा पैट्रिआर्की है पर प्रथा पैट्रिआर्की नहीं है। ये आधुनिक समय की बुद्धिजीविता है।

संविधान का अनुच्छेद 44 आज्ञापक था। उसके अनुसार The State shall endeavor to secure for the citizens a uniform civil code throughout the terri-

tory of India. भाई लोगों ने कहा कि यह shall शब्द समान नागरिक संहिता के लिए नहीं है, यह तो उसके वास्ते प्रयत्न के लिए है। तो बंदर की तरह हम उछल-कूद तो बहुत कर रहे हैं। एक शाखा से दूसरी शाखा पर जा रहे हैं। प्रयत्न में तो कोई कमी नहीं है, भाई।

75 वर्ष गुज़ार दिये हैं इसमें। प्रयत्न अमर हो गया है।प्रयत्न है कि पाखंड है। यदि इसे endeavour कहते हैं तो indifference किसे कहते हैं ? यदि इसे कोशिश कहते हैं, तो कलाबाज़ी किस चीज़ का नाम है ?

यदि mediation प्रयत्न का नाम है तो वह बहुत, बहुत हो चुका। यदि चर्चा प्रयत्न का नाम है तो वे बहुत-बहुत हो चुकीं। विमर्श हो चुके, सेमीनार हो चुके। 75 वर्ष में आपने प्रमाणित कर दिया कि आप एक बहुत बड़ी conversational democracy हो।

पर क्या प्रयत्न का अर्थ ज़बानी जमा-खर्च है ?

75 वर्ष के विमर्श- विमर्श- विमर्श के बाद अब कौन इसे ओवरनाइट चेंज कहेगा ? कौन कहेगा कि इसके लिए वातावरण बनाया जाना चाहिए ? तृप्त हो गये भाई माहौल बनाने से। कब तक बनाये रखें, इसकी भी कोई अंतिम सीमा होगी ?

और वातावरण बनाने के इस प्रयत्न में आगे बढ़ने की जगह पीछे हटना भी शामिल होगा ? यक़ीन नहीं आता कि यह एक आधुनिक देश है। एक से एक चालाकियाँ चलती हैं नारी अधिकार के विरुद्ध। आप कैसे कह सकते हो कि कोई स्त्री सबसे पहले एक मानवी नहीं है और वह एक समूह की सदस्य ही सबसे पहले है ? क्या ऐसा करके एक मानवी को घटिया कोष्ठकों की प्रतिस्पर्धाओं में उलझाया जा सकता है ? नागरिकता देश की होती है, कि समूहों की ? एक देश में अनेक नागरिकताओं का निर्माण क्यों होता रहे ? धर्मनिरपेक्ष देश होने का तब क्या अर्थ है ?

क्या स्त्री के समानाधिकार धार्मिकता के कारण निषिद्ध किये जा सकते हैं ? क्या जिन देशों में इस तरह की पैट्रिआर्की को निरस्त कर दिया गया है, वहाँ के नागरिकों कों विधर्मी घोषित करने का कहीं से कोई देवादेश हुआ ?

ओह, वे बहाना बनाते हैं कि क़ानून बनाने से चीज़ें नहीं बदलतीं। पर तब उन्हें डर किस चीज का है। यदि विधि यथास्थितिवाद के सामने ख़तरा नहीं है, तो यथास्थितिवादी चिंतित ही क्यों हो रहे ?

पर यदि विधि कोई परिवर्तन नहीं करती तो विधायिका को भंग ही क्यों न कर दिया जाये ?

जब उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालयों ने बार समान नागरिक संहिता की बात उठाई तो आपने कहा कि यह विधायी अधिकार है, न्यायपालिका का नहीं। जब संसद् के करने की बारी आई तो आप 'विधि के माध्यम से सामाजिक समस्याओं की समाधेयता संभव नहीं' का तर्क दे रहे हैं। माने लोकतंत्र के दोनों स्तंभों पर आपका भरोसा नहीं। तब क्या सचमुच आप डेमोक्रेटिक हैं ?

विधि से सामाजिक समस्याएँ हल नहीं होतीं, ये आपने घरेलू हिंसा अधिनियम के वक्त तो नहीं कहा ? और इन्हीं 75 वर्षों में ऐसे कितने ही सामाजिक विषयों से सम्बन्धित अधिनियम पारित हुए, तब भी नहीं कहा। कि जो यह संयुक्त राज्य अमेरिका ने भी The Violence Against Women Act VAWA 1994 में पारित किया, यह एक बेकार की कसरत थी। कि यूनाइटेड किंगडम ने अभी 2010 में जो The Equality Act लाया, फ़ालतू ही लाया। कि 2017 में जो The Canadian Human Rights Act लाया गया वह बकवास है। और स्वीडन का The Discrimination Act (Diskrimineringslagen) भी। ये सब इसलिए नहीं लाये जाने थे क्योंकि हमारे दानिशमंदों की राय में ये सब गहरी सामाजिक समस्याओं का समाधान विधि में, क़ानून में ढूँढ़ते हैं।

यह तो हुई Rule of law में, क़ानून के शासन में इनके विश्वास की सीमा। और ये बनते हैं न्याय, विधि और लोकतंत्र के नामलेवा।

समान नागरिक संहिता (4) लोगों के कुतर्कों का कोई अंत नहीं है। एक सज्जन कहने लगे कि यह मनुवादी नागरिक संहिता है। एक दूसरे सज्जन इसे हिन्दुत्व का थोपना कहने लगे। एक तीसरे सज्जन इसे ब्राह्मिनिकल सिस्टम का आरोपण मानने लगे। और मुझे लगा कि चलिए इसके भीतर यह तो स्वीकार है कि इन सभी ने एकपत्नीत्व को अपनी आधारभूत अवधारणा बनाया। और कहीं इनका कहना यह भी है कि मनु को ही इस बात का श्रेय प्राप्त है कि समस्त ग़ैर-इस्लामिक और कुछ इस्लामिक देशों में भी पोलीगेमी को कानूनन वर्जित ठहराया गया। तो आइंदा मनु की universality पर शक नहीं लाना, हो सके तो ईमान लाना।

मनु-वनु को छोड़ो भाई। उसके स्तर तक उठ पाना तुम्हारे लिए संभव ही नहीं। तुम तो अधिकतम यही कर सकते हो कि उसकी स्मृति में कुछ interpolation करवा लो-जैसा कि पिछली कुछ शताब्दियों में करवाया भी गया-और फिर उसे कोसो। या उससे ही अपने औचित्य को सिद्ध करने की कोशिश करो। जैसा कि एक टीवी बहस में एक सज्जन दशरथ का उदाहरण देकर कर रहे थे, या महाभारत काल का उदाहरण देकर कर रहे थे।

उन्हें महाभारत की वह व्यवस्था याद न आई जब सेना में सैनिकों की तथा शासन में पदाधिकारियों की नियुक्ति करते समय उनका एकपत्नीव्रत पालन करना आवश्यक माना जाता था। नियुक्ति करने वाला अधिकारी, शासन में प्रवेश पाने वालों से कहता है—

एक पत्नीव्रतं तात यदि ते विनेऽनघ।
ततस्त्वां धारयिस्यामि सत्यमेतद् ब्रवीमि ते॥
न शौर्यं न कुलीनत्वं न च क्वपि पराक्रमः।
स्वदार चित्त वीरं विष्णुभक्ति समान्वितम्॥ (महाभारत)

एकपत्नीव्रत का पालन करने वाला निष्पाप, आस्तिक व्यक्ति ही यहाँ प्रवेश पा सकेगा। मात्र वीरता या उच्च कुल में उत्पन्न होने के कारण किसी की नियुक्ति न हो सकेगी। आज भी शासकीय सेवा में यही नियम चलता है और सभी मज़हबों के लोग नियोजक के उस विशेषाधिकार को स्वीकार करते हैं। ऐसी स्वीकृति से क्या वे मुस्लिम नहीं रह जाते?

उन्हें राम का एक पत्नी व्रत याद नहीं आया जिसकी उपेक्षा उत्तरकांड का प्रक्षेपकार भी न कर सका कि उसके अनुसार सीता महर्षि वाल्मीकि के आश्रम में परित्यक्त जीवनयापन कर रही थीं, तब एक दिन महर्षि के आश्रम में विश्वावारा नाम की ब्रह्मवादिनी तपस्विनी का पदार्पण हुआ। विश्वावारा अयोध्या का परिव्राजन कर लौटी थी सो आध्यात्मिक जिज्ञासाओं की अपेक्षा सीता की सहेलियों के मन में श्रीराम के वृत्तान्त जानने का कुतूहल जाग उठा। वे सब विदुषी विश्वावारा के समीप गईं और पूछने लगी-'अथ स रामभद्रः किमाचार?' अर्थात भद्रे! अब रामचन्द्र क्या करते हैं?

'तेन राज्ञा राजक्रतुरश्वमेधः प्रकान्तः' अर्थात् हे आर्य पुत्रियो! वे इन दिनों अश्वमेध यज्ञ की तैयारी कर रहे हैं। विश्वावारा ने उनकी जिज्ञासा का समाधान करते हुए उत्तर दिया। किन्तु इस उत्तर से तो उनका कुतूहल और भी प्रखर हो उठा। वे पूछने लगीं—'हन्त! परिणीतमपि।' ओह! तो उन्होंने दूसरा विवाह भी कर लिया? क्योंकि यज्ञ तो बिना पत्नी के पूर्ण होता ही नहीं। आचार्या विश्वावारा उनका सन्देह निवारण करते हुए बोलीं—'शान्त भू, नहि नहि' नहीं नहीं ऐसा नहीं। 'का तहि यज्ञे सहधर्मचारिणी' तो फिर उनके यज्ञ में उनकी सहधर्मचारिणी कौन है? विश्वावारा ने तब बताया कि इस निमित्त सोने की सीता जी की प्रतिमा बनाई गई है। और मनु ने हमेशा एक पत्नी प्रथा का ही समर्थन किया, यह सच तो है। यो धर्म एकपत्नीनां काङ्क्षन्ति तमनुत्तमम्। मनुस्मृति 5.158। हाँ, इसमें क्या शक कि मनु ने व्यवस्था दी -

जामयो यानि गेहानि शपन्त्य प्रतिपूजिताः।
तानि कृत्यादतानीप विनश्यन्ति समन्ततः॥
तस्मादेना सदा पूज्या भूषणाच्छादनाशनैः।
भूतिकामैर्नरैनित्यं सत्कारेषुत्सवेषु च। – (मनुस्मृति 3/58, 59)

अपमानित होकर या उत्पीड़ित किए जाने पर स्त्रियाँ जिन घरों को शाप देती हैं, वे घर कृत्या अभिचार अर्थात् कर्मों द्वारा किए गए तांत्रिक प्रयोगों से नष्ट हुए के समान बिलकुल ही उन्मूलित हो जाते हैं। इसलिए पर्व, त्यौहारों और उत्सवों के अतिरिक्त सामान्य दिनों में भी स्त्री को हर प्रकार से सन्तुष्ट रखना चाहिए।

मनुस्मृति अध्याय 3 श्लोक 62 में कहा गया कि–

स्त्रियाँ तु रोचमानायां सर्वं तद्रोचते कुलम्।
तस्यां त्वरोचमानायां सर्वं एव न रोचते।।

स्त्री के प्रसन्न रहने से सब कुल प्रसन्न रहता है और स्त्री के अप्रसन्न रहने से सब कुल अप्रसन्न रहता है। मनु को मानते तो ये फ्रिज में पचीसों टुकड़े वाले अपकर्म कैसे संभव थे? मनु ने तो रक्षा का दायित्व दिया था। यों कभी दहेज के चक्कर में तो कभी किसी और कारण से उसे मौत के घाट उतारने वाले मनु को क्या समझेंगे, जब वे अपनी पत्नी तक को न समझ सके। वह स्त्री को पुरुष की पसली की तरह देखने वाली संस्कृति न थी। वहाँ तो उत्पत्तिमूलक समानता से लेकर यज्ञाधिकार की समताएँ थीं।

द्विधा कृत्वाऽऽत्मनो देहमर्द्धेन पुरुषोऽभवत्।
अर्द्धेन नारी तस्यां स विराज मसृजत्प्रभुः॥ –(मनुस्मृति 1/22)

प्रभु ने अपनी देह अर्थात् व्यक्त स्वरूप के दो भाग किए। उनमें एक भाग पुरुष हुआ और दूसरा नारी। उस नारी भाग में से विराट जगत का उत्पादन किया।

और पुरुष से कहीं ज़्यादा सम्मान्य मनु उसे मानते हैं–

उपाध्यायान्दशाचार्य आचार्याणां शतं पिता।
सहस्त्र तु पितन्माता गौरवेणातिरिच्यते॥

उपाध्याय से आचार्य दस गुना श्रेष्ठ है और आचार्य से सौ गुना पिता। परन्तु माता, पिता से भी सहस्त्र गुनी श्रेष्ठ, वन्द्य और पूज्य है। जिनके लिए विवाह सामाजिक न होकर पर्सनल है, वे क्या जानें उस मत का महत्व जिसके अनुसार 'नारी अस्य समाजस्य कुशलवास्तुकारा अस्ति।' कि नारियाँ समाज की आदर्श शिल्पकार होती हैं।

'पुत्रेण दुहिता समा' कहकर संपत्ति में पुत्री को समानाधिकार दिलाने वाले मनु ही थे। मनुस्मृति के 9/130, 9/192 श्लोक पढ़ो और पैतृक सम्पत्ति में पुत्री को उसका समानाधिकार दो। और मनु के समान चलने की ताब नहीं है तो इस बहस में मनु / हिन्दुत्व जैसे शब्द मत उतारो। वे लोग रामायणकाल और महाभारतकाल से भी आगे बढ़ना जानते हैं। मध्यकालीनताओं से चिपककर पड़े रहने की कोई ज़िद उनमें नहीं क्योंकि उनके लिए कोई अंतिम नहीं। वे अनन्त में विश्वास करते हैं, किसी की भी अन्तिमता में नहीं।

क्या इस तर्क पर आज के युग में विश्वास किया जा सकता हूँ, कि अल्पसंख्यकों के लिए सुधार जरूरी नहीं है क्योंकि वे उनकी धार्मिक पहचान से जुड़े हुए हैं? यह तर्क कुछ ऐसा है कि जैसे बहुसंख्यकों की कोई धार्मिक पहचान नहीं है और उनके रीति रिवाज़ उनके धार्मिक होने से नहीं जुड़े हैं।

यह तर्क मूलत: अंग्रेजों का दिया हुआ था। सवाल यह है कि क्या अंग्रेज बहुसंख्यकों को इतना प्रगतिशील समझते थे कि वे सामाजिक सुधारों का विरोध नहीं करेंगे? और आज भी क्या यह सब अल्पसंख्यक–बहुसंख्यक की गंदी टर्मिनलॉजी पर ही निर्भर करेगा? क्या मानवतावाद की बृहत्तर परिधि को किसी कुप्रथा की सीमित परिधि के भीतर लाना जायज है?

क्या हर चीज को फेथ विरुद्ध फ्रीडम के अखाड़े में ले जाना जायज है? कभी रॉबिन जॉन्सन की पुस्तक 'द साइलेंट टियर्स ऑफ पोलीगेमी : बेस्ड ऑन अ ट्रू स्टोरी ऑफ अ मुस्लिम वूमैन' पढ़िए? या रफिया जकारिया की 'द अपस्टेयर्स वाइफ' पढ़िए या 'अ रूम आफ हर ओन' शीर्षक से तवाकाल्त ओयेबोड की पुस्तक पढ़िए, या जुलिएट मिंसेज़ की 'द हाउस ऑफ ओबिडियेन्स' पढ़िए। क्या ये सब कहानियाँ मजाक लगती हैं?

क्या आपको अपने आसपास के सच मज़ाक लगते हैं?

क्या यह कोई धार्मिक वनअपमैनशिप का मामला है? उस घटिया मानसिकता में उतरे बिना आपको चैन नहीं है?

कहते हैं कि अभी इसका समय नहीं आया। सच यह है कि समय से बहुत पीछे हो गये हैं आप। इस्लाम की महान परंपरा की याद भी है आपको? कभी क्लोरिंदा, उम्म हक़ीम, अरवा, सय्यदा हुर्रा, देफा ख़ातून, नाजो तोखी, शारिफा फातिमा, अमीना, शजारत अल-दुर, जुवेरिया, उम्म ईसा, लल्ला जैनब, लुबाबा, ख्वाला बिंत अल अज्वर, नुसैबा बिंत काब जैसी ऐतिहासिक वीरांगनाओं के सामने यह बात कहने की हिम्मत पड़ेगी ज़बानदराजों को? वे तब नारी गौरव का परचम लहरा चुकीं जब इन सज्जनों का कहीं अता पता न था। पर इस्लाम था। सच तो यह है कि इन्हें इनके नाम तक न पता होंगे। बात संविधान के अनुच्छेद 44 के नीति निर्देशक तत्त्व होने की भी नहीं है। बात तो संविधान की प्रस्थान-भूमि की ही है- उसकी प्रस्तावना के प्रॉमिस की। इसमें स्वतंत्रता की बात तो थी ही, प्रतिष्ठा और अवसर की समानता का वादा भी था।

क्या आपको यह लगता है कि यह वादा भारत की स्त्रियों से नहीं किया गया था? कि अपनी मातृशक्ति के तेज के प्राकट्य को लेकर खड़े इस्लाम के पूरे इतिहास को उन रूढ़िवादियों द्वारा विफल किया जा सकता है कि जिन्हें न स्त्री की फ्रीडम पर आस्था है और न जो उसकी समानता का स्वीकार कर सकते हैं?

धर्म इसमें कहीं नहीं आता। आप हैं जो एक मेल सुप्रीमेसी को क़ायम रखने के लिए रजिया सुल्तान, चाँद बीबी, हज़रतमहल आदि की महान विरासत को नकारने की जुगत में लगे हुए हैं। कोई भी धर्म समानता और स्वतंत्रता के विरुद्ध नहीं है। इनके विरुद्ध होकर वह धर्म रह ही नहीं जाएगा। धर्म इनका कवच है। इनके कंठ पर टिकी हुई कृपाण नहीं है।

(मनोज श्रीवास्तव)
राम-रज, 3-पारिका-फेज 2,
चूना भट्टी, कोलार रोड,
भोपाल-462016 (म.प्र.)
मो.-9425150651
ईमेल-shrivastava_manoj@hotmail.com

अनुक्रम – अंक 221 अगस्त 2023

सम्पादकीय

साधो सबद साधना कीजै

पानी से भरे बादल–कहीं धुआँ, कहीं अमृत/ **अजित वडनेरकर/12**

समय और विचार – 36

दर्शन और साहित्य : चिन्तन का सृजन / **रमेश दवे/14**

धर्मशास्त्रों में प्रतिपादित समाज शास्त्र – 5

कन्या–पूजन, कन्या शुल्क और स्त्रीधन / **रामेश्वर मिश्र पंकज/18**

पाण्डवों का वनगमन और द्रौपदी को कृष्ण का स्पष्टीकरण / **कुसुमलता केडिया/22**

अनुवाद

एक अर्थव्यवस्था जो आशा और गरिमा पर आधारित हो (**मूल : दाईसाकू इकेदा**) / **अनु. विभा खरे/25**

समान नागरिक संहिता

समान नागरिक संहिता/ **देवदत्त माधव धर्माधिकारी/31**

समान नागरिक संहिता / **चन्द्र भूषण पाण्डेय/33**

नागरिकों के मध्य भेदभाव असंवैधानिक हैं / **रामेश्वर मिश्र पंकज/35**

समान नागरिक संहिता पर गलत बहस / **शंकर शरण/39**

अल्पसंख्यक स्त्रियों को भी स्वाधीनता और समानता अपेक्षित है / **कुसुमलता केडिया/43**

समान नागरिक संहिता (यूसीसी) ! कितना सही ! / **राजीव खंडेलवाल/46**

समान नागरिक संहिता : विद्वानों के विचार/ **मनीषचंद्र शुक्ल/49**

समान नागरिक संहिता : साहित्यिकारों के विचार / **दीपक पगारे/57**

रामदरश मिश्र शताब्दी पर

सकारात्मकता और संप्रेषणीयता का समन्वय : रामदरश मिश्र की कविताएँ / **अज़हर हाशमी/59**

रामदरश मिश्र की प्रतिनिधि कहानियाँ : ताप और दीप्ति की खोज / **आनन्द प्रकाश त्रिपाठी/61**

रामदरश मिश्र के उपन्यासों की भाषिक संरचना / **बी .एल . आच्छा/70**

रामदरश मिश्र का होना / **हरिशंकर राढ़ी/75**

साधना की समूची सदी : रामदरश मिश्र / **मधु शुक्ला/80**

सर्जनात्मक समालोचक रामदरश मिश्र / **राहुल श्रीवास्तव/86**

रामदरश मिश्र के परवर्ती उपन्यास / **वेद मित्र शुक्ल/92**

रामदरश मिश्र के काव्य में पर्यावरणीय–दृष्टि / **कुमार मंगलम रणवीर/97**

रामदरश मिश्र की ग़जलें : सरकंडे की कलम से रचती सुनहरी इबारत / **रविशंकर सिंह/99**

ग़ज़ल के अप्रतिम संसार में रामदरश मिश्र / **नीलम चतुर्वेदी/102**

आजादी से मोहभंग का दस्तावेज–जल टूटता हुआ / **ज्योति कुमारी/105**

समकालीन दौर और रामदरश मिश्र की कहानीकला / **विपिन कुमार. वी/107**

संस्मरण

रामदरश मिश्र : आभारी हूँ बहुत दोस्तो, मुझे तुम्हारा प्यार मिला / **प्रकाश मनु**/110
घर के बुजुर्ग जैसा : रामदरश/ **राजेश श्रीवास्तव**/123
शताब्दी के साक्षी : मेरे पिता रामदरश मिश्र / **स्मिता मिश्र**/127
रामदरश मिश्र : एक शतीपुरुष से मुलाकात / **मुकुल अमलास**/129
सुन रही हो न माँ / **सविता मिश्र**/133

लेखक की कलम से

कविताएँ / **रामदरश मिश्र**/136
अपना घर / **रामदरश मिश्र**/138

आत्मकथ्य

मैं और मेरी सर्जना / **रामदरश मिश्र**/140

साक्षात्कार

रामदरश मिश्र से ओम निश्चल की बातचीत/148

समीक्षा

रामदरश मिश्र एक शिनाख्त (रामदरश मिश्र) / **अल्का सिन्हा**/152
डायरी (रामदरश मिश्र) / **कमलेश भारतीय**/155
छोटे-छोटे सुख (रामदरश मिश्र) / **जया केतकी**/156

पानी से भरे बादल-कहीं धुआँ, कहीं अमृत

- अजित वडनेरकर

जन्म - 1962।
शिक्षा - स्नातकोत्तर।
रचनाएँ - पाँच पुस्तकें प्रकाशित।
सम्मान - राजकमल प्रकाशन का विद्यानिवास मिश्र कृति पांडुलिपि सम्मान।

पावस की शब्दावली-हमारी लोकभाषाएँ पावस की शब्दावली से समृद्ध हैं। इस मेघपर्व पर भाषा-बन्धुता के ऐसे अनेक रूपभेदों को समझने का जतन किया जा रहा है। आकाश, बादल या मेघ का एक पर्याय अन्तरिक्ष भी है। घने काले श्यामवर्ण बादलों का एक नाम कज्जल भी है। बादलों के गुच्छे की एक सुन्दर सी व्यंजना है कादम्बिनी। बांग्ला में यह 'कादोम्बिनी' हैं। इसे मेघमाला भी कहते हैं। आकाश में दूर तक काले-धूमिल बादलों की कतारें जिनमें अपार जल राशि समाहित है। घनानंद लिखते हैं-निरवधि रस की रासि रसोली। हित 'कादंबिनि' नित बरसोली। इसीलिए बादलों को जलवाह, जलधर अथवा सलिलधर भी कहते हैं। विशेष बात यह भी कि सलिल को वर्षाजल भी कहा गया है। अर्थात् जल के तमाम पर्याय हैं जिनमें एक सलिल भी है। मगर सलिल का विशेष अर्थ वर्षाजल भी है। ऐसी वायु जिसमें जलगन्ध हो, जिसमें जलकण व्याप्त हों, जो वाष्प को अपने अंक में समेटे मेघमाल को धरती की ओर लिए आती है उसे सलिलवात कहा गया है।

मराठी का पाउस-बारिश की अनेक व्यंजनाओं में वर्षा, वृष्टि, वर्षिन जैसे तत्सम शब्द शामिल हैं और अनुमान लगाया जा सकता है कि बरखा, बरसात, वर्षात जैसे लोकरूपों की इनसे रिश्तेदारी है। एक अन्य प्रचलित पद है 'पावस' जिसका अर्थ भी वर्षा ही है। मराठी में यह पाउस हो जाता है। दरअसल यह भी वर्षा, बरसात वाली शृंखला का ही शब्द है और संस्कृत के प्रावृष का समरूप है जिसका अर्थ है वर्षाकाल। मराठी में जो पाउस है, हिन्दी में वही पावस है।

मानसून या मौसम-भारतीय भाषाओं में वर्षा की शब्दावलियाँ टटोलें तो एक लघुकोश बन जाएगा। ग़ौरतलब है अरबी, फ़ारसी, तुर्की या अन्य विदेशी भाषाओं से अन्यान्य शब्द भारतीय भाषाओं में घुलमिल गए और ज़बान पर चढ़ गए। किन्तु अरबी भाषा के मेघ/वर्षा से जुड़े ऐसे शब्द गिनना मुश्किल है जिन्हें हिन्दी ने अपनाया हो। केवल मानसून या मौसम ही ऐसा शब्द है जो बारिश के आगमन की सूचना देने वाला पारिभाषिक महत्व का पद है।

काळमेकम या कालमेघम्- तमिल की वर्षा सम्बन्धी शब्दसम्पदा में वैविध्य है। संस्कृत आगम वाले अनेक शब्द हैं जिन्होंने अपना चोला बदल लिया है। मिसाल के तौर पर बादल का पर्याय है चलतम् जिसका आशय है पानी देने वाला। यह संस्कृत का जलद(म्) है। इसी तरह काळमेकम् का अर्थ है घने श्यामवर्णी बादल। यह सीधे-सीधे कालमेघ(म्) है।

अप्पितम् या अब्द-तमिल में अप्पितम् का आशय भी बादल होता है। विद्वानों के मुताबिक यह संस्कृत के अब्द का रूपान्तर है। अब्द यानी बादल। संस्कृत में पानी के लिए एक शब्द है अप्। संस्कृत में द वर्ण का अर्थ है कुछ देना या उत्पादन करना। चूँकि पृथ्वी पर पानी बादल लेकर आते हैं इसलिए अप् + द मिलकर बना अब्द यानी पानी देने वाला। इस अप् या अब्द से इंडो-ईरानी भाषा परिवार में कई रूप नज़र आते हैं। पानी के अर्थ वाला संस्कृत का अप् फारसी में आब बनकर मौजूद है।

अप्परम या अभ्र-एक अन्य शब्द है अप्परम् जो अभ्र से जुड़ता है। संस्कृत में बादल को अभ्र कहा जाता है जिसका उच्चारण फारसी अब्र के बहुत करीब है। आपटे कोश के अनुसार अभ्र बना है अप् (पानी) के साथ 'भृ' क्रिया जुड़ने से जिसमें ले जाने का भाव है। बादल, जो पानी को ले जाते हैं। भृ को 'भार' से जोड़ें। पानी का भार उठाने वाले का आशय और

अधिक स्पष्टता से अभ्र में समझ में आता है। तो अभ्र में बादल, आकाश, नभ या शून्य का आशय है। मराठी में इसी अभ्र का रूप होता है आभाळ। स्याह काले बादल को संस्कृत-हिन्दी में नीलाभ्र कहते हैं। यहाँ नीला का अर्थ काला ही है। वे बादल जो बरसते हैं, काले ही होते हैं।

अमुतम अमृत-पानी को अमृत कहा जाता है क्योंकि इसमें जीवन है। इससे जीवन मिलता है। जो मृत नहीं होने देता। पानी न मिले तो मनुष्य मर जाता है। इसीलिए इसे अमृत कहा गया है। तमिल लैक्सिकन में अमुतम का एक आशय बादल भी है क्योंकि इसमें पानी का ठहराव है। यह संस्कृत के अमृत के कितना निकट है? पानी की जीवनवाची महिमा या जीवनी शक्ति को बनानेवाला एक अन्य शब्द है अम्पुतम्। यह अम्बुद का ही प्रतिरूप है जिसका आशय है अम्बु यानी पानी देने वाला। अर्थात् बादल।

आयम अथवा आय-तमिल में ही बादल की एक निराली व्यंजना है 'आयम्।' ग़ौर करें, बारिश से धरती की गोद हरी-भरी होती है। बीज पकते हैं। धन-धान्य पैदा होता है यही मनुष्य की आय अर्थात् इनकम है। कितनी सुन्दर कल्पना है। इसीलिए जहाँ बारिश नहीं होती वहाँ बादलों को आता देख ही मन हराभरा हो जाता है। देखने मात्र से आशा का ऐसा संचार जो पैदा करता है वह जहाँ बरस जाता है तब क्या होता है? खेत में उगा धान ही धन का पर्याय बन जाता है। यह जो धान है, यही फारसी में दाना हो जाता है। दाना यानी बीज। दाना यानी अन्न। दाना यानी भोजन। दाने-दाने पे लिखा है, खाने वाले का नाम।

दुमान या धूमक-संस्कृत में घन-गरज वाले बादलों के लिए एक शब्द है आनक। आनक का मूल आशय है सैन्यवाहिनी में बजने वाला विशाल नगाड़ा, ड्रम, दुन्दुभि। गरजते-बरसते बिजली चमकाते बादलों की वाहिनी के लिए आनक का विशेषण भारत ऋतुप्रधान देश की अपार शब्दसम्पदा का सरस उदाहरण है। अरबी में बादलों के लिए एक शब्द है 'अनान।' क्या इसका रिश्ता 'आनक' से हो सकता है? इसी तरह तुर्की में बादलों के लिए एक शब्द है 'दुमान।' यह भी बादल का पर्याय है। इसका एक आशय धुआँ, कोहरा, धुन्ध भी है। बादल जब धरती की सतह पर उतरते हैं उसे ही कोहरा पसरना कहते हैं। इसे संस्कृत के धूम, धूमक, धूमन जैसे शब्दों की रोशनी में देखा जा सकता है। श्याममेघ, कालमेघ जैसे शब्दों में धूम्रवर्णी बादलों की छाया ही है।

जी-37 , फेज-1, ग्रीन मीडोज
भोजपुर रोड, पी.ओ. मिसरोद,
भोपाल-462047 (म.प्र.)
मो.- 6265739044

विशेष अनुरोध

सम्मानित सदस्यों से विनम्र अनुरोध है कि सदस्यता शुल्क मनीआर्डर, आर.टी.जी.एस / एन.ई.एफ.टी, आदि ई-बैंकिंग माध्यमों से भेजने के पश्चात् एक पोस्ट-कार्ड पर अपना पूरा नाम-पता, पिन कोड नम्बर सहित लिखकर 'अक्षरा' कार्यालय को अवश्य सूचित करें। ताकि पत्रिका प्रेषित करने / मिलने में होने वाली असुविधा से बचा जा सके।

बैंक, खाता संख्या निम्नवत् है-

Ac/ No. 50413818696, IFSC- IDIB000T610

इंडियन बैंक, हिन्दी भवन शाखा, भोपाल

दर्शन और साहित्य : चिंतन का सृजन

- रमेश दवे

वरिष्ठ साहित्यकार एवं शिक्षाविद।

जन्म - 8 जून 1936।

रचनाएँ - पचास से अधिक पुस्तकें प्रकाशित।

सम्मान - कुसुमांजलि साहित्य सम्मान, सहित अनेक सम्मानों से सम्मानित।

दार्शनिक लुडविग विटगेन्सटाइन ने दर्शन के बारे में कहा था- 'दर्शन सिद्धांत नहीं, क्रिया है' ट्रिक्टेटस लॉज़िक्स)। वहीं वाइट हेट जैसा ब्रिटिश दार्शनिक कहता है 'दर्शन चमत्कार की पैदाइश है।' वाइट हेट तो यह भी कहता है कि-'पश्चिम के दर्शन का इतिहास है ही क्या, प्लेटो जैसे दार्शनिक के लेखन के फुटनोट्स के सिवा।' इन सूत्र वाक्यों को देना केवल पश्चिम के उद्धरणों से दर्शन के साहित्य से सम्बन्ध बताना नहीं है, बल्कि साहित्य में दर्शन की उपस्थिति से सर्जक और सर्जन में क्या प्रतिक्रिया होती है, यह भी देखना है। दर्शन कोई वायवी विचार नहीं है। वह तो एक समूचे तर्कशास्त्र के साथ सम्पन्न होता है। वह मनुष्य का साक्षात्कार उसके ही आभ्यंतर से कराता है। विटगेन्सटाइन ने 'दी इनर' और 'इफ-थिंकिंग' के माध्यम से जो तर्क रखा है, वह यह दर्शाता है कि मनुष्य का अपना एक आभ्यंतर होता है। उस आभ्यंतर को जानने के लिए उसमें 'यदि विचार' अर्थात् ऐसे प्रश्न पैदा होते हैं जो उसे चिन्तन की ओर प्रवृत्त करते हैं। चिन्तन जब अभिव्यक्ति के लिए आकुल होता है, तो सृजन में फलित होता है। इसलिए साहित्य सर्जन मात्र कल्पना या भाव विह्वलता का परिणाम न होकर, चिन्तन का प्रतिफलन भी होता है। डॉ. जान्सन तो कहते थे 'मैं इस प्रकार खण्डन करता हूँ।' इसका तात्पर्य यह है कि दर्शन खण्डन और मण्डन की भी तर्कपूर्ण क्रिया है, जो चिन्तन का मनोवैज्ञानिक आधार तैयार करती है। यही कारण है कि मनोविज्ञान, दर्शन का सहचर है।

विश्व में दार्शनिक तो अनेक हुए जैसे प्लेटो, शंकर, कांट, रामानुज, विष्णुस्वामी, नागार्जुन, चार्वाक, हेमचंद्र जैन आदि आधुनिक समय में हीगल, हैडेगर, मार्क्स, शॉपनहॉवर, नीत्शे, विटगेन्सटाइन, ब्रेडले आदि अनेक नाम लिए जा सकते हैं। इनमें से प्लेटो और शंकर ऐसे हैं जिन्होंने दर्शन को सर्जनात्मक बनाया। प्लेटो ने दार्शनिक सैद्धांतिकी रची, शंकर ने वेदान्त भाष्य रचकर हमारी अद्वैत दार्शनिक परम्परा को प्रतिपादित किया। रामानुज, माध्वाचार्य, वल्लभाचार्य, दर्शन को अध्याय में ले गए जिसका, आगामी संस्करण श्री अरविंद में दिखाई देता है। श्री अरविंद ने दर्शन, चिन्तन और सर्जन को एकाकार किया। वैसे तो गाँधी-दर्शन भी माना जाता है, लेकिन वह राजनीतिक दर्शन है, साथ ही जीवन जीने की क्रिया भी है। साहित्य कितना भी यथार्थ लिखे, अंततः जब द्वन्द का निरूपण होता है तो यह द्वन्द आखिर है क्या? इसे भी समझना होगा आभ्यंतर और बाह्य का द्वन्द या मनुष्य का मनुष्य से भौतिक द्वन्द? मनुष्य का किसी भी रूप में द्वन्दात्मक होना ही तो उसमें उसका दार्शनिक जगाता है और वह दर्शन ही उसे सृजन के लिए प्रेरित भी करता है।

श्री अरविंद जब 'अतिमानस' का तत्व निर्देशित करते हैं तो वे उसे दिव्य जीवन और भारतीय दर्शन-प्रज्ञा से भी जोड़ते हैं। श्री अरविंद एक कवि भी हैं, इसलिए उनका काव्य भी दर्शन-प्रवृत्त है। श्री अरविंद ऐसे दार्शनिक हैं, जिनकी दर्शन-प्रज्ञा से सीधा साक्षात्कार और संवाद हो सकता है। दुनिया में जितने भी दार्शनिक और अध्यात्म-चिन्तक हुए हैं, उनको हम सीधे-सीधे नहीं पढ़ते, समझते। डॉ. कवीश्वर तो मानते हैं कि सुकरात और ईसा के विचार हमें उनकी शिष्य परम्परा से मिलते हैं, रामकृष्ण परमहंस को उनके भक्तगण हमें उनकी असाधारण और परम-चरम स्थिति में समझाते हैं, विवेकानंद को उनके भाषणों-विचारों से हम जानने-पढ़ने लगते हैं, वहीं प्लेटो और श्री अरविंद दो ऐसे दार्शनिक हैं जिन्हें हम उनकी कृतियों से सीधे साक्षात् करके जानते हैं। श्री अरविंद सामान्य और सहज लेखक भी नहीं। उनकी प्रज्ञा दर्शन से अभिभूत हैं, आत्म-साक्षात्कार करती है, इसलिए उनका चिन्तन गहन है और उनके चिन्तन की भाषा

भी अत्यन्त जटिल है। वे भाषा में संकेतों और चिह्नों का इतना रूपकीय और कल्पनाशील प्रयोग करते हैं, कि उन्हें कई बार व्याख्यायित करना पड़ता है। वे मनुष्य के क्रमबद्ध विकास का सिद्धांत स्वीकारते तो अवश्य हैं, लेकिन विकास को उद्देश्यमूलक मानते हैं। इसलिए विकास की चरम मानवीय स्थिति को वे अध्यात्म में उपलब्ध करते हैं। इन्हें वे 'अवक्रांति' यानी 'इनवोल्यूशन' और 'उत्क्रांति' अर्थात् 'इवोल्यूशन' कहते हैं। अरविंद की यह दार्शनिक प्रगाढ़ता जब 'सावित्री' जैसे प्रबंधकाव्य में दिखाई देती है, तो 'सावित्री' मात्र मिथकीय रूपक न होकर, एक अध्यात्म-सत्ता बन जाती है। इस प्रकार साहित्य और दर्शन संयुक्त यात्री हो जाते हैं।

हर दार्शनिक केवल विश्व-दर्शन, जीवन-दर्शन, आत्म-अवलोकन या परावलोकन नहीं करता, बल्कि वह अपनी अन्तश्चेतना में जीते हुए ऐसे चिन्तन विषयों का उद्घाटन करता है, जो सामान्य जन के लिए चमत्कार की तरह दैवीय या दिव्य लगते हैं। शायद इसलिए दर्शन को चमत्कार की दिव्यता भी माना गया है। साहित्य चमत्कार नहीं करता, यहाँ तक कि दर्शन को भी दिव्य या दैवीय बनाने के बजाए उसकी दिव्यता का मनुष्यता में, जीवनगत संदर्भों में, कला में, रूपकों में रूपान्तरण कर देता है। इसलिए एक सर्जक चाहे चित्रकार हो, संगीतकार हो या साहित्यकार, उसका अवलोकन कला रूप से होता है, उसके बाह्य से आभ्यंतर में प्रवेश करके होता है। जब अमूर्त पेंटिंग या साहित्यिक रचना को अनेक यथार्थवादी निरस्त करते हैं, तो वे उसकी कलात्मकता के आभ्यंतर में न उतरकर, उसे भौतिक सतह पर देखते हैं। इसलिए विटगेन्सटाइन का 'दी इनर' या 'आभ्यंतर' उनके अंदर 'इफ थिंकिंग' पैदा करता है और 'यदित्व' मन में आते ही एक रचना अपने एकल रूप से बहुल-रूप धारण कर लेती है और पुनः विटगेन्सटाइन के शब्दों में एक सच्चा अवलोकनकर्ता उसके अंदर के विचार 'मिस्ट्री आफ थॉट' को उद्घाटित करने की कोशिश करता है। जिस प्रकार साहित्य का आभ्यंतर उसमें निहित भाव, कला और विचार हैं, वैसे ही भाषा का रहस्य उसकी संगीतात्मकता है, ध्वनि है, चित्रकला का रहस्य उसके रंगों से उत्पन्न होती छवियाँ हैं। यहाँ यह कहा जा सकता है कि दर्शन तो दो प्रकार से देखता है एक बाहरी दर्शनीयता, जो अधिकतर रूपबद्ध होती है, और दूसरी आंतरिक, जिसे चिंतन और कल्पनाशीलता से अभिव्यक्त किया जा सकता है।

साहित्य और दर्शन मनुष्य-जीवन को दो प्रकार से प्रभावित करते हैं। एक साहित्य का आस्वाद रस या आनंद में फलित होना है, चाहे वह दुखान्त ही क्यों न हो। जैसे विरेचन की अवस्था, करुण रस को भी आनंद में परिवर्तित कर देती है। दूसरा दर्शन, जो एक सर्जक की आंतरिक दृष्टि का विस्तार करता है, सर्जक की तर्क और भावशक्ति को साहित्य से जोड़कर सृजन को गंभीर और विचारशील बनाता है। वैसे तो एक मान्यता यह भी प्रचलित है कि कवि तो स्वयं ही एक दार्शनिक होता है और अंग्रेजी साहित्य में वड्सवर्थ एवं कॉलरिज में वह दार्शनिकता प्रकट भी हुई। हम अपने छायावादी साहित्य को देखें तो निराला, महादेवी और पंत में अनेक दार्शनिक भाव-छवियाँ प्रतीत होती हैं। पंत का अपने उत्तर-काल में मार्क्सवादी झुकाव हो गया था लेकिन वे स्वभावतः तो प्रकृतिवादी ही रहे और प्रकृति का विराट रूप उनकी दर्शन मेघा को भी विस्तृत करता था। इन सभी छायावादी कवियों में दार्शनिकता काव्य के माध्यम से, विचार के माध्यम से और किसी परम की रहस्यात्मक छाया के माध्यम से प्रत्यक्ष होती है। यहाँ तक कि कबीर, सूर, तुलसी का भक्तिकाल, अध्यात्म के सगुण-निर्गुण दर्शन से जुड़ा था, लेकिन साथ ही यह भी दिखाई देता था कि कबीर, जायसी या अन्य सूफी कवियों का काव्य सूफी दर्शन का यदि एक छोर था, तो दूसरा छोर, सूर, तुलसी, मीरा की सगुण आस्था अपनी भक्ति के साथ परम का साक्षात्कार करती थी।

भारतीय वाङ्मय तो दर्शन प्रबुद्ध वाङ्मय है। दर्शन कितना ही आदर्श-मूलक हो, अंततः सम्बद्ध तो वह जीवन से ही होता है। इसी प्रकार साहित्य कितना ही अमूर्त हो, लेकिन वह जीवन की उपेक्षा करके जीवित नहीं रह सकता। कहा तो यह भी जाता है कि हर व्यक्ति का अपना दर्शन होता है, लेकिन यह मात्र उसकी जीवन प्रणाली के चयन का दर्शन है। जब दर्शन में आत्मा या किसी परम सत्ता का चिंतन होता है, तो मनुष्य अनेक आंतरिक तर्क रचता है और उन तर्कों को किसी मान्यता, सिद्धांत या विचार में निष्पन्न करता है। संस्कृति के विकास की बुनियाद तो जीवन दर्शन ही है, चाहे वह भौतिक हो या अधिभौतिक इसी प्रकार साहित्य की समूची सौंदर्य और संवेदन-दृष्टि अंततः तो जीव जगत का ही दर्शन करती है, उससे प्रेरित होती है, उसे अपनी कल्पना में उतारकर साहित्य रचती है। भारतीय दर्शन के अनेक प्रकार हैं, जैसे वेदान्त या उपनिषद-प्रसूत ब्रह्म या आत्मा

से संलग्न दर्शन, गीता का दर्शन, चार्वाक दर्शन, जैन दर्शन, बौद्ध दर्शन, न्याय दर्शन, वैशेषिक दर्शन, योग दर्शन, सांख्य दर्शन, अद्वैत-दर्शन, विशिष्टाद्वैत दर्शन, मीमांसा दर्शन, शैव आगम, वैष्णव आगम आदि। ये समस्त दर्शन हमारा वाङ्मय, जो साहित्य भी है, रचता है। इसलिए उपनिषद, स्मृति, ब्राह्मण, संहिता, गीता सब अपनी अपनी दार्शनिकता के साथ साहित्य हैं, जो संस्कृति के निर्माता और संवाहक भी हैं। आधुनिक जीवन में जब हम रवीन्द्रनाथ, श्री अरविंद, दयानंद, विवेकानंद, रामतीर्थ, रमण महर्षि और गाँधी को पढ़ते हैं तो सभी में हमें कहीं न कहीं उस अन्तर्दृष्टि का आभास होता है, जो स्वयं में प्रबुद्ध थी और हमें भी प्रबुद्ध बनाती है। माना तो यह भी जाता है कि विश्व के सभी दर्शन नास्तिक हैं। ये आस्था की बजाए तर्क से परिचालित होते हैं; लेकिन इस तर्क का प्रतितर्क भारतीय दर्शन ने आस्थामूलक होकर अपने वाङ्मय से रखा है। यह खण्डन-मण्डन की ही एक भारतीय तर्क प्रणाली भी है।

साहित्य दर्शन को कैसे आत्मसात करता है यह हम कुछ पश्चात्य दार्शनिकों के माध्यम से जान सकते हैं जिनका प्रभाव विश्व भर के साहित्य पर पड़ा। हीगल ने जब द्वंद्व सिद्धांत रचा, तो इस द्वंद की पहचान जीव जगत और प्रकृति के विकास के साथ मनुष्य के सामाजिक, राजनीतिक, बौद्धिक सभी कार्यव्यापारों में दिखी। इसलिए हीगल ने यह मान्यता रखी के दर्शन परम तत्व या विज्ञान है (साइंस आव दी एब्सोल्यूट) हीगल का यह द्वंद मार्क्स ने व्यापक स्तर पर विचार के रूप में विस्तृत कर दिया, जिसका आज तक भी साहित्य पर बहुत जबरदस्त प्रभाव है। ब्रेडले दर्शन में 'आभास' को न मानकर 'तत्व-मीमांसा' पर जोर देता है। अनुभव जगत उसके लिए 'आभास' की अपेक्षा तत्व-पदार्थ है। जब हम साहित्य में यथार्थ की चर्चा करते हैं, तो आभासों या अमूर्त कल्पनाओं की जगह वास्तविकता को अधिक महत्व देते हैं। इसलिए यथार्थ का साहित्य कलावादियों को बेस, सपाट, स्थूल या राजनीतिक बयानबाजी भले ही लगे लेकिन अनुभव-जन्य संवेदन तो साहित्य में होता ही है। बर्गसाँ साहित्य के अधिक करीब है। वह सर्जनात्मकता विकास पर जोर देते हुए संसार की व्याख्या करने में विश्वास करता है। मनुष्य के अंदर सर्जनात्मकता एक स्वाभाविक तत्व भी हो सकता है, जो विकास के क्रम में प्रकट होता है। जब यह तत्व प्रखर होता है, तो सर्जना होती है फिर चाहे वह साहित्य हो या अन्य कलाएँ। इस प्रकार दार्शनिकों ने अनेक प्रकार के सिद्धांत व नियम आदि दिए और यदि प्लेटो से लेकर क्रोचे, कांट, अलेक्जेण्डर, लॉयड मार्गन, विटगेन्सटाइन, वाइज़मेन, वाइटहेड, नीत्शे, मार्क्स तक की एक लंबी दार्शनिक शृंखला को देखा जाए, तो लगेगा कि यूरोप का साहित्य सदैव ही किसी न किसी दर्शन से प्रभावित रहा है, जिसमें अभिव्यंजनावाद, मार्क्सवाद, अस्तित्ववाद जैसे दर्शन तो आज भी साहित्य की मुख्यधारा के सर्वाधिक प्रबल हस्तक्षेप हैं।

दर्शन की अनेक धाराएँ मानी गई हैं जैसे-तत्वमीमांसा (मेटाफिजिक्स या ऑनटोलाजी), ज्ञान मीमांसा (एपिस्टिमेलाजी), ब्रह्माण्ड विज्ञान (कॉस्मालाजी), ईश्वर मीमांसा (थियोलाजी), तर्कशास्त्र (लॉजिक) और मूल्यमीमांसा (एक्सियोलाजी)। अंततः दर्शन का परम लक्ष्य होता है किसी अंतिम सत्य तक पहुँचने का प्रयास, जबकि साहित्य अंतिम सत्य की खोज परम शक्ति की खोज की तरह न करके, संवेदन को, सौंदर्य को, आनंद को या रस को सर्जित करता है जो मनुष्य की रागधारा बनता है, उसके अन्दर की कल्पनात्मक शक्ति को प्रत्यक्ष करता है। इसलिए साहित्य एक प्रकार से मनुष्य-मीमांसा और सौंदर्य मीमांसा का क्षेत्र है। वह किसी दृश्य में अदृश्य और अदृश्य में दृश्य देखने का तर्क न खोज कर, दृश्य को अनुभव और अदृश्य को कल्पना बना कर सर्जित होता है।

अब एक प्रश्न यह भी उठाया जा सकता है कि आखिर साहित्य और दर्शन की इस पारस्परिकता की जरूरत ही क्या है? दोनों अपने-अपने प्रकार के विषय हैं। एक सृजन का है तो दूसरा चिन्तन का। साहित्य मनुष्य की राग वृत्ति से उद्भूत होता है तो दर्शन, तर्कबुद्धि से। साहित्य आस्वादात्मक होता है तो दर्शन प्रतिक्रियात्मक एवं खंडन-मंडन युक्त। साहित्य प्रणाली, प्रविधि या किसी तत्व-मीमांसा या ज्ञान मीमांसा पर जोर नहीं देता, वह तो मनुष्य की अंतःप्रकृति की अभिव्यक्ति है। उसमें मनोराग, मनोभाव, मनोविकार सब रस-संज्ञा या सौंदर्य संज्ञा बन कर प्रकट होते हैं, जबकि दर्शन राग या सौंदर्य के भी तत्वों का परीक्षण करता है, उन्हें स्वीकार, संशोधित या खण्डित करता है। बावजूद इसके साहित्य और दर्शन पृथक नहीं किए जा सकते। बट्रेण्ड रसेल जितने बड़े दार्शनिक थे, उतने ही साहित्य सर्जक भी थे। शंकराचार्य जितने बड़े दार्शनिक थे, उतने ही बड़े साहित्यकार भी थे। यह आवश्यक भी नहीं कि हर दार्शनिक साहित्यकार हो, या कि हर साहित्यकार दार्शनिक हो। दर्शन

हमारी दृश्य-शक्ति को सक्रिय करता है, साहित्य हमारी कल्पना को तरंगित करता है। इसलिए आज जब हम साहित्य पढ़ते हैं, तो कविता में कविता, कहानी में कहानी, नाटक में नाटक, निबंध में निबंध ही नहीं पढ़ते, बल्कि एक रचना में अनेकताएँ पढ़ते हैं- दर्शन भी, सौंदर्य भी, भाषा भी, संगीत भी, कलाएँ भी और मनुष्य, प्रकृति, जीव जगत भी। साहित्य को किसी एक अनुशासन से बाँधकर नहीं रखा जा सकता। वह साहित्येतर अनेक अनुशासनों का सामंजस्य भी करता है और स्वयं एक अनुशासन भी बना रह सकता है।

प्रगतिशील विचारों ने जब साहित्य में राजनीतिक-अराजनीतिक का भेद प्रारंभ किया, मार्क्स से लेकर इंगलटन, अल्थूसर, आर्तो देरिदा तक आते-आते साहित्य में जितने भी हस्तक्षेप हुए, वे सब किसी एक ही मुकाम पर टिके रहने के विरुद्ध थे। साहित्य को क्लासिक या रोमेंटिक के नाम पर भी नहीं बाँधा जा सकता। वह किसी के लिए पाठ है, किसी के लिए व्याख्या, विश्लेषण, किसी के लिए दर्शन या मूल्य, किसी के लिए सौंदर्य तो किसी के लिए भाषा-संस्कार, यहाँ तक कि किसी के लिए संगीत, पेंटिंग, कोलाज या पेरोडी भी दर्शन सिद्धांत देकर सिद्धांत में रहकर या उसका खण्डन करने तक सीमित रहता है, जबकि साहित्य, दर्शन का रागात्मक विस्तार कर देता है।

जब हम किसी व्यक्तित्व की चर्चा करते हैं तो उसके अन्तर्मुखी या बहिर्मुखी स्वभाव की चर्चा करते हैं। अन्तर्मुखी होना चिन्तन का प्रारूप है जबकि बहिर्मुखी अभिव्यक्ति का। जब एक साहित्यकार अन्तर्मुखी होता है तो उसकी रागात्मक शक्तियाँ जाग्रत होती हैं और वह कल्पना के शीर्ष पर जाकर अपनी व्यंजना या अभिव्यक्ति की खोज करता है। इसे साहित्य का अध्यात्म-चिन्तन कह सकते हैं जिसकी राग-प्रतिमाएँ बनती हैं जो शब्द में निहित होती हैं और शब्द एक सर्जक की कल्पना से अनेकार्थी हो जाते हैं, उनमें अर्थ का उन्मेष रचना को दर्शन तक पहुँचा देता है जैसा हम 'कामायनी' में देखते हैं या 'राम की शक्तिपूजा' में देखते हैं। नरेश मेहता की 'संशय की एक रात' या अज्ञेय की 'असाध्यवीणा' पढ़कर, हम शब्द के अर्थ की बहुलता से टकराते हैं और शब्द से ही अर्थव्यंजित नहीं करता, वह ध्वनि से, संगीत से, लय से और उसमें निहित संवेदन या सौंदर्य से भी अर्थ-व्यंजना करता है। इसलिए यह कहा जा सकता है कि साहित्य अपनी पराकाष्ठा में दर्शन हो जाता है जिसका एक रूप दांते की डिवाइन कामेडी में है या मिल्टन के पेरेडाइज लास्ट, पेरेडाइज गेन्ड में भी है। वर्डस्वर्थ जब ट्रेंक्विलिटी में काव्य-ध्वनियों को सुनना चाहता है, तो इस प्रशांति का एकान्त उसे काव्य से दर्शन तक ले जाता है। कॉलरिज का 'कुबलाई खान' तो एक प्रकार से अन्तर-विलय की ही रचना है। अज्ञेय का छोटा-सा उपन्यास 'अपने-अपने अजनबी' जिस मृत्यु बोध में खड़ा करता है, वह केवल मृत्यु-बोध न होकर मृत्यु में से जीवन को पाने की कोशिश भी है। जैनेन्द्र का 'त्यागपत्र' पढ़ते हुए यह लगता है जैसे 'त्याग' की भौतिक-निवृत्ति किसी मनो-भाव में विलीन हो गई हो। इलाचंद्र जोशी की मनोवैज्ञानिक कथाएँ भी अंतत: मनोरागों का साहित्यिकीकरण ही है।

साहित्य और दर्शन समूची पारस्परिकता के साथ संयुक्त भी हैं और पृथक भी। संयुक्तता साहित्य के शिल्प, शैली, अर्थबोध, व्यंजना और भाषा का उन्मेष प्रकट करती है जबकि पृथकता दोनों को अपने-अपने अनुशासनों में सीमित करती है। आज जब साहित्य ज्ञान, विज्ञान, समाज-शास्त्र, राजनीति, इतिहास, अर्थशास्त्र, भूमण्डल, बाजार सभी का एक संयुक्त संस्करण बनने लगा है, ऐसे में दर्शन कैसे पृथक रह सकता है। भूमण्डलीय अर्थवृत्ति भौतिकता ग्रस्त हो सकती है लेकिन जब वह साहित्य बनती है तो अर्थवृत्ति व्यर्थ होने लगती है और भौतिकता की यह व्यर्थता अंतत: साहित्य में भी दर्शन हो जाती है। इसलिए दर्शन को कुछ बड़े चिन्तकों की तर्क प्रणाली ही नहीं कहा जा सकता बल्कि दर्शन भी साहित्य में सर्जनात्मक हो जाता है। निर्गुण या सूफी साहित्य इसका बड़ा उदाहरण है। साहित्य और दर्शन अब मनुष्य की नई अभिव्यक्ति चाहते हैं। वे सृजन और चिन्तन को रचना की लोक-व्याप्ति में देखना चाहते हैं। इसलिए साहित्य का एक नया चराचरवादी दर्शन इस प्रकार विकसित करना जरूरी है जो भौतिक यंत्र प्रौद्योगिकता के समय में भी मनुष्य की राग-रक्षा या भाव-रक्षा कर सके।

एस. एच. 19, ब्लॉक-8, सहयाद्रि परिसर,
भदभदा रोड, भोपाल-462003 (म.प्र.)
मो.- 07554244064

कन्या-पूजा, कन्या शुल्क और स्त्रीधन

- रामेश्वर मिश्र पंकज

रीवा मध्य प्रदेश में जन्मे प्रसिद्ध दार्शनिक, समाजवैज्ञानिक एवं इतिहासविद, समाजवादी एवं गाँधीवादी आंदोलनों में सक्रियता, विभिन्न महत्त्वपूर्ण पदों से सेवा निवृत्त। वर्तमान में निरंतर सृजनरत। आपकी बाइस पुस्तकें प्रकाशित हैं।

मनु सहित सभी धर्मशास्त्रकारों का स्पष्ट कथन है कि कन्या के विनिमय के रूप में किसी भी प्रकार का तनिक सा भी शुल्क नहीं लेना चाहिये। दान कन्या का ही दिया जाता है। इसीलिये उसके एवज में कुछ भी लेना कन्या शुल्क है। यह सब प्रकार से वर्जित है। मनु का कहना है कि ऐसा करने वाला अर्थात् तनिक भी शुल्क लेने वाला व्यक्ति अपनी संतान को बेचने का अपराधी माना जाता है और सब प्रकार से निन्दनीय है –

न कन्यायाः पिता विद्वानगृह्णीयाच्छुल्कमण्वपि।
गृह्णछुल्कं हि लोभेन स्यान्नरोऽपत्यविक्रयी।।
(मनुस्मृति अध्याय 3, श्लोक 51)

विद्वान पिता को कन्या का अणु मात्र भी शुल्क (शुल्कमण्वपि) नहीं ग्रहण करना चाहिये (न गृहणीयात्)। क्योंकि लोभ से ऐसा करने पर उसे अपत्यविक्रयी (संतान बेचने वाला) माना जाता है। इसके स्थान पर कहा गया है –

यासां नाददते शुल्कं ज्ञातयो न स विक्रयः।
अर्हणं तत्कुमारीणामानृशंस्यं च केवल्म। (वही श्लोक 54)

अर्थात् पिता, माता और ज्ञातिजन जिस कन्या का विवाह करते समय बदले में किसी प्रकार का शुल्क नहीं लेते, उन माता-पिता आदि को ऐसे कन्या-विवाह के फलस्वरूप पूजा का फल मिलता है क्योंकि बिना शुल्क लिये कन्या का दान करना यानी विवाह करना पूजा ही है। इस प्रखर वैदिक रीति से श्रद्धापूर्वक कन्या का विवाह करना पूजा-कर्म है। उसका पुण्य फल मिलता है। इसीलिये आगे यह भी कहा है कि –

पितृभिर्भ्रातृभिश्चैता पतिभिर्देवरैस्तथा।
पूज्या भूषयितव्याश्च बहुकल्याणमीप्सुभिः।।
(वही श्लोक 55)

अर्थात् इस तरह से बिना शुल्क लिये कन्यादान और विवाह करना पूजाकर्म है और अपने कल्याण की अभीप्सा रखने वाले पिता के साथ ही कन्या का भाई, कन्या का पति और कन्या का देवर भी उसे वस्त्र, आभूषण आदि आदरपूर्वक देकर उसकी पूजा कर सकते हैं। इस प्रकार यह पूर्णतः पूजाकर्म ही शास्त्र में कहा गया है।

इससे आगे बहुत विस्तार से मनु ने स्त्रियों की पूजा और आदर का महत्व प्रतिपादित किया है –

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः।।
शोचन्ति जामयो यत्र विनशत्याशु तत्कुलम्।
न शोचन्ति तु यत्रैता वर्धते तद्धि सर्वदा।।
जामयो यानि गेहानि शपन्त्यप्रति पूजिताः।
तानि कृत्याहतानीव विनश्यन्ति समन्वतः।।
तस्मादेताः सदा पूज्याः भूषणाच्छादनाशनैः।
भूतिकामैर्नरैर्नित्यं सत्कारेषूत्सवेषु च।।
सन्तुष्टो भार्यया भर्त्ता भर्त्रा भार्या तथैव च।
यस्मिन्नेव कुले नित्यं कल्याणां तत्र वै ध्रुवम्।।
(मनुस्मृति, अध्याय 3, श्लोक 56 से 60 तक)

अर्थात् कन्या के पिता और ज्ञाति बंधु तथा कन्या के पति, देवर आदि सभी को कन्या को आदर मान सहित वस्त्र आभूषण आदि प्रदान करने का कार्य मंत्रों सहित पूजा के भाव से इसलिये करना चाहिये क्योंकि जहाँ नारियों की पूजा होती है, वहीं पर देवताओं को भी आनन्द आता है। देवता वहीं रमण करते हैं। जहाँ उनकी पूजा नहीं होती, वहाँ अन्य सब पूजा पाठ, यज्ञ आदि कर्म सम्यक फल नहीं देते। परिवार में यदि स्त्रियाँ चिंता से चिंतित रहें तो ऐसे कुल का विनाश शीघ्र ही हो जाता है। जबकि जहाँ स्त्रियाँ चिंता से मुक्त, संतुष्ट और प्रसन्न रहती हैं, उस कुल की निरंतर वृद्धि होती है। जिन घरों में स्त्रियों को पीड़ित किया जाता है और वे मन ही मन परिवार को शाप देती हैं, उन परिवारों में अचानक दैवी प्रकोप टूट पड़ता है। अचानक आग लग जाना या जलप्रवाह में घर का बह जाना या ढह जाना अथवा दुर्घटना आदि उस परिवार के लोगों के साथ अवश्य घटती रहतीं हैं। नारियों की प्रसन्नता से परिवार का उत्कर्ष होता है और

अपने परिवार का उत्कर्ष चाहने वाले पुरुषों का कर्तव्य है कि वे सभी प्रकार के उत्सवों के अवसर पर स्त्री का सत्कार अवश्य करें। उत्तम भोजन, वस्त्र और यथोचित यथाशक्ति आभूषण आदि देकर यह सत्कार होता है। जिस परिवार में भर्ता अपनी भार्या से संतुष्ट रहता है और भार्या अपने भर्ता से संतुष्ट रहती है, वहाँ कुल का कल्याण सुनिश्चित है।

आगे मनु ने यह भी बताया है कि आनंदित स्त्री ही पुरुष को सुख दे सकती है। ऐसी सुखी स्त्री से ही श्रेष्ठ संतान उत्पन्न होती है। अन्यथा कुल में शोक का वातावरण बना रहता है –

सन्तुष्टो भार्यया भर्त्ता भर्त्रा भार्या तथैव च।
यस्मिन्नेव कुले नित्यं कल्याणं तत्र वै ध्रुवम्।।
यदि स्त्री न रोचेत पुमांसं न प्रमोदयेत्।
अप्रमोदात्पुनः पुंसः प्रजनं न प्रवर्तते।।

(उक्त में श्लोक 60 व 61)

स्त्रीधन :- विवाह के समय कन्या का पूजन होता है। अतः विदाई के समय कन्या को जो कुछ दिया जाता है, वह वस्तुतः कन्या पूजन रूपी यज्ञ की दक्षिणा ही है। किसी भी रूप में वह वर पक्ष को दिया जाने वाला कोई शुल्क नहीं है। क्योंकि वर पक्ष को तो कन्या का दान ही मिलता है। अतः शुल्क यदि किसी को देना पड़े तो वर पक्ष को ही देना पड़ेगा। परन्तु धर्मशास्त्रकारों ने कन्या के दान के बदले में किसी भी प्रकार का शुल्क लेने को निंदनीय पाप माना है। यह ऊपर चर्चा हो चुकी है। अतः ऐसी स्थिति में विवाह के उपरांत जो कुछ उपहार दिये जाते हैं, वे कन्या दान रूपी यज्ञकर्म की दक्षिणा ही है। उस पर वस्तुतः कन्या का ही अधिकार होना चाहिये। मनु ने स्पष्ट कहा है कि कन्या को जो कुछ भी धन-सम्पत्ति, मूल्यवान वस्त्र, वाहन आदि धन मिले वह सब स्त्रीधन है। जो लोग पति के नहीं रहने पर धन के मोहवश उस स्त्रीधन के बल पर ही जीना चाहते हैं, वे पापी हैं और उनकी अधोगति होती है –

स्त्रीधनानि तु ये मोहादुपजीवन्ति बान्धवाः।
नारीयानानि वस्त्रं वा ते पापाः यान्त्यधोगतिम्।।

(मनुस्मृति अध्याय 3, श्लोक 52)

वस्तुतः ऋग्वेद में दशम् मण्डल के दो मंत्रों में सूर्या की वधू भेंट और पशु आदि उपहार में दिये जाने का वर्णन है। अथर्ववेद में भी वे ही मंत्र हैं। 'वहतुः' का सायण ने भाष्य किया है-गाय एवं अन्य पदार्थ जो विवाहित होने वाली कन्या को प्रसन्न करने के लिये दिये जाते हैं। मनु ने अध्याय 9, श्लोक 11 में इसके लिये पारिणह्य शब्द का प्रयोग किया है जो घर में उपयोग में आने वाली सभी वस्तुओं के लिये हैं। आपस्तम्ब धर्मसूत्र में कहा गया है कि कन्या अपने साथ अपने पिता, भाई आदि ज्ञातियों से जो कुछ पाती है और ससुराल में लाती है, वह सब स्त्री की सम्पत्ति है।

चाणक्य का निर्णय :- चाणक्य ने स्त्रीधन की परिभाषा दी है -अर्थशास्त्र के अधिकरण 3 के द्वितीय अध्याय में लिखा है- वृत्तिराबन्ध्यं वा स्त्रीधनम्।।16।। परद्विसाहस्रा स्थाप्या वृत्तिः।।17।। आबध्यानियमः।।18।। तदात्मपुत्रस्नुषाभर्मणि प्रवासाप्रतिविधाने च भार्याया भोक्तुमदोषः।।19।। प्रतिरोधकव्याधि-दुर्भिक्षभयप्रतीकारे धर्मकार्ये च पत्युः।।20।। सम्भूय वा दम्पत्योर्मिथुनं प्रजातयोस्त्रिवर्षोपभुक्तं च धर्मिष्ठेषु विवाहेषु नानुयुंजीत।।21।। गान्धर्वासुरोपभुक्तं सवृद्धिकमुभयं दाप्येत।।22।। राक्षसपैशाचोपभुक्तं स्तेयं दद्यात्।।23।। इति विवाहधर्मः।।24।।

अर्थात् जो वर की ओर से कन्या को दिया जाता है, वस्त्र-आभूषण आदि, वह सब स्त्रीधन कहलाता है। यह दो प्रकार का होता है। जीवन वृत्ति एवं आबध्य अर्थात् जो कुछ भी आभूषण आदि शरीर में बाँधा जा सके। वृत्ति का अर्थ है नगद धन। प्रतिवर्ष दी जाने वाली नगद धन की सीमा चाणक्य के समय चाँदी के दो हजार सिक्के रखे गये थे। आबध्य की कोई सीमा नहीं है। कितने भी वस्त्र और आभूषण दिये गये हों, वे सब स्त्रीधन है। अगर पति प्रवास पर गया हो और कोई प्रबंध न कर पाया हो तो स्त्री अपने धन का उपयोग पुत्र और पुत्रवधू के पालन-पोषण के लिये कर सकती है। कोई विपत्ति उपस्थित हो तो पत्नी की सहमति से पति भी स्त्रीधन में से कुछ व्यय कर सकता है या दो बच्चे उत्पन्न हो जाने के बाद पति-पत्नी मिल कर उस धन का कोई उपयोग कर सकते हैं। परन्तु यदि गांधर्व और असुर विवाह हो तो पति को कोई भी स्त्रीधन व्यय करने का अधिकार नहीं है। खर्च करने पर ब्याज सहित धनराशि जमा करनी पड़ेगी। अगर वे जमा नहीं करते तो उन्हें चोरी का दंड मिलेगा। यह विवाह धर्म है।

आगे चाणक्य ने कहा है कि यदि पति मर जाये और पत्नी दूसरा विवाह न करना चाहे अपितु धर्ममय जीवन ही उसी घर में जीना चाहे तो वह उस धन को अपनी इच्छा अनुसार व्यय कर सकती है। यदि किसी समय बंधु-बांधवों ने वह धन उससे माँगा हो तो उन्हें वह धन उसे वापस कर देना चाहिये। विशेषकर यदि स्त्री

पुनर्विवाह करना चाहती है तो उसे स्त्रीधन मिलेगा। परंतु पति का दाय भाग नहीं मिलेगा। अन्यथा यदि वह उसी घर में रह कर धर्म कार्य करना चाहती है तो स्त्रीधन तो उसका है ही और उसकी स्वामिनी वह ही है, साथ ही उसे पति का दायभाग यानी संपत्ति में हिस्सा भी मिलेगा। अगर स्त्री की मृत्यु हो जाती है तो उस स्त्रीधन को पुत्र और पुत्री आपस में बाँट सकते हैं। पुत्र न हो तो पुत्रियाँ ही उस धन की स्वामिनी होंगी।

विविध विवेचनाएँ :- गौतम ने स्त्रीधन के विषय में तीन सूत्र दिये हैं। परंतु उनका विस्तृत विवेचन वहाँ नहीं है। कात्यायन स्मृति का कथन है कि स्त्री को नगद स्त्रीधन तो दिया जाना चाहिये परंतु अचल सम्पत्ति नहीं दी जानी चाहिये। मनु का कहना है कि (1) विवाह के समय अग्नि की साक्षी में जो कुछ भी माता-पिता और बंधु-बांधवों द्वारा दिया जाये या (2) पिता के घर से पतिगृह जाती हुई कन्या के लिये जो कुछ भी दिया जाये अथवा (3) किसी भी प्रीतिकर्म के समय पति द्वारा जो कुछ भी दिया जाये या (4) पिता के द्वारा जो कुछ भी विभिन्न अवसरों पर दिया जाये (5) माता के द्वारा जो कुछ भी विभिन्न अवसरों पर दिया जाये (6) भाई के द्वारा जो कुछ भी विभिन्न अवसरों पर दिया जाये, ये छः प्रकार के धन स्त्रीधन कहे गये हैं-

अध्यग्न्यध्यावाहनिकं दत्तं च प्रीतिकर्मणि।
भ्रातृमातृपितृप्राप्तं षड्विधं स्त्रीधनं स्मृतम्।।
(मनुस्मृति अध्याय 9, श्लोक 194)

इसके साथ ही मनु ने यह भी स्पष्ट किया है कि विवाह के बाद पति कुल में या पिता के कुल में जो कुछ भी भेंट आदि स्त्री को दी जाये, जिसे अन्वाधेय (अर्थात् बाद में मिलने वाली भेंट) कहते हैं, उस पर भी स्त्री का ही अधिकार रहता है और स्त्री के नहीं रहने पर पति यदि जीवित भी हो तो भी उस धन पर अधिकार पुत्रों और पुत्रियों का रहता है, न कि पति का। यदि स्त्री संतानहीन हो तो फिर समस्त स्त्रीधन के अधिकारी स्त्री की मृत्यु के बाद उसके पति ही होते हैं।

कात्यायन ने अनेक श्लोकों में स्त्रीधन का विस्तारपूर्वक वर्णन किया है। प्रत्येक प्रकार के स्त्रीधन को उन्होंने अलग-अलग नामों से निर्देशित किया है। 'विवाह के समय अग्नि के समक्ष जो दिया जाता है, उसे बुद्धिमान् लोग अध्यग्नि स्त्रीधन कहते हैं। पति के घर जाते समय जो कुछ स्त्री पिता के घर से पाती है उसे अध्यावहनिक स्त्रीधन कहा जाता है। श्वसुर या सास द्वारा स्नेह से जो कुछ दिया जाता है और श्रेष्ठ जनों को वन्दन करते समय उनके द्वारा जो कुछ प्राप्त होता है उसे प्रीतिदत्त स्त्रीधन कहा जाता है। वह शुल्क कहलाता है जो बरतनों, भारवाही पशुओं, दुधारू पशुओं, आभूषणों एवं दासों के मूल्य के रूप में प्राप्त होता है। विवाहोपरान्त पति-कुल एवं पितृ-कुल के बन्धु-जनों से जो कुछ प्राप्त होता है, वह अन्वाधेय स्त्रीधन कहलाता है। भृगु के मत से स्नेहवश जो कुछ पति या माता-पिता से प्राप्त होता है वह अन्वाधेय कहलाता है।' कात्यायन द्वारा प्रस्तुत अध्यग्नि एवं अध्यावहनिक की परिभाषाओं में वे भेंटें भी सम्मिलित हैं जो विवाह के समय आगन्तुकों द्वारा प्रदत्त होती हैं। वह सौदायिक कहा जाता है जो विवाहित स्त्री या कुमारी को अपने पिता या पति के घर में मिल जाता है या भाई से या माता-पिता से प्राप्त होता है।

कात्यायन की उपर्युक्त परिभाषाएँ सभी निबन्धकारों को मान्य हैं। यहाँ तक कि दायभाग ने भी उनका अनुमोदन किया है।

स्त्रीधन पृथक सम्पत्ति है : - इस विषय में सम्पत्ति के स्वामित्व अर्थात् स्वत्व के उद्गम के स्वरूप पर विचार का स्मरण करना होगा। धर्मशास्त्रों में स्वत्व पर विस्तार से विचार किया गया है। सम्पत्ति या दाय का स्वामित्व वस्तुतः कुल का होता है, व्यक्तियों का नहीं। निश्चय ही धर्मशास्त्र में यह व्यवस्था भी है कि कुल की सम्पत्ति को हानि पहुँचाये बिना अर्जित की गई सम्पत्ति पृथक सम्पत्ति है जैसे कि विद्या धन या शौर्य धन या शत्रु से युद्ध में बलपूर्वक छीनी गई सम्पत्ति जिसे परिगृह कहा जाता है। स्त्री धन को इस अर्थ में पृथक सम्पत्ति ही माना जाना चाहिये। क्योंकि वह कुल की सम्पत्ति को कोई भी हानि पहुँचाये बिना कन्या को दिये गये दान के रूप में प्राप्त सम्पत्ति है।

'विवादचिन्तामणि' का कहना है कि कन्या जब पिता के घर से पति के घर के लिये विदा होती है, उस समय उसके कुल से जुड़े गृहनिर्माता या स्वर्णकार आदि जो धन कन्या को इसलिये देते हैं कि वह पति को नई गृहरचना आदि के लिये प्रेरित करें। इसे 'दोह्याभरण' कहा गया है। व्यास स्मृति का कथन है कि स्त्रीधन वह धन है जो कन्या को पति के घर प्रसन्नतापूर्वक जाने को प्रेरित करे। मनु ने जो छः प्रकार के स्त्रीधन कहे हैं, उसकी स्वामिनी स्त्री ही होती है, यह भी उन्होंने वहीं पर स्पष्ट कर दिया

है। इसीलिये मनु ने कहा है कि पति के जीवित रहते हुये भी मृत स्त्री के स्त्रीधन को पाने का अधिकार उसके पुत्रों और पुत्रियों को ही होता है। यहाँ स्पष्ट रूप से मनु ने स्त्रीधन का स्वामी पति को नहीं माना है। श्लोक है–

अन्वाधेयं च यदत्तं पत्या प्रीतेन चैव यत्।
पत्यौ जीवति वृत्तायाः प्रजायास्तद्धनं भवेत्।।

चाणक्य ने अर्थशास्त्र में धर्मस्थीय नामक तीसरे अधिकरण में दूसरे अध्याय में लिखा है –

जीवति भर्तरि मृतायाः पुत्रा दुहितरश्च स्त्रीधनं विभजेरन्।।42।। अपुत्रायाः दुहितरः।।43।। तदभावे कर्ता।।44।। शुल्कमन्वाधेयमन्यद् वा बन्धुभिर्दत्तं बान्धवा हरेयुः।।45।।

(पत्नी की मृत्यु होने पर पति जीवित है तो भी स्त्रीधन को पुत्र और पुत्री परस्पर बाँट लें। पुत्र के न होने पर पुत्रियाँ ही सम्पूर्ण स्त्रीधन ले लें। यदि कोई भी संतान जीवित नहीं है और पत्नी मर गई है, तब केवल उस स्थिति में स्त्रीधन का अधिकारी पति है। स्त्री जो कुछ भी शुल्क या धरोहर या अन्य किसी प्रकार धन प्राप्त करती है, वह स्त्रीधन है और उसके जीवित न रहने पर ही उसके पति कुल के बान्धव उस धन के अधिकारी हैं।)

चाणक्य के समय वयस्क होने की आयु :– यहाँ यह स्मरण रखना चाहिये कि चाणक्य के समय 12 वर्ष की कन्या और 16 वर्ष के युवक को व्यवहार के योग्य अर्थात् वयस्क मान लिया जाता था। इसी प्रकार उस समय तक कोई भी पुरुष अनेक पत्नियाँ रखने का अधिकारी मान्य था। चाणक्य का कथन है – **शुल्क स्त्रीधनमशुल्कस्त्री–धनायास्तत्प्रमाणमाधिवेदंनिकमनुरूपां च वृत्तिं दत्त्वा बह्वीरपि विन्देत।।52।। (धर्मस्थीय–अधिकरण, द्वितीय अध्याय)**

अर्थात् शुल्क धन एवं स्त्री धन तथा आदि वेदनिक धन देकर पत्नी की वृत्ति का प्रबंध करके पति अनेक पत्नियाँ रख सकता है। इससे भी स्पष्ट है कि स्त्रीधन की स्वामिनी स्त्री स्वयं है और पुरुष को अन्य विवाह करने पर उसे वह धन उसके स्वामित्व में ही रहने दे कर साथ ही वृत्ति के लिये स्त्री को अलग से और धन देना पड़ता है।

धर्मबोध एवं आत्मबोध ही सुरक्षा का मूल है :– वस्तुतः मनुस्मृति के अध्याय 8, श्लोक 416 को समझने के संदर्भ में इसका संबंध इन श्लोकों से जोड़ना ही उचित है –

इमं हि सर्ववर्णानां पश्यन्तो धर्ममुत्तमम्।
यतन्ते रक्षितुं भार्यां भर्तारो दुर्बला अपि।।
स्वां प्रसूति चरित्रं च कुलमात्मानमेव च।
स्वं च धर्मं प्रयत्नेन जायां रक्षन्हि रक्षति।।
पतिर्भार्यां संप्रविश्य गर्भो भूत्वेह जायते।
जायायास्तद्धि जायात्वं यदस्यां जायते पुनः।।
यादृशं भजते हि स्त्री सुतं सूते तथाविधम्।
तस्मात्प्रजाविशुद्धयर्थं स्त्रियं रक्षेत्प्रयत्नतः।।
(मनुस्मृति अध्याय 9, श्लोक 6 से 9)

(अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र सभी वर्ण के लोगों में यह उत्तम धर्म देखा गया है कि उनमें जो दुर्बल पति हों वे भी भार्या की रक्षा का प्रयत्न अवश्य करते हैं। क्योंकि भार्या की रक्षा करते हुये ही पति अपनी संतान, कुल, आत्मा और धर्म की रक्षा कर सकता है। अतः पत्नी की रक्षा उत्तम धर्म है। पति ही भार्या में प्रवेश होकर संतान का निमित्त और कारण बनता है। संतान को जन्म देकर ही स्त्री जाया अर्थात् जन्म देने वाली कहलाती है। स्त्री जिस प्रकार के पति का स्मरण और मनन करती है, उसकी संतान भी वैसी ही प्रज्ञा वाली होती है। इसलिये स्त्री के चित्त का शुद्ध रहना अत्यंत महत्त्वपूर्ण है और इसीलिये पति को सब प्रकार से उसकी रक्षा अवश्य करनी चाहिये।

यद्यपि आगे मनु ने यह भी स्पष्ट किया है कि रक्षा का अर्थ घर में बंद रखना नहीं है अपितु उनकी धर्मानुकूल बुद्धि ही उनकी वास्तविक रक्षक है –

अरक्षिता गृहे रुद्धाः पुरुषैराप्तकारिभिः।
आत्मानमात्माना यास्तु रक्षेयुस्ताः सुरक्षिताः।। (9/12)

(आप्तकारी अर्थात् अपने अधीन रखने की इच्छा वाले पुरुषों के द्वारा घर की सीमा में ही सीमित कर दी जाने वाली पत्नी वस्तुतः अरक्षित होती है। वही स्त्री सुरक्षित है जो आत्मरक्षित है और जिसमें आत्मबोध है।)

इस तरह स्त्री की स्वतंत्र अस्मिता और धर्मबुद्धि को धर्मशास्त्रकारों ने स्पष्ट रूप से महत्व दिया है और उस स्वतंत्र अस्मिता की दृष्टि से ही स्त्रीधन का भी महत्व है। **(क्रमशः)**

ए 141, आकृति हाईलैण्ड
डाकघर–फंदा, भोपाल–462030 (म.प्र.)
मो. 8349350267

पाण्डवों का वनगमन और द्रौपदी को कृष्ण का स्पष्टीकरण

– कुसुमलता केडिया

इतिहास, समाज विज्ञान और अर्थशास्त्र की गहरी अध्येता और तर्कपूर्ण विवेचना में सिद्धहस्त विदुषी प्रो. कुसुमलता केडिया के वैचारिक आलेखों का श्रृंखलाबद्ध रूप से प्रकाशन किया जा रहा है ताकि हमारे पाठकों में बौद्धिक उत्तेजना उत्पन्न हो और वे हमारी ज्ञान परंपरा को तार्किक ढंग से आत्मसात कर मौलिक लेखन की ओर प्रवृत्त हों। प्रस्तुत है इस लेखमाला की अगली किश्त **'पाण्डवों का वनगमन और द्रौपदी को कृष्णा का स्पष्टीकरण'** *पाठकों की प्रतिक्रिया की प्रतीक्षा रहेगी।*

– सम्पादक

स्वदेशी अर्थचेतना की संवाहक।

जन्म – 2 जुलाई 1954।

जन्म स्थान – पडरौना (उ.प्र.)।

शिक्षा – एम.ए., पीएच.डी।

रचनाएँ – अनेक पुस्तकें प्रकाशित।

देवर्षि नारद की कठोर वाणी से भयभीत धृतराष्ट्र तो मूर्छित हो गये और दुर्योधन, कर्ण तथा शकुनि ने आचार्य द्रोण के चरणों में राज्य समर्पित कर दिया, तब द्रोणाचार्य ने शांत स्वरों में समस्त भरतवंशियों को समझाया–'पाण्डव देवताओं के पुत्र हैं। अत: अवध्य हैं। मैं संपूर्ण शक्ति से तुम्हारा साथ दूँगा क्योंकि तुम मेरी शरण में आये हो और शरणागत का त्याग करना धर्मसम्मत नहीं है। परन्तु यह ध्यान रहे कि वन में इस तरह पाण्डवों का जाना उनकी तपश्चर्या है और वहाँ वे संयम पूर्वक जीवन व्यतीत कर विशेष बल के साथ लौटेंगे। उनके साथ जो कुछ हुआ है, उससे उन्हें क्रोध और अमर्ष स्वाभाविक है और उस अमर्ष तथा क्रोध से भरकर वे महाबली जो प्रतिकार करेंगे, वह सबके लिये महान दुख का कारण बनेगा। तुम जानते ही हो कि धृष्टद्युम्न मेरी मृत्यु का कारण बनेगा, यह सर्वविदित है। वह देवता का दिया हुआ पुत्र है और धनुष, बाण तथा कवच के साथ यज्ञ कुण्ड से प्रकट हुआ है। अत: वह मेरे लिये घातक सिद्ध होगा। तुम लोगों का भी कल्याण इसमें ही है कि तुम किसी प्रकार पाण्डवों को जाकर मनाओ और लौटा लाओ।'

धृतराष्ट्र ने भी आचार्य द्रोण की बात का समर्थन किया और विदुर को कहा कि जाकर पाण्डवों को लौटा लाओ। संजय ने भी इसी बात का समर्थन किया और धृतराष्ट्र से यह भी कहा कि इस सब अनिष्ट का मूल आप ही हैं।

विदुर ने भी समझाया कि आपका पुत्रमोह इस सब अनर्थ के मूल में है। मैंने आपसे स्पष्ट कहा था कि इस दुर्योधन पर नियंत्रण कीजिये और पाण्डवों के साथ न्याय कीजिये। इस पर धृतराष्ट्र ने कहा कि 'तुम्हारी बात तो सही है पर मेरा मन इसे स्वीकार नहीं करता। मैं पाण्डवों के हित के लिये अपने पुत्रों का त्याग कैसे कर दूँ। तुम चले जाओ या रहो, इससे मुझे कोई प्रयोजन नहीं। यदि तुम चले जाते हो तो मैं मानूँगा कि तुम उस कुलटा स्त्री की तरह हो जो स्वामी के द्वारा सद्व्यवहार करने पर भी उन्हें त्याग देती है।'

इतना कहकर धृतराष्ट्र सहसा उठकर महल के भीतर चल दिये। व्यासदेव के शब्द हैं –

'एतावदुक्त्वा धृतराष्ट्रोऽन्वपद्यदन्तर्वेश्म सहसोत्थाय राजन्'–राजा धृतराष्ट्र सहसा उठकर चल दिये।

इस पर विदुर ने कहा कि अब इस कुल का नाश अवश्यंभावी है। इतना कहकर वे पाण्डवों के पास चल दिये जो सरस्वती, दृषद्वती और यमुना नदी के तट से बढ़ते हुये एक वन से दूसरे

वन में प्रवेश करते हुये मरूभूमि और वन्य प्रदेशों को पार कर काम्यक वन में प्रवेश कर चुके थे। युधिष्ठिर ने उनका स्वागत किया। विदुर ने धृतराष्ट्र से हुई बातचीत का सार बताया और कहा कि अब मेरा उपदेश तुम सब ध्यान से सुनो–'शत्रु का दुख सहते हुये अनुकूल अवसर की प्रतीक्षा करनी चाहिये। सदा मन को वश में रखना चाहिये और सहायकों का संग्रह करते जाना चाहिये।' युधिष्ठिर ने कहा कि हम ऐसा ही करेंगे।

इस बीच धृतराष्ट्र को होश आया और उन्हें लगा कि मैं गलत व्यवहार कर चुका हूँ। अत: उन्होंने विदुर को बुला लाने के लिये संजय को भेजा और विदुर के आने पर उनसे क्षमायाचना की। विदुर ने कहा कि मैं तो पहले ही आपको क्षमा कर चुका हूँ।

परंतु विदुर को वापस आया देख दुर्योधन विचलित हो गया और वह कर्ण के साथ मिलकर पाण्डवों का वध करने के लिये वन में जाने की तैयारी करने लगा। तभी वहाँ महर्षि वेदव्यास पधारे और उन्होंने धृतराष्ट्र को समझाया। धृतराष्ट्र ने कहा कि दुर्योधन नहीं समझता आप ही उसे समझाइये। इस पर महर्षि वेदव्यास ने कहा कि महर्षि मैत्रेय आ गये हैं और वे ही तुम्हारे पुत्र को यथायोग्य शिक्षा देंगे। धृतराष्ट्र ने उनका स्वागत किया और उनके कहने पर महर्षि मैत्रेय ने दुर्योधन को समझाने का प्रयास किया परन्तु दुर्योधन ने अपनी मुख–मुद्रा से अशिष्टता और उपेक्षा का प्रदर्शन किया। इस पर मुनिश्रेष्ठ मैत्रेय ने शाप दिया–'दुर्योधन, तू अभिमानी है। तेरे इस स्वभाव के कारण बहुत बड़ा युद्ध होगा और भीमसेन अपनी गदा से तेरी जाँघ तोड़ देंगे।' इतना कहकर मुनि चल दिये। धृतराष्ट्र उन्हें रोकने का प्रयास करता ही रह गया। उधर दुर्योधन पुन: शकुनि के साथ मंत्रणा करने लगा।

महाराज युधिष्ठिर ने अपने पुरोहित धौम्य के कहने पर भगवान सूर्य की आराधना की और उनके 108 नामों का भावभरा गायन किया। इससे प्रसन्न होकर सूर्यभगवान ने युधिष्ठिर को अक्षय पात्र दिया और कहा कि इस पात्र से तुम्हें 12 वर्षों तक यथेच्छ अन्न प्राप्त होगा। इस ताम्र पात्र में जो भी भोजन सामग्री तैयार होगी, वह तब तक अक्षय बनी रहेगी, जब तक द्रौपदी स्वयं भोजन किये बिना परोसती रहेगी। द्रौपदी के भोजन के उपरांत भोजन सामग्री विलुप्त हो जायेगी। साथ ही हमारा आर्शीवाद है कि 14वें वर्ष में तुम अपना राज्य पुन: प्राप्त कर लोगे। युधिष्ठिर ने वह पात्र अपने पुरोहित धौम्य जी के चरणों में रखा और उन्होंने द्रौपदी को निर्देश के साथ वह पात्र दे दिया। उसी पात्र के कारण द्रौपदी नित्य वन में भी ब्राह्मणों को भोजन कराने लगी और ब्राह्मणों के भोजन के उपरांत अपने छोटे भाइयों को भोजन कराकर युधिष्ठिर भोजन करते थे और सबसे अंत में द्रौपदी शेष अन्न ग्रहण करती थी। इस तरह वन में भी युधिष्ठिर किसी प्रतापी महाराज के लिये विहित कर्म भलीभाँति करने में समर्थ हुये।

उधर पाण्डवों से मिलने वन में भगवान श्रीकृष्ण पहुँचे जहाँ द्रौपदी ने अपने अपमान और दुख का वर्णन किया। इस पर भगवान श्रीकृष्ण ने आश्वासन दिया कि ऐसा जान पड़ता है कि पृथ्वी दुर्योधन, कर्ण, शकुनि और दुशासन के रक्त का पान करना चाहती है। द्रौपदी के अपमान का स्मरण करके भगवान कृष्ण क्षुब्ध दिखने लगे। इस पर अर्जुन ने हाथ जोड़कर उनसे बार–बार क्षमा माँगी और शांत होने का निवेदन किया। अंत में भगवान कृष्ण ने कृष्णा द्रौपदी को आश्वासन दिया कि 'भाविनि, तुम जिन पर क्रुद्ध हुई हो, उन सब की स्त्रियाँ बाणों से छिन्न–भिन्न और रक्त से लथपथ अपने पतियों का शव धरती पर पड़ा देखेंगी और विलाप करेंगी। मेरी प्रतिज्ञा है। तुम राजरानी बनोगी। चाहे आसमान फट पड़े, हिमालय विदीर्ण हो जाये और पृथ्वी के खंड–खंड हो जायें तो भी मेरी यह बात असत्य नहीं होगी।' द्रौपदी ने भगवान के शब्दों में पूरी श्रद्धा से विश्वास किया।

भगवान श्रीकृष्ण ने द्रौपदी को बताया कि तुम्हारे साथ जो कुछ धृतराष्ट्र की सभा में हो रहा था, वह कदापि नहीं हो पाता यदि मैं वहाँ उपस्थित रहता, तुम्हारी यह बात सही है। परंतु एक तो जुए जैसे व्यसन का कर्मफल अनिवार्य है और वह युधिष्ठिर सहित तुम सबको भोगना पड़ा। क्योंकि युधिष्ठिर इस मान्यता के

वशीभूत थे कि क्षत्रिय को आवाहन किये जाने पर द्यूतक्रीड़ा करनी ही चाहिये। उस निमंत्रण को किस प्रकार युक्ति से टाला जाये, यह विवेक नहीं होने से युधिष्ठिर इस व्यसन की चपेट में आ गये। फिर भी तुम्हारी यह शिकायत उचित है कि तुम्हारा उसमें कोई भी दोष नहीं था और तुम्हारी मुझमें जैसी भक्ति है, उसके कारण तुम्हारी रक्षा मेरा दायित्व है। परन्तु मैं शाल्व के साथ युद्ध में रत होने से उस समय नहीं आ पाया।

इस पर द्रौपदी को भी जिज्ञासा हुई और चिन्ता हुई तथा युधिष्ठिर ने भी जानना चाहा कि आपको उस समय शाल्व के साथ युद्ध में क्यों उलझना पड़ा। तब भगवान श्रीकृष्ण ने युधिष्ठिर को बताया कि शिशुपाल का वध सुनकर शाल्व जो शिशुपाल का संबंधी था, भयंकर क्रुद्ध हुआ और वह अपने सौभ नामक विमान पर चढ़कर द्वारका आया तथा यादवों का विनाश करने लगा। उसने हमारे यादव कुल के बहुत से बच्चों का भी वध कर दिया और नगर के सभी उद्यान उजाड़ दिये। इसके बाद वह मुझे युद्ध के लिये ढूँढ़ने लगा। उस समय मैं आपके पास से लौट रहा था और मार्ग में था। द्वारका में पहुँचकर मुझे शाल्व के कुकृत्यों का पता चला और मैंने उसे युद्ध के लिये ललकारा तथा अंत में उसे मार गिराया। यह वही अवधि है जब हस्तिनापुर में दुर्योधन की उद्दंडता का परिणाम आप सब अैर कृष्णा को भोगना पड़ा।

यहाँ प्रसंगवश महाभारत में तत्कालीन युद्ध और सैन्य तैयारियों का महत्त्वपूर्ण और प्रामाणिक वर्णन है। शाल्व के सौभ विमान का वर्णन भी उल्लेखनीय है। बताया गया है कि वह विमान उस पर सवार वीर की इच्छानुसार चलता था और वह दूर-दूर तक सहज ही जा सकता था। इसी क्रम में द्वारिका में युद्ध संबंधी सैन्य तैयारियों का भी वर्णन महाभारत के वन पर्व के 15वें अध्याय में है। उसमें बताया गया है कि द्वारका पुरी में चारों ओर सैनिकों की सुविधा के लिये ऐसे बुर्ज बने हुये थे जिनमें युद्ध के लिये उपयोगी यंत्र बैठाये गये थे और साथ ही हर बुर्ज के नीचे एक सुरंग होती थी जिससे आवश्यकता होने पर दूर-दूर तक जाया जा सकता था। युद्ध का प्रसंग आते ही सड़कों पर लोहे के विषाक्त काँटे बिछा दिये जाते थे जो अदृश्य होते थे अर्थात् दिखाई नहीं पड़ते थे। अट्टालिकाओं और गोपुरों में अन्न का भरपूर संग्रह कर लिया जाता था और जगह-जगह यह व्यवस्था थी कि शत्रु के चलाये हुये प्रज्ज्वलित लौहमय अस्त्र भी विफल करके नीचे गिरा दिये जायें। मिट्टी और चमड़े के बने असंख्य पात्रों में अस्त्र भरकर जगह-जगह रखे जाते थे और साथ ही गोला बारूद से भरी हुई तोपें तथा तोमर, अंकुश, शतघ्नी, लांगल, भुशुण्डी, पत्थर के गोले और अन्य अस्त्र-शस्त्र तथा फरसे एवं ढालें भी विशाल संख्या में यथास्थान तैयार रखे जाते थे। निम्नांकित श्लोकों में इसका प्रभावी वर्णन है-

पुरी समन्ताद् विहिता सपताका सतोरणा।
सचक्रा सहुडा चैव सयन्त्रखनका तथा।।5।।
सोपशल्यप्रतोलीका साट्टाट्टालकगोपुरा।
सचक्रग्रहणी चैव सौल्कालातावपोथिका।।6।।
सोष्ट्रिका भरतश्रेष्ठ सभेरीपणवानका।
सतोमराङ्कुशा राजन् सशतघ्नीकलांगला।।7।।
सभुशुण्ड्यश्मगुडका सायुधा सपरश्वधा।
लोहचर्मवती चापि साग्निः सगुडभृंगिका।।8।।

इन विवरणों से ज्ञात होता है कि उस समय युद्धकला और सैन्यबल में भारत कितना विकसित था और स्वयं भगवान कृष्ण ने द्वारिकापुरी में किस प्रकार की सैन्य तैयारियाँ कर रखी थीं। यह स्वयं महाभारत के समय प्रत्यक्षदर्शी भगवान वेदव्यास द्वारा किया गया वर्णन है। अतः ये प्राथमिक स्त्रोत है जो विश्व भर में इतिहास के लिये सर्वाधिक प्रामाणिक स्त्रोत माना जाता है। **(क्रमशः)**

ए 142, आकृति हाईलैण्ड
डाकघर-फंदा, भोपाल 462030 (म.प्र.)
मो. 8989931954

एक अर्थव्यवस्था जो आशा और गरिमा पर आधारित हो

मूल - दाईसाकू इकेदा
अनु. - विभा खरे

शिक्षा - एम.एच.एस.सी., एम.ए.।

रचनाएँ - पत्र-पत्रिकाओं में लेखन।

विशेष - अनुवाद में विशेष कार्य ।

(गतांक से आगे) तीसरी चुनौती है ऐसी अर्थव्यवस्था का निर्माण जो युवाओं में आशा का संचार करे एवं महिलाओं को गरिमापूर्ण प्रभा देने में समर्थ हो। ऐसा अनुमान है कि कोविड 19 के परिणामस्वरूप और वैश्विक अर्थव्यवस्था पर उसके विनाशकारी प्रभाव के कारण 255 मिलियन नौकरियाँ खत्म हो गयीं। विशेष चिंता का विषय है कि युवा कितने गंभीर रूप से प्रभावित हुए।

अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन (आई. एल. ओ.) के ताड़ा आँकलन के अनुसार, विश्वस्तर पर 25 वर्ष तथा उससे ऊपर की आयु के लोगों की तुलना में, युवा लोगों के लिए रोजगार घटने की दर, जी- 20 देशों में युवा रोजगार 11 प्रतिशत तक गिरने के साथ, सर्वाधिक रही है।

हाल के रुझानों से इस बात की प्रबल सम्भावना लगती है, कि जिन युवाओं को आपदा के दौरान रोजगार मिला है, उन्हें कोविड 19 के कारण उनके कार्यस्थल पर हो रहे तीव्र परिवर्तनों के कारण कार्य सम्बंधित तनाव और चिंता अधिक होगी। बढ़ती संख्या में युवा दूर से अथवा पारम्परिक कार्य परिवेश से अलग माहौल में नयी नौकरी का आरम्भ कर रहे हैं, और अपने आस-पास किसी और के बिना, जिस पर वे सहयोग हेतु भरोसा कर सकें, अपना कार्य कर रहे हैं। वैश्विक महामारी कई परिवारों के लिए आर्थिक कठिनाइयों के साथ, युवाओं पर भी उनके शिक्षा ऋण या जिस आजीविका को वे पाना चाहते हैं, उसके लिए आवश्यक कौशल प्राप्त करने के लिए, उचित अवसरों की कमी का अतिरिक्त बोझ भी लाई है। इसके आगे, अध्ययन यह भी इंगित करता है, कि आने वाले समय में, ज्यादा से ज्यादा छात्रों के लिए, इस सम्बन्ध में 40 प्रतिशत छात्रों के अनिश्चितता प्रकट करने और 14 प्रतिशत के इस बात के वास्तविक भय में रहने, कि भविष्य में क्या होगा, के साथ, रोजगार की संभावनाएँ बेरंग हैं।

अर्थ व्यवस्था को तत्काल सुधार कर वापस पटरी पर लाना आवश्यक है, किन्तु जब तक हम इस भय की अनुभूति और अनिश्चितता को कम नहीं करते, जिसे कई युवा महसूस कर रहे हैं, और उनके दिलों में आशा की किरणों का संचार नहीं करते, न केवल आर्थिक दृष्टिकोण किन्तु स्वस्थ सामाजिक विकास की सारी आशाएँ धूमिल हो जायेंगी।

इस मुद्दे पर विचार करते हुए, मैं मसाचुसेट्स तकनीकी संस्थान के प्रोफेसर अभिजीत वी बेनर्जी तथा एस्थर डफलो द्वारा किये गए अवलोकनों का उल्लेख करना चाहूँगा, जिनके कार्य को 2019 के आर्थिक नोबल पुरस्कार से सम्मानित किया गया तथा जिसे उन्होंने हार्वर्ड विश्वविद्यालय के प्रोफेसर मिशेल क्रेमर के साथ साझा किया था।

अपनी पुस्तक 'गुड इकोनॉमिक्स फॉर हार्ड टाइम्स' में उन्होंने ऐसे सूचकांक जैसे सकल घरेलू उत्पाद (जी. डी. पी.) के वास्तविक अर्थ पर चिंतन किया है-'अंतत: कुंजी यह है कि इस तथ्य पर से दृष्टि न हटे कि जी. डी. पी. केवल एक माध्यम है, परिणीति नहीं।'

यह जताते हुए कि केवल आय पर केंद्रित होना एक 'विकृत लेंस' है, जो कि अमूमन गलत नीति निर्णयों की ओर प्रेरित करता है, वे दलील देते हैं-'मनुष्य की गरिमा को उसकी केंद्रीय स्थान पर पुनर्स्थापित करना आर्थिक प्राथमिकताओं के एक गहन पुनर्विचार और समाज द्वारा अपने सदस्यों की परवाह करने के तरीकों, विशेष रूप से तब जब उन्हें इसकी आवश्यकता हो, की शुरुआत करता है।' यह कार्य वैश्विक महामारी के आरम्भ होने के एक वर्ष पूर्व प्रकाशित हुआ था, पर मैं समझता हूँ कि ऐसी अर्थव्यवस्था के निर्माण का मुद्दा जो मनुष्य की गरिमा बनाये रखे इस समय सर्वाधिक प्रासंगिक है।

जब हम आर्थिक प्राथमिकताओं पर संतुलित, स्पष्ट दृष्टिकोण से अभिकेंद्रित होकर विचार करते हैं, कि वे किस तरह मनुष्य की गरिमा में वृद्धि कर सकती हैं, जिस विषय को बनर्जी एवं डफलो द्वारा जोरदार ढंग से उल्लेखित किया है, तब नौकरी होने के महत्त्व को अतिरंजित नहीं किया जा सकता।

इस पुस्तक में वर्णित है कि किस तरह बनर्जी, जब वे विशिष्ठ व्यक्तियों के संयुक्त राष्ट्र पैनल में एस. डी. जी. निकालने में सहायता करने की सेवाएँ दे रहे थे, एक अंतर्राष्ट्रीय एन. जी. ओ. के एक सदस्य से मिले और उसकी गतिविधियों से प्रभावित हुए थे। वे और डफलो उसकी एक बैठक में भी सम्मिलित हुए थे जो गरीबी झेल रहे लोगों को रोजगार के अवसर उपलब्ध कराये जाने के विषय में थी। इस बैठक विशेष के लिए जो व्यक्ति एकत्र हुए थे उनमें एक परिचारिका, जो एक दुर्घटना के बाद गंभीर रूप से अपंग हो गई थी और कई वर्षों तक कार्य करने में असमर्थ रही थी; एक गंभीर अवसाद से ग्रसित व्यक्ति; और एक व्यक्ति जिसने ए.डी.एच. डी. सम्बंधित व्यवहार के कारण अपने बेटे की निगरानी खो दी थी, सम्मिलित थे।

इस एन. जी. ओ. और उसकी गतिविधियों ने प्रोफेसरों को सामाजिक नीति के बारे में सोचने के लिए अनेक अन्तर्दृष्टियाँ प्रदान कीं। एक थी कि–'कार्य (आजीविका) आवश्यकरूप से वह नहीं है जो कि अन्य सभी समस्याओं के समाप्त होने के पश्चात् प्रारम्भ किया जाये जब लोग इसके लिए 'तैयार' हों, बल्कि यह स्थिति के ठीक होने की इसी प्रक्रिया का एक हिस्सा है।' उन्होंने ब्यौरेवार रूप से जाना कि किस तरह वह पिता, जिससे वे मिले थे, नौकरी मिलने के पश्चात्, अपने बेटे की निगरानी वापस प्राप्त करने में सफल हुआ, और इस बात से प्रेरित हुआ कि उसका बेटा उसकी नौकरी के कारण उसके लिए गौरवान्वित है। इस प्रकार एक व्यक्ति की परिस्थिति बदलने पर पूरे परिवार में खुशी की लहर प्रवाहित हो जाती है। एक सतत् विकास लक्ष्य, अपंग व्यक्तियों सहित सभी के लिए, शालीन कार्य की उपलब्धता है, और इस परिवार का उदाहरण उस आशावादी परिवर्तन का एकदम सही प्रतिनिधित्व करता है, जो सतत् विकास लक्ष्य विकसित करना चाहते हैं।

सन् 2012 में लिखे गए मेरे प्रस्ताव में, जब बैनर्जी संयुक्त राष्ट्र के विशिष्ट व्यक्तियों के पैनल में सेवारत थे, मैंने इस बात पर जोर डाला था, कि सतत् विकास लक्ष्यों को प्राप्त करने के प्रयास, केवल तय किये गए लक्ष्यों को प्राप्त करने पर ही केंद्रित नहीं होने चाहिए बल्कि उन लोगों के चेहरे पर मुस्कुराहट वापस लाने, जो कि अभी वेदना का कष्ट भोग रहे हैं, पर केंद्रित होने चाहिए। अब, जबकि हम, वैश्विक महामारी के बाद आर्थिक सुधारों के प्रयास कर रहे हैं, अपनी इस प्राथमिकता की ओर से आँखें नहीं मूँद सकते।

जो लोग अपने आप को समाज द्वारा उपेक्षित और अस्वीकृत महसूस करते हैं, उनके प्रति अपने नजरिये को बदलने की आवश्यकता का उल्लेख करते हुए बैनर्जी और डफलो तर्क करते हैं –

'जबकि उनको समस्याएँ हो सकती हैं, 'वे' स्वयं समस्या नहीं हैं। वो जो हैं वही समझे जाने के हकदार हैं, और उन्हें उन कठिनाइयों द्वारा परिभाषित नहीं किया जाना चाहिए जो उन्हें घेरे हुए हैं। बार–बार हमने विकासशील देशों की यात्राओं में देखा है, कि आशा ही वह ईंधन है जो लोगों को चला रहा है।'

मैं इससे भली–भाँति सहमत हूँ। जब लोगों के पास उस काम और रहने के स्थान की पहुँच हो जो उन्हें उनकी विशिष्ट क्षमताओं का प्रदर्शन करने का भरपूर अवसर प्रदान करे तब हमारे समुदाय और समाज को सम्मान के प्रकाश से प्रकाशित होने का रास्ता मिल जाता है।

इस वर्ष मनुष्य–केंद्रीय भरपाई के लिए अंतर्राष्ट्रीय श्रम संघ (आई. एल. ओ.) द्वारा एक बहुपक्षीय मंच की बैठक प्रस्तावित की गई है। मेरा प्रस्ताव है कि यह अवसर सभी देशों को कोविड–19 से सीखे सबक और सर्वश्रेष्ठ प्रणालियाँ साझा करने के लिए, साथ ही साथ सभी लोगों को, खासतौर पर युवाओं के लिए रोजगार के अवसरों हेतु विशेष बल दिए जाने के साथ, उपयुक्त मानवीय कार्य सुनिश्चित कराने के प्रयासों की प्राथमिकताओं के लिए एक मंच प्रदान करें।

इसी प्रकार, अर्थव्यवस्था के पुनर्निर्माण के कार्य की नींव लिंग समानता और महिला सशक्तिकरण पर रखी जानी चाहिए।

इस वैश्विक महामारी ने स्वास्थ्य सेवा प्रणाली पर एक अभूतपूर्व बोझ लाद दिया है। सार्वभौमिक रूप से इस क्षेत्र में महिलाओं की भागीदारी लगभग 70 प्रतिशत तक है। इस संकट ने अनेक महिलाओं को अपने बीमार पारिवारिक सदस्यों या अन्य करीबी लोगों की देखभाल करने के लिए अपने कार्य को कुछ समय के लिए विश्राम देने या कार्य से अवकाश लेने हेतु विवश कर दिया। इसके साथ वे लोग जिन्होंने अपना रोजगार खोया है

उनमें बड़ा अनुपात महिलाओं का है, इनमे से भी सबसे ज्यादा झटका छोटे बच्चों की कामकाजी माताओं ने अनुभव किया।

लिंग भेद लम्बे समय से एक महत्त्वपूर्ण महत्त्व का विषय है। महामारी ने इस असमानता को और बढ़ा दिया और आधारभूत सुधार की आवश्यकता को और तीव्र कर दिया है। इस दिशा में एक महत्त्वपूर्ण कदम है, संयुक्त राष्ट्र महिला तथा अन्य हिस्सेदारों द्वारा गत वर्ष दो अवसरों पर बुलाई गई पीढ़ी समानता समूह (जनरेशन इक्वेलिटी फोरम) की बैठक।

गत मार्च माह में मैक्सिको में संपन्न बैठक में ऑनलाइन भागीदारिता सहित 85 देशों के लगभग 10,000 लोगों से भाग लिया था, जिन्होंने इस विषय पर विचार-विमर्श किया कि किस सर्वश्रेष्ठ तरीके से लिंग समानता के कार्य और गति को से तेजी से बढ़ाया जा सकता है। माह जून व जुलाई में फ्रांस में संपन्न आगामी बैठक में लैंगिक समानता के लिए पंच वर्षीय वैश्विक त्वरण योजना का अनावरण हुआ।

तत्काल प्रारम्भ किये जाने वाले पाँच क्षेत्रों के अलावा जिनमें लिंग आधारित हिंसा तथा लैंगिक समानता के लिए तकनीक और नवाचार सम्मिलित हैं यह योजना आर्थिक न्याय एवं अधिकारों को भी प्रमुख प्राथमिकता के रूप में चिन्हित करती है। ऐसे मुद्दे जैसे कि औरतों और आदमियों की आय में भेदभाव को संज्ञान में लेते हुए यह गरीबी में गुजर बसर कर रही औरतों की संख्या कम करने हेतु लिंग उत्तरदायी आर्थिक सुधारों की वकालत करती है। यह आर्थिक देखभाल में काम करने वाली औरतों की स्थिति को सुधारने के लिए विशेष जोर भी देती है।

यह कई देशों की वास्तविकता है कि देखभाल का काम, जैसे बुजुर्गों या परिवार के अन्य सदस्यों की देखभाल अक्सर प्राथमिक रूप से औरतों द्वारा की जाने वाली मुफ्त सेवा होती है। इस उभरती चिंता के मध्य कि देखभाल का कार्य करने वाले लोगों ने इस वैश्विक महामारी का खामियाजा भुगता है लैंगिक समानता की वैश्विक त्वरण योजना देशों से वृहद् सुधार अंगीकृत किये जाने का आह्वान करती है ऐसे उपायों के द्वारा जैसे कि अपनी राष्ट्रीय आय का 3 से 10 प्रतिशत वेतनभोगियों के माध्यम से किये जाने वाले देखभाल कार्यों की स्थिति बेहतर किये जाने और उनकी संभावनाओं में वृद्धि किये जाने हेतु निवेश करना।

इस बिंदु पर संयुक्त राष्ट्र महिलाओं द्वारा गत सितम्बर माह में आरम्भ की गई महिलावादी योजना में भी बल दिया गया था, जिसमें देखभाल को सतत् व मात्र अर्थव्यवस्था के केंद्र में रखने का आह्वान किया गया था। कई अध्ययन बताते हैं कि वर्तमान में दुनिया में बड़ी संख्या में लोगों को अपनी दैनिक जीवन जीने हेतु किसी न किसी तरह की देखभाल की आवश्यकता है। इसमें सम्मिलित हैं 15 वर्ष से कम आयु के लगभग 1.9 बिलियन बच्चे, 60 वर्ष से अधिक आयु के 1 बिलियन बुजुर्ग तथा किसी शारीरिक अयोग्यता वाले 1.2 बिलियन लोग। देखभाल के कार्यों में लोक निवेश न सिर्फ महिलाओं के ऊपर थोपे जा रहे भार को कम करेगा बल्कि वह कई अन्य जनसांख्यिक समूहों, बच्चों, बुजुर्गों एवं दिव्यांगों सहित, के जीवन में सुधार के दूरगामी प्रभाव भी उत्पन्न करेगा।

हम उस महत्त्वपूर्ण भूमिका को भी न भूलें जो देखभाल का कार्य करने वाले लोगों के जीवन में खुशी का अपरिहार्य अनुभव एवं सम्मान लेने के लिए निभाते हैं। आर्थिक उन्नति की लहर भी उन नावों को नहीं उठा सकती जो पूरी तरह क्षतिग्रस्त होने से बच गयी हों। फिर भी मैं आश्वस्त हूँ कि देखभाल के कार्य को इस तरीके से बढ़ाकर लैंगिक समानता और महिला सशक्तिकरण को मजबूत कर एक ऐसे समाज का निर्माण कर सकते हैं जो असंख्य लोगों की आजीविका, खुशी तथा सम्मान को सहारा देगा।

बौद्ध शिक्षा की आत्मा पर आधारित, एक दर्शन जो सभी की खुशी और सम्मान को सर्वाधिक महत्त्व देती है, अंतर्राष्ट्रीय सोका गक्काई संस्था लैंगिक समानता एवं नारी सशक्तिकरण को बढ़ाने के प्रयत्न में संलग्न रही है।

जनवरी 2020 में जब संयुक्त राष्ट्र महिलाओं द्वारा पीढ़ी समानता अभियान प्रारम्भ किया था तब एस जी आई तथा श्रद्धा पर आधारित अन्य संस्थाओं द्वारा संयुक्त राष्ट्र संस्थाओं के संयुक्त तत्वाधान में अपनी वार्षिक न्यूयार्क संगोष्ठी का आयोजन किया गया। जिसमें इस बात पर विचार विमर्श किया गया कि श्रद्धा पर आधारित संस्थाएँ अधिक प्रभावी रूप से लैंगिक समानता को बढ़ाने में किस तरह से अपना योगदान दे सकती हैं। जनवरी 2021 में आयोजित समान संगोष्ठी में प्रतिभागियों द्वारा इस बात पर बल दिया कि आर्थिक नीतिगत उपायों द्वारा लैंगिक असमानता से पार पाना कोविड 19 से उबरने और पुनर्निर्माण हेतु अत्यावश्यक है।

वर्तमान में एस. जी. आई.पुनर्वनीकरण के माध्यम से टोगो की गरीब औरतों के जीवन यापन को सशक्त बनाने के प्रयासों को सहयोग दे रहा है। यह परियोजना, जो कि गत जनवरी में अंतर्राष्ट्रीय उष्णकटिबंधीय इमारती लकड़ी संगठन के सहयोग से प्रारम्भ की गई थी, यह संगठन औरतों को आजीविका देने और आर्थिक स्वतंत्रता देने के साथ वनीकरण में सहयोग करती है तथा उन स्थानों पर जहाँ तेजी से वृक्ष आड़ का क्षय हो रहा है, वन संसाधनों की रक्षा करती है। वर्तमान में योजना अपने द्वितीय चरण में आ चुकी है, जिसमें कार्यक्रम प्रतिभागी परस्पर सीखने–सिखाने में व्यस्त होने एवं अनुभवों तथा साझा चुनौतियों के लिए उत्तम आचरण के आदान–प्रदान हेतु दूसरे समुदायों का भ्रमण करेंगे।

इस बात से अप्रभावित कि समय कितना नाजुक है या परिस्थितियाँ कितनी विपरीत हैं मानव सकारात्मक मूल्यों को सामने लाने तथा काल खंड को परिवर्तित करने वाली लहर को शुरू करने के लिए जन्मजात रूप से एकजुट होकर कार्य करने में सक्षम है। मैं पूर्ण रूप से सहमत हूँ कि, लैंगिक समानता तथा नारी सशक्तिकरण कोविड 19 के संकट से उबरने तथा ऐसी अर्थव्यवस्था एवं समाज बनाने की कुंजी है जो जीवन की गरिमा को सुरक्षित रखे।

वर्ष 1995 के नवम्बर माह में एस जी आई संकल्प पत्र को अंगीकृत किया गया था यह वह वर्ष था जबकि बीजिंग में चौथा विश्व महिला सम्मलेन संपन्न हुआ था, जिसे कि लैंगिक समानता एवं नारी सशक्तिकरण को प्रारम्भ करने वाले बिंदु के समय के प्रवाह के रूप में परिभाषित किये जाने के उपायों की ओर प्रारंभिक बिंदु कहा जा सकता है।

एस जी आई संकल्प पत्र के उद्देश्य और सिद्धांतों के आधार पर –मूलभूत अधिकारों की सुरक्षा तथा किसी भी व्यक्ति को किसी भी आधार पर भेदभाव नहीं करने के संकल्प सहित– हमने वैश्विक मुद्दों के समाधान की ओर कार्य करना जारी रखा। पिछले नवम्बर में हमने एक नया एवं परमार्जित सोका गक्काई घोषणा पत्र अपनाया है। इसके उद्देश्य एवं सिद्धांत स्पष्ट रूप से 10 बिंदुओं को व्यक्त करते हैं, इसके साथ, बौद्ध धर्म के सहनशीलता के सिद्धांत के आधार पर हम 'अन्य धर्मों तथा दर्शन परम्पराओं का सम्मान करने में, मानवता के विरुद्ध आधारभूत चुनौतियों के समाधान की ओर वार्तालाप और एकजुट होकर कार्य करने में संलग्न रहेंगे'। ये आगे हमारे 'लैंगिक समानता की प्राप्ति हेतु योगदान एवं नारी सशक्तिकरण को बढ़ावा देने के' संकल्प को व्यक्त करता है।

हम कर्तव्यनिष्ठ नागरिक के रूप में सबकी प्रसन्नता और गरिमा के लिए विश्वास और दोस्ती का दायरा विस्तृत करने वाले एक बौद्ध जन आंदोलन के रूप में जो 192 देशों तथा राज्यों में फैला है, प्रतिबद्ध हैं। इन तीन चुनौतियों का विस्तार से वर्णन करने के उपरांत इकेदा ने तीन प्रमुख मुद्दों के बारे में ठोस प्रस्ताव पेश किये, जिनके सम्बन्ध में वर्तमान और भविष्य की पीढ़ियों के लिए शीघ्र समाधान की आवश्यकता है।

1. जलवायु संकट को दूर करने के लिए संयुक्त राष्ट्र के केंद्रित प्रयास।

2. बच्चों के लिए एक स्वस्थ सीखने का माहौल।

3. परमाणु हथियारों का उन्मूलन एक स्थायी वैश्विक भविष्य की कुंजी वे कहते हैं भविष्य के प्रति हमारी साझी जिम्मेदारी है।

मेरा परमाणु हथियार से संबंधित दूसरा प्रस्ताव जो परमाणु हथियार के प्रतिबंध पर आधारित संधि के अनुसार है, जापान और अन्य परमाणु हथियार पर निर्भर राज्यों का आह्वान करता है कि वे प्रेक्षक के रूप में राज्यों की पहली मीटिंग जो विएना में मार्च के महीने में हुई उस में भाग लें। मैं सुझाव दूँगा कि इस मीटिंग में स्थायी सचिवालय बनाने का एक निर्णय लेना चाहिए ताकि परमाणु हथियार के प्रतिबंध के लिए दायित्व एवं अंतराष्ट्रीय सहयोग तय किया जा सके।

स्विट्जरलैंड, स्वीडन और फिनलैंड परमाणु हथियार के प्रतिबंध में हस्ताक्षरकर्ता नहीं हैं, नॉर्वे व जर्मनी जो नाटो (NATO) उत्तर अटलांटिक संधि देश के सदस्य हैं, उन्होंने पहले ही स्पष्ट कर दिया कि वे प्रेक्षक के रूप में इस मीटिंग में भाग लेंगे। नाटो के इतिहास में सदस्य देशों को परमाणु हथियार के संबंध में अपना रास्ता स्वयं चुनने की अनुमति है।

परमाणु हथियारों के निषेध पर संधि की मीटिंग में नॉर्वे और जर्मनी का प्रेक्षक के रूप में उपस्थित होने का गहरा अर्थ है, नाटो के सदस्य देशों के कई शहर परमाणु हथियारों के निषेध के लिए अंतरर्राष्ट्रीय अपील पर हस्ताक्षर अभियान चला चुके और इस तरह ये शहर परमाणु हथियारों के निषेध को समर्थन देते हैं और अपनी सरकारों को इस संधि को समर्थन देने के लिए प्रोत्साहित करते हैं। इसमें उन देशों के शहर भी सम्मिलित

हैं जिनके पास परमाणु हथियार हैं जैसे संयुक्त राज्य अमेरिका, ब्रिटेन, फ्रांस और भारत तथा हिरोशिमा एवं नागासाकी। परमाणु हथियारों के निषेध की संधि की पहली सभा में परमाणु हथियार के परीक्षण और प्रयोग के पीड़ितों को सहायता तथा प्रदूषित वातावरण का उपचार भी सम्मिलित किया जाएगा।

जापान को इस बहस में भाग लेना चाहिए जिससे कि वह हिरोशिमा व नागासाकी में अनुभव किये विनाश की वास्तविकता को अन्य लोगों तक पहुँचा कर इसमें अपना योगदान दे सके।

अपने हाल के इंटरव्यू में वरिष्ठ वैज्ञानिक डॉ. ओलीवर ने कहा कि जर्मनी का पहली मीटिंग में प्रेक्षक के रूप में भाग लेना बहुपक्षीय वार्ता को एवं परमाणु निरस्त्रीकरण को सुदृढ़ करने में उसकी प्रतिबद्धता को दर्शायेगा। जब उनसे पूछा गया कि जापान की इच्छा परमाणु हथियार रखने वाले एवं न रखने वाले देशों के बीच एक सेतु बनने की है। उन्होंने कहा कि प्रेक्षक बनकर भी जापान ऐसी भूमिका अपना सकेगा जो किसी ऐसे देश द्वारा ही संभव है जिसने परमाणु आघात सहा हो और मध्यस्थता करना तभी संभव है जब आप दोनों पक्षों से प्रत्यक्ष रूप से वार्ता में सम्मिलित हों। यह इंटरव्यू हैम्बर्ग यूनिवर्सिटी के पीस रिसर्च एंड सिक्योरिटी इंस्टिट्यूट के बर्लिन आफिस में लिया गया था।

2017 में परमाणु निरस्त्रीकरण की ठोस उन्नति एस ए जी (SAG) के लिए प्रबुद्ध व्यक्तियों का समूह जापान ने एकत्रित किया, जिसमें परमाणु अस्त्र रखने वाले राज्य, एवं परमाणु अस्त्र न रखने वाले राज्य दोनों से विशेषज्ञ आमंत्रित किये गए थे। ये प्रयत्न और भी रचनात्मक होते अगर जापान प्रेक्षक के रूप में भाग लेता और एस ए जी (SAG) की प्रक्रिया के परिणामों की रिपोर्टिंग करता। मैं जापान से विशेष अनुरोध करता हूँ कि संधि के शीघ्र हस्ताक्षरित और अनुसमर्थन की ओर अग्रसर हो।

राज्य पक्षों की क्लस्टर युद्ध सामग्री के सम्मेलन की पहली मीटिंग में उदाहरण के तौर पर 34 राज्य प्रेक्षक के रूप में शामिल हुए जिनमें से कई बाद में पक्ष में आ गए। इसी तरह परमाणु निरस्त्रीकरण की पहली राज्य वार्ता में भी अनेक राष्ट्रों को प्रेक्षक के तौर पर शामिल होना आवश्यक है तभी राज्यों और उनकी न्यायिक संस्था परमाणु निरस्त्रीकरण के लिए अपने मजबूत संकल्प को पूरा कर पायेगी। इस तरह परमाणु निरस्त्रीकरण विश्व के लिए नए आकाश की संभावना को बनाने में मदद करता है।

परमाणु हथियारों के निषेध पर संधि की महत्ता पारंपरिक निरस्त्रीकरण संधि से अधिक है क्योंकि इसके अंतर्गत मानवता के मानदंड के लिए प्रतिबद्धता है–जो प्रलयकारी विनाश से बचाव करता है–मानव अधिकारों का रक्षक है–विश्व के लोगों के जीवन के अधिकार की सुरक्षा करता है।

वैश्विक समानता के अर्थ में, जिनका मैंने पर्यावरण परिवर्तन की समस्या में उल्लेख किया है, परमाणु हथियारों के निषेध पर संधि मानव मात्र की शांति की रक्षा के लिए अपरिहार्य है तथा ग्लोबल ईकोसिस्टम, जो वर्तमान और भविष्य की पीढ़ी का आधार है, के संरक्षण के लिए आवश्यक है ।

परमाणु हथियारों के निषेध पर संधि की पूर्ण उपयोगिता को अपनी बुद्धि में बैठाते हुए, वर्तमान विश्व पर परमाणु हथियारों पर निर्भर सुरक्षा के नकारात्मक प्रभावों पर ईमानदारी से वार्ता हमारे जीवनकाल में तथा भविष्य में होनी चाहिए।

यह पहली मीटिंग भिन्नताओं से परे जाकर बातचीत के अवसर खोलती है। राज्यों की संख्या बढ़ने से तथा अधिक देशों के वर्तमान में ये सोचने से की वे इस संधि पर हस्ताक्षर नहीं कर सकते या इसे पुष्ट नहीं कर सकते इस संधि के वास्तविक महत्व और मूल्य को सकारात्मक रूप से रेखांकित करता है, मुझे पूरा विश्वास है ये संधि ऊर्जा को उत्प्रेरित करेगी। परमाणु हथियारों के इस दौर को समाप्त करने के लिए राजनैतिक इच्छाशक्ति की आवश्यकता है।

इसी कारण मैं स्थायी सचिवालय के गठन के पक्ष में हूँ, जो सरकारों और नागरिक संस्थाओं के प्रयत्नों को मिलाएगी और इस संधि के आदर्शों व संकल्पों को सार्वभौम करेगी।

2007 में एस जी आई द्वारा पहली बार लॉन्च किए गए पीपुल्स डिकेड फॉर न्यूक्लियर एबोलिशन अभियान के माध्यम से, हमने परमाणु हथियार प्रतिबंध संधि को अपनाने की वकालत करने के लिए आई सी ए एन (ICAN) और अन्य समूहों के साथ काम किया है। टीपीएनडब्ल्यू के अस्तित्व में आने के एक साल बाद, 2018 में परमाणु उन्मूलन के लिए दूसरा पीपुल्स दशक शुरू हुआ। दूसरा दशक नागरिक समाज अभिनेताओं के काम के माध्यम से टीपीएनडब्ल्यू (TPNW) के आदर्शों को सार्वभौमिक बनाने पर केंद्रित है। इस वर्ष हम इस दिशा में गति को आगे बढ़ाने के लिए प्रतिबद्ध हैं क्योंकि हमें विश्वास है कि

संधि की प्रभावकारिता को मजबूत करने के लिए दुनिया के लोगों का समर्थन एक आवश्यक आधार है।

यहाँ मुझे याद आ रहा है कि किस तरह प्रोफेसर गलब्रेथ ने परमाणु खतरे को हटाने पर दिया था क्योंकि एक ऐसी महत्त्वपूर्ण चीज जिसे हासिल करने के लिए हम सभी को मिलकर काम करना चाहिए–एक निष्कर्ष जो बीसवीं शताब्दी के उथल–पुथल के कई संकटों के उनके प्रत्यक्ष अनुभव को दर्शाता है। अपने संस्मरण ए लाइफ इन अवर टाइम्स के समापन पर, उन्होंने लिखा, 'मैंने देखा है कि जो लोग अपने संस्मरण लिखते हैं उन्हें यह जानने में कठिनाई होती है कि सार्वजनिक मामलों पर उन्हें कब लिखना बंद कर देना चाहिए।' इसलिए उन्होंने अर्थशास्त्र के अलावा एक विषय को चुना, उनकी विशेषज्ञता का क्षेत्र, परमाणु हथियारों के मुद्दे, जिसकी वास्तविकता ने उनके दिमाग में तबसे जगह बना ली थी जब उन्होंने हिरोशिमा नागासाकी की बमबारी के तुरंत बाद 1945 के पतन में पहली बार जापान का दौरा किया था।

यदि हम परमाणु हथियारों की दौड़ को नियंत्रित करने में विफल रहते हैं, तो इन दिनों जिन अन्य मुद्दों पर हम बहस करते हैं, वे सभी अर्थहीन होंगे। नागरिक अधिकारों का कोई सवाल ही नहीं होगा, क्योंकि उन्हें भोगने वाला कोई नहीं होगा। शहरी क्षय की कोई समस्या नहीं होगी, क्योंकि हमारे शहर खत्म हो जाएँगे। तो आइए हम दूसरे मुद्दों पर असहमत हों, लेकिन हमें इस बात पर सहमत होना चाहिए कि हम अपने सभी देशवासियों, अपने सभी सहयोगियों, सभी मनुष्यों से कहेंगे कि हम इस परमाणु आतंक को समाप्त करने के लिए काम करेंगे जो अब पूरी मानव जाति पर एक संकट के बादल के रूप में मँडरा रहा है।

जैसा कि प्रोफ़ेसर गलब्रेथ ने इतनी कटुता से देखा, परमाणु हथियारों की अमानवीय प्रकृति उनके उपयोग के विनाशकारी परिणामों तक सीमित नहीं है। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि एक बेहतर दुनिया और समाज के लिए कितने लोग प्रयास करते हैं, या कितने समय के लिए प्रयास करते हैं, एक बार परमाणु बलों का आदान–प्रदान शुरू हो जाता है, सब कुछ शून्य हो जाएगा। परमाणु युग की वास्तविकता यह है कि हम सबसे बुरे–सबसे अबोधगम्य और बेतुके–कल्पना योग्य खतरे के साथ निरंतर रहने के लिए मजबूर हैं।

परमाणु उन्मूलन के लिए एस जी आई की प्रतिबद्धता दूसरे अध्यक्ष टोडा की 1957 की परमाणु हथियारों के उन्मूलन की घोषणा के समय की है। परमाणु–सशस्त्र राज्यों के बीच गहन हथियारों की दौड़ के बीच, सोवियत संघ ने महीने पहले एक अंतरमहाद्वीपीय बैलिस्टिक मिसाइल (ICBM)आक्रमण का सफलतापूर्वक परीक्षण किया था, जिससे एक नई वास्तविकता का निर्माण हुआ जिसमें दुनिया के सभी हिस्से अब परमाणु क्षमता की संभावना के संपर्क में थे।

मुझे याद है जैसे यह परमाणु हथियारों की अमानवीय प्रकृति पर कल मेरे गुरु का आक्रोश था, जो हममें से प्रत्येक को हमारे जीवन के अर्थ और गरिमा से वंचित कर सकता है और मानव समाज के कामकाज को जड़ मूल से नष्ट कर सकता है। उनके शिष्य के रूप में, उनकी दृष्टि को साकार करने के लिए दृढ़ संकल्पित, मैंने अपने अस्तित्व की गहराई में उनके सही क्रोध को महसूस किया।

इस दृढ़ विश्वास के साथ कि मानव जाति की नियति को आधुनिक सभ्यता की मूलभूत बुराई, परमाणु हथियारों की चुनौती को हल किए बिना नहीं बदला जा सकता है, मैंने 1983 से अपने वार्षिक प्रस्तावों में लगातार इस मुद्दे को संबोधित किया है और परमाणु हथियारों को गैरकानूनी घोषित करने के लिए काम किया है।

कई दशक बाद, टी पी एन डब्ल्यू (TPNW), एक संधि, श्री टोडा की घोषणा की भावना के अनुरूप लागू हो गई है, और राज्यों की पार्टियों की पहली बैठक होने वाली है। परमाणु हथियारों को खत्म करने के प्रयासों में यह अब महत्त्वपूर्ण चरण तक पहुँच गया है।

इस कार्य को पूरा करने से ही हम भविष्य के प्रति अपने उत्तरदायित्व को पूरा कर सकते हैं। इस विश्वास में दृढ़, एसजीआई शांति की संस्कृति के निर्माण की दिशा में युवाओं पर विशेष ध्यान देने के साथ नागरिक समाज की एकजुटता को आगे बढ़ाना जारी रखेगा, जहाँ सभी प्रामाणिक सुरक्षा में रहने के अधिकार का आनंद ले सकें। **(क्रमशः)**

एच.आई.जी., 72,
हाउसिंग बोर्ड कॉलोनी, बागमुगलिया,
एक्सटेंशन, भोपाल–462043 (म.प्र.)
मो.– 9425079134

समान नागरिक संहिता

– देवदत्त माधव धर्माधिकारी

आप उच्चतम न्यायालय के सेवा निवृत्त न्यायाधीश हैं। आपने न्याय से संबंधित आलेखों, संस्मरणों का लेखन किया है। आपकी कतिपय पुस्तकें प्रकाशित हैं। आप निरंतर लेखन में सक्रिय हैं।

संवैधानिक भारत के 75 वर्ष पूर्ण हो चुके हैं। भारत के संविधान के अनुच्छेद 44 में राज्य के नीति निर्देशक तत्व में राज्य से यह अपेक्षित हैं कि वह संपूर्ण भारत के लिये एक समान नागरिक संहिता का सृजन कर उसे लागू करेगा।

वर्तमान में राष्ट्रीय विधि आयोग ने समस्त नागरिकगण से समान नागरिक संहिता को लागू करने के लिये सुझाव माँगे हैं। मुख्य रूप से भारत के बहुसंख्यक और अल्पसंख्यक समुदाय, जिनमें हिन्दू, मुस्लिम, ईसाई, पारसी तथा अन्य अल्प संख्यक समुदाय शामिल हैं, उनसे मुख्य रूप से 13 विषयों पर सुझाव आमंत्रित किये हैं। इन सुझावों में सभी भारतीयों के लिये शादी की उम्र, विवाह रजिस्ट्रेशन की अनिवार्यता, बहुविवाह पर रोक, मुस्लिम समुदाय में हलाल और इद्दत खत्म, पति और पत्नी के बीच तलाक के समान आधार, भरण-पोषण की व्यवस्था, सास-ससुर की देखरेख की व्यवस्था, बच्चों को गोद लेने का अधिकार, बच्चों की देखरेख, समान उत्तराधिकार कानून, जिसमें पुत्र के बराबर पुत्रियों को भी संपत्ति में बराबर का अधिकार, जनसंख्या नियंत्रण, पति-पत्नी के बीच विवाद की स्थिति में बच्चों की कस्टडी, दादा-दादी या नाना-नानी को सौंपने का सुझाव तथा लिव-इन-रिलेशनशिप की घोषणा अनिवार्य रूप से लड़के और लड़की दोनों के माता-पिता को दी जाना, ऐसे मुख्य रूप से विधि आयोग के सुझाव है जिन पर भारत के सभी संस्थाओं, वर्गों और आम जनता से सुझाव माँगे गये हैं।

भारत में विभिन्न सम्प्रदायों के प्रचलित महिला-पुरुषों के कानूनों को देखते हुये यह परिलक्षित होता है कि यद्यपि भारत का संविधान 'एकता में विविधता या विविधता में एकता' के दर्शन और विचार से प्रेरित है परन्तु इस विविधता में यदि मानवीय अधिकारों का हनन होता है तो एकता कायम करने के लिये उन विसंगतियों को दूर करने के लिये समाज या तो अपने विभिन्न प्रचलित रीती-रिवाजों में बदलाव करें या कुछ विशिष्ट मानव अधिकार संबंधी विषयों पर भारत के महिला व पुरुष नागरिकों के लिये समान कानून संहिता बनाने पर सहमत हों।

विश्व स्तर पर मानवों के अधिकारों के संरक्षण हेतु संयुक्त राष्ट्र के सभी सदस्य राष्ट्र, जिनमें भारत भी सम्मिलित है, प्रतिबद्ध है। वैश्विक विविधता का संवर्धन करने के साथ-साथ यदि हम मानव अधिकारों का संरक्षण करेंगे तो उसमे वैश्विक एकता और मानवता दोनों का संरक्षण होगा।

भारत संयुक्त राष्ट्र के सदस्य के रूप में वैश्विक मानव अधिकारों की घोषणायें तथा उसके अंतर्गत विभिन्न मानव अधिकारों के संबंध में जारी किये गये अनुबंधों के अनुपालन के लिये संकल्पबद्ध है। वैश्विक घोषणाओं में कहा गया है कि प्रत्येक व्यक्ति को मानव के रूप में, जिनमें पुरुष, स्त्री, शिशु सभी शामिल हैं, व्यक्तिगत विकास एवं प्रजातंत्र में सक्षम सहभागिता के समान अवसर उपलब्ध हों। भारतीय, संविधान में, जिसमें समान नागरिक संहिता निर्मित करने का नीति निर्देशक तत्व अनुच्छेद 44 शामिल है, इस हेतु प्रतिबद्ध है कि वह देश की विविधता के संरक्षण के साथ-साथ मूलभूत मानवीय अधिकारों के संरक्षण का संकल्प न भूलें। भारत बहुधार्मिक देश है और विविधता मानवीय स्वभाव है और वह भी उतना ही मूल्यवान है जितना किसी राष्ट्र या देश की एकता एवं राज्य के समस्त नागरिकों के प्रति मानवोचित व्यवहार। न तो एकता के लिये विविधता को खोना मानवीय होगा न ही विविधता का ऐसा संरक्षण किया जाना वांछनीय होगा जिसमें मूलभूत मानव अधिकारों की अनदेखी हो। धर्म आधारित आचरण में मानव अधिकारों का हनन न हो इसलिये भी समान कानून, जो सभी भारतीय को लागू होगा, के निर्माण करने की आवश्यकता प्रतीत होती है। खेद का विषय है कि 75 वर्ष स्वतंत्रता के पूर्ण होने के पश्चात् भी अल्पसंख्यकों से समुचित विचार-विमर्श कर उन्हें मूलभूत मानव अधिकारों के संरक्षण हेतु अपने सामाजिक रीति रिवाजों में रद्दोबदल करने के लिये राजी नहीं किया गया।

उचित तो यह होता कि भारत के अल्पसंख्यक समुदाय जो अपने विभिन्न धर्म ग्रंथों के आधार पर अपनी जीवन-शैली में किसी तरह का बदलाव नहीं चाहते वे स्वयं अपने समाज के स्त्रियों और बच्चों के लिये समान नागरिक संहिता लागू करने को राजी हो जाते।

भारत का संविधान अनुच्छेद 44 के द्वारा राज्य पर यह उत्तरदायित्व डालता है कि धार्मिक आस्थाओं और व्यवहारों को छोड़कर भारत में निवासरत् सभी नागरिकों के पारस्परिक रिश्तों के संबंध में समान नागरिक संहिता लागू करे। यदि समाज इस संबंध में सहमत नहीं है तो संविधान शासन पर यह उत्तरदायित्व डालता है कि वह नागरिकों के व्यक्तिगत और पारस्परिक संबंधों के लिये समान नागरिक संहिता लागू करे। व्यक्तिगत और सार्वजनिक जीवन के प्रस्तावित कानून, धार्मिक विश्वास और आस्था के संबंध में अनुच्छेद 25 और 26 में प्रदत्त मूलभूत अधिकारों में कोई भी विरोधाभास नहीं है। अनुच्छेद 25 भारत के सभी नागरिकों को अंत:करण की और धर्म के अबाध रूप से मानने, आचरण और प्रचार करने की स्वतंत्रता प्रदान करता है, परन्तु उसी अनुच्छेद में यह कहा गया है कि नागरिकों के लौकिक क्रियाकलापों का विनियमन करने की शासन को छूट होगी। समान नागरिक संहिता लौकिक क्रियाकलाप का विनियमन करने हेतु बनायी जा रही है। अत: अनुच्छेद 25 में प्रदत्त नागरिक के किसी भी प्रकार के धर्म या आस्था के अधिकार पर कोई कुठाराघात नहीं होगा।

संविधान सभा में अनुच्छेद 44 के संबंध में जो विचार-विमर्श और वाद-विवाद हुआ था उसमें भी यह प्रकट हुआ था और सभी विद्वान सदस्यों ने यह विचार व्यक्त किये थे कि मुस्लिम देश जिनमें तुर्क, इजिप्त, सीरिया, अल्जीरिया, ट्यूनिशिया शामिल है, इनमें सभी नागरिकों को समान नागरिक संहिता लागू होती है जबकि सभी मुस्लिम देश है। अन्य धार्मिक विषयों पर वे मुस्लिम धर्म ग्रंथ के आधार पर आचरण करने हेतु स्वतंत्र हैं। यह भी उल्लेखनीय है कि यूरोप के देश जहाँ सभी विभिन्न धार्मिक आस्था मानने वाले लोगों की बड़ी संख्या है वहाँ भी सभी वर्ग के नागरिकों को समान नागरिक कानून लागू होता है। यदि कोई प्रवासी विदेश से यूरोप के किसी देश में आता है तो प्रवासी के रूप में भी उसे यूरोप में लागू समान नागरिक संहिता से अपने अधिकारों का संचालन करने की बाध्यता होती है। मुस्लिम कानून के प्रसिद्ध कानूनविज्ञ डॉ. ताहिर मेहमूद अपनी किताब मुस्लिम पर्सनल लॉ में लिखते हैं कि जब पाकिस्तान धर्म आधारित देश बनने के बाद भारत में धर्म निरपेक्षता को अंगीकार किया है तब भारत ने विभिन्न समुदायों के अपने-अपने धार्मिक कानूनों को लागू करने के चलन को समाप्त कर देना चाहिये।

समान नागरिक संहिता का सबसे तीव्र विरोध भारत के मुस्लिम समुदाय से हो रहा है जिनके द्वारा यह कहा जा रहा है कि यह कुरान के विरुद्ध है। जबकि सर्वविदित है कि कुरान का 1/3 हिस्सा ही अध्यात्म की बात करता है। शेष 2/3 हिस्सा सामाजिक और व्यक्तिगत जीवन के संचालन के विषय है। ये 2/3 विषय जो कि अध्यात्म का अंश नहीं है उस संबंध में समान नागरिक संहिता सभी भारतीयों के साथ मुस्लिम समुदायों पर भी लागू की जा सकती है। चंद दकियानूसी मुल्ला-मौलवियों के विरोध तथा आंदोलन के आधार पर संविधान लागू करने के 75 वर्ष के पश्चात् समान नागरिक संहिता को अनिश्चितकाल के लिये स्थगित कर देना मानवोचित नहीं होगा। यदि मुस्लिम राष्ट्र जो सभी धर्म आधारित राज्य है वे भी अपने कानूनों में समाज के निजी जीवन के नियमों में समानरूपता ला सकते हैं तो क्यों न भारत में भी यह सफल होगा।

भारत के बँटवारे के समय जिन मुस्लिम भाईयों ने पाकिस्तान जाना स्वीकार किया वे भले ही धर्म आधारित नियमों से जीवन संचालित करने राजी हो परन्तु जो मुस्लिम भाई धर्मनिरपेक्ष भारत में ठहर गये और यहाँ के 75 वर्षों से नागरिक हैं उन्हें मानव अधिकारों के अनुरूप प्रस्तावित समान नागरिक संहिता का विरोध नहीं करना चाहिये। प्रस्तावित संहिता कुरान के उस आस्था और धर्म के अंश के संबंध में कोई भी प्रतिकूल सुझाव नहीं देता। वर्तमान भारत में आवश्यकता है कि समान नागरिक संहिता के संबंध में समुचित विचार-विमर्श हो और सभी वर्ग जिनमें बहुसंख्यक और अल्पसंख्यक समुदाय शामिल हो अपने-अपने सुझाव रखें ताकि संविधान निर्माताओं और भारतीय जनमानस के अनुरूप एक ऐसी समान नागरिक संहिता का निर्माण हो सके जो सभी वर्ग के लोग खुले दिल से स्वीकार कर उसका अनुपालन कर सके।

भारत में एकता और समरसता स्थापित करने तथा मानवोचित कानून लागू करने के लिये समान नागरिक संहिता का निर्माण अब अत्यावश्यक हो गया और इसका विरोध करना मानवोचित नहीं होगा।

'बकुल' म.नं. 1169, राइट टाउन,
आस्था मेडिकल स्टोर के पास,
जबलपुर 482 002 (म.प्र.)

समान नागरिक संहिता

– चन्द्र भूषण पाण्डेय

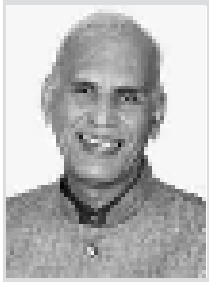

आप सेवानिवृत्त न्यायाधीश हैं। आपकी न्यायिक विषयों के साथ राजनीति पर भी अच्छी पकड़ है।

अभी सरकार ने कोई ड्राफ्ट तैयार करके बहस के लिए जारी नहीं किया है। मेरा मानना है कि यह एक अति महत्त्वपूर्ण विषय है और यदि कानून बनता है तो इससे भारत का प्रत्येक नागरिक प्रभावित होगा। अभी तक जो सूचनाएँ मिल रही हैं उसमें समान नागरिक संहिता में निम्न प्राविधान होने की सम्भावना है:–

1. विवाह व तलाक :–

(क) नये संहिता में बहुविवाह प्रथा समाप्त हो जायेगी क्योंकि यह महिलाओं के समानता के अधिकार के विरुद्ध है। महिला समानता एक संवैधानिक अधिकार है। इस अधिकार को धर्म के नाम पर अतिक्रमित नहीं माना जा सकता है।

(ख) विवाह की आयु पुरुषों के लिए 21 साल व महिलाओं के 18 वर्ष होनी चाहिए। इससे बाल विवाह समाप्त होगा। बाल विवाह करने के लिए दण्ड का प्रविधान होगा। इसका उल्लंघन करने तथा उल्लंघन करने वालों का साथ देने वाले दण्ड के भागीदार होंगे।

(ग) विवाह का रजिस्ट्रेशन आवश्यक होगा। विवाह किसी भी रीति से हो सकता है लेकिन जब तक उसका रजिस्ट्रेशन नहीं होगा वैध नहीं माना जायेगा।

(घ) तलाक के लिए आधार और उसकी प्रक्रिया एक समान होगी। परस्पर सहमति से भी तलाक देने की व्यवस्था होगी।

2. उत्तराधिकार :– हिन्दुओं में संयुक्त परिवार की सम्पत्ति व स्वअर्जित सम्पत्ति में भेद है। मुस्लिम में ऐसा नहीं है। हिन्दू लॉ के अन्तर्गत संयुक्त हिन्दू परिवार (HUF) एक वैधानिक इकाई है जिसको व्यापार व कृषि के लिए कुछ विशेष अधिकार प्राप्त हैं। इस कानून में HUF संस्था समाप्त हो जायेगी। साथ ही मुस्लिम लॉ के अर्न्तगत सम्पत्ति का सीमित वसीयत का अधिकार है। वसीयत में वह सीमा समाप्त कर दी जायेगी और अब निम्न व्यवस्था होगी–

(1) अब पिता की सम्पत्ति में पुत्र व पुत्री को बराबर का हिस्सा मिलेगा चाहे वह स्वयं अर्जित हो या संयुक्त परिवार द्वारा। यह Hindu Succession Maharashtra Amendment Act 1994 के तर्ज पर हो सकता है जहाँ पुत्रियों के जन्म लेते ही वह पुत्र के समान ही परिवार का अंग बन जाती है।

(2) माता की स्वअर्जित सम्पत्ति या उसके पिता अथवा रिश्तेदारों से प्राप्त हो, पुत्र पुत्री को उत्तराधिकार का अधिकार होगा।

(3) वसीयत लिखने के लिए समानता का अधिकार का पालन किया जायेगा। सम्पत्ति जिसकी वसीयत की जा सकती है उसकी सीमा नहीं होगी।

(4) सभी वसीयत का रजिस्ट्रेशन अनिवार्य होगा।

(5) दान के लिए भी कोई सीमा नहीं होगी। वैध दान के लिए प्रक्रिया निर्धारित होगी।

3. निर्वाह भत्ता :–

नई व्यवस्था में पति को पत्नी के निर्वाह भत्ता देना पड़ेगा तथा तलाक के बाद तब तक देना पड़ेगा जब तक वह शादी नहीं कर लेती।

निर्वाह भत्ते की धनराशि पति की आय पर आधारित रहेगी। पत्नी की हैसियत और उसके लाइफ स्टाइल को भी देखा जायेगा।

अब पुत्र व पुत्री दोनों की जिम्मेदारी होगी माता–पिता के निर्वाह करने का क्योंकि पुत्र–पुत्री दोनों को सम्पत्ति में अधिकार मिलेगा तो दोनों की जिम्मेदारी भी होगी।

माता–पिता की जिम्मेदारी होगी बच्चों की देखभाल करे जब तक पुत्र कमाने लायक नहीं हो जाता और पुत्री जब तक उसकी शादी नहीं हो जाती।

अनुच्छेद 44 के पीछे यह मंशा है कि समाज में एकता हो। यूरोप, अमेरिका में यूनिफार्म सिविल कोड है। वहाँ अल्पसंख्यक या विदेश से जो गये हैं, उन्हें भी मानना पड़ता है।

गोवा में समान नागरिक संहिता गोवा सिविल कोड (फैमली लॉ) के रूप में लागू है। इसे पुर्तगाली लोगों ने लागू किया था। सन् 1961 में गोवा की आजादी के बाद भारत में शामिल होने पर उनके सभी कानून रद्द कर दिये गये और भारतीय कानून लागू हुए लेकिन परिवार कानून लागू रखा गया क्योंकि गोवा के लोग चाहते थे। इस कानून में विवाह में रहने वाले पति-पत्नी को सम्पत्ति में बराबर का हक मिलता है। विवाह विच्छेद के बाद सम्पत्ति का हिस्सा बराबर मिलता है। पुत्र व पुत्री का भी सम्पत्ति में बराबर का हिस्सा है। शादी का रजिस्ट्रेशन अनिवार्य है।

4. विरोध :- समान नागरिक संहिता का हिन्दू, सिक्ख, जैन आदि का विरोध नहीं है। विरोध मुख्यत: मुसलमानों द्वारा किया जा रहा है। ऑल इण्डिया मुस्लिम पर्सनल लॉ बोर्ड समान नागरिक संहिता का विरोध इस आधार पर कर रहा है कि पर्सलन लॉ शरीयत का हिस्सा है और मुसलमानों की पहचान है। वे अपनी पहचान छोड़ने को तैयार नहीं हैं। इसलिए अस्वीकार है। उनका कहना है कि मुस्लिम पर्सनल लॉ कुरान व सुन्नत से बना है इसलिए इसमें कयामत तक बदलाव नहीं हो सकता है।

हिन्दू लॉ में सुधार हुआ है : -

सन् 1954 के पहले हिन्दुओं के विभिन्न समुदायों के अलग-अलग कानून थे। लेकिन सन् 1954 से 1956 में इसे एक समान बनाया गया। जिनके द्वारा निम्न व्यवस्था की गई-

(1) बहु विवाह पर रोक
(2) तलाक की व्यवस्था
(3) महिलाओं का भरण-पोशण का अधिकार दिया गया।
(4) पिता की सम्पत्ति में बेटी को अधिकार दिया गया।
(5) संतान गोद लेने के मामले में पति-पत्नी दोनों के अधिकार।

हिन्दुओं के कानून में इन सुधारों के पहले दूसरे धर्मों में इस प्रकार की व्यवस्था पहले से थी-

(1) मुस्लिम कानून में बेटियों का अधिकार है।
(2) इसाई कानून में पुरुष को एक ही पत्नी रखने का अधिकार है।
(3) समान नागरिक संहिता लागू करने के लिए सुप्रीम कोर्ट ने मुहम्मद अहमद खान बनाम शाहबानो (1985), सरला मुदगल (1995), लिलि थामस (2000) के केस में निर्देश दिए हैं।

5. समान नागरिक संहिता धार्मिक नहीं संवैधानिक प्रश्न है।

समान नागरिक संहिता से हिन्दू इस बात को लेकर प्रसन्न दिख रहे हैं कि मुसलमानों पर भी वह लागू होगा लेकिन वह इस बात से अनभिज्ञ हैं कि वह हिन्दुओं के हित में जितना नहीं है उससे ज्यादा मुस्लिम समाज के हित में है।

हिन्दुओं की कई महत्त्वपूर्ण व्यवस्था जो प्रचीन काल से चली आ रही है उसको विखण्डित करेगा जिसमें मुख्यत: संयुक्त हिन्दू परिवार की स्थापित इकाई समाप्त हो जायेगी।

पुत्री को संयुक्त परिवार में हिस्सा देना तथा पुत्री को भी माता-पिता के भरण-पोषण की जिम्मेदारी देने से भाई-बहन के सम्बन्धों में दरार आयेगी और इससे अनेक प्रकार के विवाद व शत्रुता पैदा होगी।

मुसलिम समुदाय को बहुविवाह करने का अवसर तो समाप्त होगा लेकिन महिलाओं को कई अधिकार मिलेंगे।

महिलाओं को उसी प्रकार के अधिकार होंगे जैसा हिन्दू महिलाओं को मिले हैं। इस प्रकार उन्हें हिन्दू महिलाओं के बराबर का अधिकार मिलेगा।

मुस्लिम महिलाओं को निर्वाह भत्ता, गोद लेने का अधिकार, अपनी सम्पत्ति को वसीयत करने जैसे अनेक अधिकार हिन्दू महिलाओं की भाँति मिलेगा।

यद्यपि अभी समान नागरिक संहिता का ड्राफ्ट नहीं आया है इसलिए विभिन्न प्रकार की आशंका बनी हुई हैं लेकिन मुझे लगता है कि ड्राफ्ट आने के बाद मुस्लिम महिलाओं का व्यापक समर्थन मिलेगा वहीं हिन्दू समाज के एक वर्ग द्वारा इसका विरोध शुरू हो जायेगा।

मो.- 9415002296

नागरिकों के मध्य भेदभाव असंवैधानिक हैं

- रामेश्वर मिश्र पंकज

रीवा मध्य प्रदेश में जन्मे प्रसिद्ध दार्शनिक, समाजवैज्ञानिक एवं इतिहासविद, समाजवादी एवं गाँधीवादी आंदोलनों में सक्रियता, विभिन्न महत्त्वपूर्ण पदों से सेवा निवृत्त। वर्तमान में निरंतर सृजनरत। आपकी बाइस पुस्तकें प्रकाशित हैं।

समान नागरिक संहिता (यूनिफार्म सिविल कोड) की बात 1947 से ही निरंतर चल रही है। परंतु आज तक उस पर कार्य नहीं हुआ। नागरिकों के मध्य भेदभाव सर्वथा अनुचित है और यह भारत के संविधान की मूल भावना के भी पूर्णत: विपरीत है। वस्तुत: यह संविधान की उद्देशिका के प्रति भी शंका जगाने वाली बात है। क्योंकि संविधान की उद्देशिका में स्पष्ट कहा है कि हम भारत के लोग एतद् द्वारा इस संविधान को अंगीकृत अधिनियमित और आत्मार्पित करते हैं। परंतु समान नागरिक संहिता के अभाव में पहला ही प्रश्न यह उठता है कि क्या भारत के लोगों ने प्रारंभ से ही स्वयं को आत्मविभक्त और अलग-अलग खंड-खंड समाज के रूप में देखा है। उद्देशिका से ऐसा नहीं लगता। क्योंकि उसमें 'हम भारत के लोग'-यह पद प्रयोग एकीकृत रूप में है। जिससे स्पष्ट होता है कि भारत के लोगों में संविधान के विषय में सर्वानुमति है। अत: सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक न्याय प्राप्त कराने के लिये तथा राष्ट्र की एकता और अखंडता सुनिश्चित करने वाली बंधुता बढ़ाने के लिये समान नागरिक संहिता का तो सर्वोपरि महत्व है।

राजनैतिक न्याय की दृष्टि से भी यह आवश्यक है। भारत के राज्य ने इस संविधान के अन्तर्गत नागरिकों को जो सर्वोपरि अधिकार दिया है, वह है सरकार चुनने का मताधिकार। यह मताधिकार सभी समुदायों में समान होना चाहिये। प्रत्येक बालिग व्यक्ति को मताधिकार प्राप्त है यदि उसने संविधान के अनुरूप नागरिकता प्राप्त कर रखी है। अब अगर कोई समुदाय विवाह और संतति के विषय में शेष समाज से अलग कोई ऐसा प्रावधान बड़े पैमाने पर अपनाता है जिससे उसकी संततियाँ भारत सरकार के द्वारा समय-समय पर निर्धारित मर्यादा की संख्या से बहुत अधिक हो जाती हैं और वह उस संख्या का उपयोग करके मताधिकार द्वारा कोई ऐसी सरकार लाने की कोशिश करता है जो उसके प्रति विशेष पक्षपातपूर्ण हो और शेष राष्ट्र के प्रति अन्यायपूर्ण हो तो ऐसा करना प्रथम दृष्टि में ही बहुत बड़ा राजनैतिक अन्याय हो जाता है। अत: संतति की संख्या के विषय में भारत के सभी समुदायों और सभी परिवारों के अधिकार समान होने चाहिये। क्योंकि उसके द्वारा वयस्क मतदाताओं की संख्या में असंतुलन लाया जा सकता है। अत: समान नागरिक संहिता राजनैतिक न्याय और सामाजिक न्याय के लिये अनिवार्य है। आर्थिक न्याय के लिये भी वह आवश्यक है।

इस विषय में कांग्रेस सरकारों ने अनजाने ही अथवा जानबूझकर राजनैतिक अन्याय के इस आधार को जारी रखा है। इसके लिये संविधान के भाग 3 में दिये गये मूल अधिकारों में से संस्कृति और शिक्षा संबंधी अधिकारों की आड़ ली जाती है कि अल्पसंख्यक वर्गों की भाषा, लिपि और संस्कृति का संरक्षण राज्य सुनिश्चित करेगा। जो कि संविधान के अनुच्छेद 29 एवं 30 के अन्तर्गत दिये गये प्रावधान हैं। कुछ लोग अनुच्छेद 25 में दिये गये धार्मिक स्वतंत्रता के अधिकार से भी इसे जोड़ते हैं। परंतु यह स्पष्ट रूप में अन्य नागरिकों के मूल अधिकारों को खंडित करने वाली व्याख्या है। जबकि भारत के राज्य ने संविधान के द्वारा भारत के सभी नागरिकों के लिये विधि के समक्ष समता का अधिकार दिया है और धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग या जन्मस्थान के आधार पर किसी भी नागरिक के विरुद्ध कोई भी भेद नहीं करने का संकल्प लिया है और लोकनियोजन के

विषय में अवसर की समता का भी संकल्प लिया है। समान नागरिक संहिता नहीं होने पर ये दोनों ही प्रकार की समतायें संभव नहीं हैं।

यदि एक समुदाय अपने वयस्क मतदाताओं की संख्या धार्मिक स्वतंत्रता की आड़ में मनमाने तौर पर बढ़ाने का आपराधिक कार्य करता है तो यह विधि के समक्ष समता को बाधित करने वाली बात हुई। क्योंकि एक समुदाय के रूप में वह समुदाय विधि के समक्ष अवसरों के लिये अपने अधिक सदस्यों को तैयार कर रहा है और शेष समाज के लोग संतान के विषय में शासन द्वारा निर्धारित मर्यादा का पालन करते हुये अपने समुदाय के सदस्यों के लिये अपेक्षाकृत वंचित हो जाते हैं। इस प्रकार यह धार्मिक स्वतंत्रता की आड़ में एक समुदाय या कुछेक समुदायों द्वारा शेष संपूर्ण भारतीय समाज के साथ राजनैतिक अन्याय करने की तैयारी वाला कदम है। अत: सामाजिक और राजनैतिक न्याय के लिये समान नागरिक संहिता अनिवार्य है।

जहाँ तक संस्कृति और शिक्षा की बात है, अनुच्छेद 29 एवं 30 में जो अधिकार दिये गये हैं वे भारतीय संस्कृति और भारत की ज्ञान परंपरा का योजना पूर्वक नाश करने वाली किसी वैमनस्यपूर्ण, दुर्भावनापूर्ण और विद्वेषपूर्ण अर्थात् कुलमिलाकर शत्रुतापूर्ण कार्यवाही का अधिकार नहीं है। अपितु वह व्यापक भारतीय संस्कृति और ज्ञानपरंपरा की मर्यादा के अन्तर्गत अपने विशेष सांस्कृतिक रंग की विशेषता बनाये रखते हुये सांस्कृतिक इन्द्रधनुष की शोभा बढ़ाने के लिये दिये गये अधिकार हैं। क्योंकि भाग 4 में राज्य की नीति के निदेशक जो तत्व हैं वे अनुच्छेद 37 के अनुसार किसी भी न्यायालय के द्वारा प्रवर्तनीय नहीं होंगे और इस भाग में अधिकथित तत्व देश के शासन के लिये मूलभूत हैं तथा विधि बनाने में इन तत्वों को लागू करना राज्य का कर्तव्य होगा। तदनुसार अनुच्छेद 38 के अनुसार सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक न्याय राष्ट्रीय जीवन की सभी संस्थाओं को अनुप्राणित करे, इसके लिये राज्य प्रभावी रूप में ऐसी सामाजिक व्यवस्था की स्थापना करेगा और उसका संरक्षण करेगा तथा इसके द्वारा लोक कल्याण की अभिवृद्धि करेगा। इसीलिये विषम नागरिक संहिताओं का होना और समान नागरिक संहिता का न होना वस्तुत: राज्य के नीतिनिदेशक तत्वों की उपेक्षा का प्रमाण है। यह बहुत ही दुखद तथ्य है कि कांग्रेस सरकारों ने राज्य की नीति के निदेशक तत्वों का ही निरादर किया और अन्य सरकारें भी इस स्थिति को अभी तक ठीक नहीं कर पाईं हैं।

संविधान के इसी भाग में अनुच्छेद 51 के रूप में जो मूल कर्तव्य निर्धारित किये गये हैं उसमें 51(च) का स्पष्ट प्रावधान है कि भारत के प्रत्येक नागरिक का यह कर्तव्य होगा कि वह भारत की गौरवशाली परंपरा का महत्व समझे और उसका परिरक्षण करे। अत: धार्मिक या मजहबी स्वतंत्रता की आड़ में अपने समुदाय के सिवाय शेष संपूर्ण समाज को राजनैतिक अन्याय की स्थिति में लाने वाला कोई भी कदम संवैधानिक नहीं है। इसी के साथ यह भी है कि इस प्रकार की धार्मिक स्वतंत्रता भारत के किसी भी नागरिक को नहीं दी जा सकती जो अन्य लोगों की धार्मिक स्वतंत्रता पर आघात करे अथवा जो समाज में विषमता और विद्वेष को बढ़ावा दे। जब मजहब की आड़ में विवाह और संतानों के विषय में मनमानी करने की छूट की माँग की जाती है तो वह भारत के मुख्य समाज की धार्मिक स्वतंत्रता पर स्पष्ट आघात है। इस विषय में विशेषत: उल्लेखनीय है कि हिन्दू समाज की धार्मिक स्वतंत्रता में यह शास्त्रीय प्रावधान है कि जो हमारे देवी-देवताओं की निंदा करे या अपमान करे, उनका वध कर दिया जाये। परंतु राष्ट्रीय समरसता के पक्ष में हिन्दुओं ने अपनी इस विषय में धार्मिक स्वतंत्रता का आग्रह नहीं किया है। इस तथ्य को ध्यान में रखते हुये अन्य समुदायों को भी मजहबी आजादी का अर्थ ग्रहण करना चाहिये। क्योंकि अगर मजहबी आजादी के नाम पर शेष समाज में भय जगाने वाली और समाज के राजनैतिक भविष्य को अनिश्चित बनाने वाली क्रियाशीलताओं की छूट दी गई तो अनर्थ होगा और वह भारत की गौरवशाली परंपरा के भी विपरीत होगा।

वस्तुत: समान नागरिक संहिता विश्व के प्रत्येक लोकतांत्रिक नेशन स्टेट में है। भारत में राजीव गाँधी की सरकार ने भी इसे लाने की घोषणा की थी परंतु फिर शाह बानो के मामले में

अचानक मजहबी मुस्लिम एकजुटता का दबाव पड़ा और राजीव गाँधी सरकार ने पूरी तरह 'यूटर्न' ले लिया। उन्होंने 'सरिया कानून' के पक्ष में भारत शासन द्वारा संविधान में निर्देशित नीति निर्देशक तत्वों की उपेक्षा करने का निर्णय लिया।

इसमें महत्त्वपूर्ण बात यह है कि भारत में जो लोग शरिया लॉ के समर्थक हैं वे यह मानते हैं कि मुस्लिम पर्सनल लॉ नाम की कोई ऐसी अलग चीज है जो भारत के सामान्य कानूनी ढाँचे से परे है। इसमें इकतरफा तलाक, बहुविवाह और मुसलमानों के जीवन में मजहबी कानूनों की सर्वोपरिता का अधिकार देती है। इस तर्क को स्वीकार करना वस्तुत: नागरिकों की अनेक श्रेणियाँ मानना है। यदि शासक संविधान की आधारभूत भावना की उपेक्षा करके नागरिकों की अनेक श्रेणियों की बात में आस्था रखते हैं तो उन्हें यह बात खुलकर कहने का साहस दिखाना चाहिये और साथ ही संविधान में नागरिकता के संदर्भ में इन विभिन्न श्रेणियों का अलग से उल्लेख कर देना चाहिये। क्योंकि अवैध कार्यों में लिप्त असामाजिक तत्व तो अपनी योजनाओं और मान्यताओं को छिपाते हैं, परंतु शासन तो नीतियों की सार्वजनिक घोषणा किया करता है और यह संविधान नीतियों की सार्वजनिक घोषणा ही है। ऐसी स्थिति में व्यवहार में नागरिकों की अनेक श्रेणियाँ मानना परंतु उसकी सार्वजनिक घोषणा नहीं करना शासन के स्तर पर शोभाजनक नहीं है और यह शासन के कार्य में कोई सुविधा भी नहीं उत्पन्न करता। क्योंकि इन विषयों में अन्य सभी प्रावधान सार्वजनिक रूप से घोषित हैं। इसलिये यह बात भी घोषित कर देनी चाहिये और शासन को स्वीकार कर लेना चाहिये कि वह भारत के नागरिकों की अनेक श्रेणियाँ मानता है। एक श्रेणी बहुसंख्यक हिन्दू समाज ही है जिसके विवाह और संतान संबंधी सभी मुद्दों पर सरकारें लगातार कानून बनाती रही हैं। दूसरी श्रेणी अल्पसंख्यकों की है जिनके विवाह, संतति, सम्पत्ति संबंधी उत्तराधिकार तथा अन्य समाजों के प्रति भेदभावपूर्ण व्यवहार के विशेष अधिकार हैं। जिन्हें सरकार छू ही नहीं सकती। ऐसी दो परस्पर विरोधी श्रेणी घोषित होते ही दूसरी श्रेणी को शासन के लिये मत देने का अधिकार भी नहीं रह जायेगा। क्योंकि जो समुदाय शासन के द्वारा स्वयं को शासित रखने को तैयार नहीं हैं, वह स्वयं भी शासन के विषय में किसी भी प्रकार का मत देने का अधिकार नहीं रख सकता।

आधे भारत में ब्रिटिश शासन 1858 से 1947 ई. तक रहा था। उस समय अंग्रेजों ने हिन्दुओं के लिये अलग कानून रखे थे और मुसलमानों के लिये अलग। अंग्रेजों ने 1864 का इंडियन मैरिज एक्ट बनाया जो केवल ईसाई पद्धति के विवाहों पर लागू होता था। हिन्दू उत्तराधिकार कानून 1928 में बनाया गया जो हिन्दू परिवारों की संपत्ति पर स्त्रियों को अधिकार प्रदान करने की दृष्टि से था। उस समय मुसलमान परिवारों के लिये भी ऐसा ही कानून बनाने की बात ब्रिटिश प्रशासन ने की थी। परंतु फिर अलगाववादी मुस्लिम समूहों की माँग के कारण ब्रिटिश प्रशासन ने वह कदम उठाने का साहस नहीं किया।

कांग्रेस सरकार ने हिन्दू लॉ कमेटी बनाई। महत्व की बात यह है कि श्री जवाहरलाल नेहरू की पूरी टीम ने तथा कांग्रेस की सभी नेत्रियों ने 1948 से 1951 ईस्वी के बीच लगातार समान नागरिक संहिता की आवश्यकता पर बल दिया। डॉ. भीमराव अंबेडकर ने संसद में कहा कि सनातन धर्म के सभी परंपरागत आचार्य भी स्त्रियों को समान अधिकार दिये जाने के पूर्ण समर्थक हैं क्योंकि स्वयं सनातन धर्मशास्त्रों में स्त्रियों को सम्पत्ति पर अधिकार दिया गया है। अत: यही समय है जब समान नागरिक कानून बना दिया जाना चाहिये जिससे कि आगे चलकर जातिगत भेदभाव भी समाप्त हो जायेगा। परंतु अंत में मुसलमानों और ईसाइयों की ओर से विरोध हुआ और समान नागरिक कानून के स्थान पर हिन्दू लॉ लाया गया। तब से आज तक यही स्थिति बनी हुई है। सरकार ने हिन्दुओं के पारिवारिक और धार्मिक जीवन में हस्तक्षेप का अपना अधिकार मान रखा है और उस अधिकार का प्रयोग लगातार कर रहे हैं। हिन्दू विवाह कानून, हिन्दू उत्तराधिकार कानून, हिन्दू नाबालिग बच्चे एवं अभिभावकत्व का कानून तथा उत्तराधिकार एवं गुजाराभत्ता कानून सरकार ने हिन्दुओं के लिये बनाये हैं।

संविधान के भाग 4 के अन्तर्गत राज्य की नीति के निर्देशक तत्वों के रूप में अनुच्छेद 44 में स्पष्ट कहा गया है कि भारत शासन भारत के समस्त क्षेत्र में यूनिफार्म सिविल कोड (समान सिविल संहिता) बनाने के लिये उद्यम करेगा। परंतु यह उद्यम

आज तक नहीं किया गया है। इस प्रकार समान सिविल संहिता यानी समान नागरिक कानून का नहीं बनाया जाना स्पष्ट रूप से संविधान के भाग 4 में निर्देशित राज्य के नीति निर्देशक तत्वों की अवज्ञा है। परंतु यह अवज्ञा शासन के द्वारा 76 वर्षों से निरंतर जारी है। अनेक विद्वानों ने और प्रमुख नेताओं ने भी लगातार यह बात कही है कि समान नागरिक कानून का नहीं बनाया जाना भारत के राज्य के द्वारा अपने कर्तव्य की उपेक्षा है। परंतु यह उपेक्षा लगातार जारी है। जवाहरलाल नेहरू ने तर्क दिया कि भारत के कतिपय समुदाय जिस कानून का उग्र विरोध करें, वह कानून नहीं बनाया जाना चाहिये। अत: हमें हिन्दू समाज में ही स्त्रियों को समान अधिकार दिये जाने के सम्बद्ध में लगातार उपयोगी कानून बनाते जाना चाहिये ताकि वह अन्य समाजों को भी प्रेरणा दे और वे लोग भी स्वत: इस दिशा में पहल करने की माँग करे। इस प्रकार हिन्दू समाज को एक ऐसा आदर्श समाज बताया गया, जिसका अनुसरण अल्पसंख्यक समुदाय अवश्य करेंगे। यह आशा पाल ली गई।

यह विचित्र बात है कि जिन लोगों ने समान नागरिक कानून न बनाकर केवल हिन्दू समाज के भीतर नये से नये परिवर्तन लाने के पक्ष में यह तर्क दिया कि हिन्दू समाज जितना उदार और लोकतांत्रिक होगा तथा उसमें जितनी अधिक समानता व्यवहार में आयेगी, उतना ही अधिक अन्य समुदायों को भी उसका अनुसरण करने की प्रेरणा मिलेगी, उन्हीं लोगों ने विगत 76 वर्षों में लगातार हिन्दू समाज के दोषों को ही गिनाने का काम किया है और मुसलमानों तथा ईसाइयों के समुदायों में तुलनात्मक दृष्टि से अनेक गुण और अनेक विशेषतायें ये लोग बताते रहे हैं तथा उनका अनुसरण करने की प्रेरणा हिन्दुओं को देते रहे हैं। इस विचित्र व्यवहार से ऐसा लगता है कि हिन्दुओं के साथ केवल राजनैतिक ठगी की जाती रही है और यह सच्ची भावना के स्थान पर हिन्दुओं के साथ वंचना किये जाने का मामला है।

अगर बात केवल आंतरिक सुधार तक सीमित होती तो निश्चित ही इसका स्वागत किया जा सकता था कि ठीक है, हिन्दू समाज अपनी कमियों को दूर करके और बेहतर बने और इस विषय में अन्य समुदायों की ओर देखने की आवश्यकता नहीं है। परंतु यह स्पष्ट हो गया है कि बात आंतरिक सुधारों तक सीमित नहीं है। बहुविवाह और बहुसंतान की सुविधा ऐसे सभी लोगों को इस्लाम को अपनाने की प्रेरणा देती है जो एक से अधिक पत्नियाँ रखना चाहते हैं और अपनी अनेक संतानों के द्वारा अपने घर में अनेक वोट होने के लाभ लेते रह सकते हैं। इस प्रकार राजनेताओं का यह आचरण हिन्दू समाज के साथ धोखाधड़ी से आगे बढ़कर शत्रुता के रूप में प्रतिफलित होता है जहाँ धीरे-धीरे हिन्दुओं की राजनैतिक शक्ति को कम किया जा रहा है और उसके स्थान पर अलगाववादियों और मजहबी उन्माद वालों को महत्व दिया जा रहा है। वस्तुत: ऐसा करना समानबंधुता की भावना का निरादर है और राष्ट्रीय एकता और अखंडता के लिये भी आगे चलकर खतरा सिद्ध हो सकता है।

जब मुस्लिम अलगाववादी भावना को स्वयं पारिवारिक जीवन तथा निजी जीवन के स्तर पर इतना खुलकर महत्व दिया जायेगा तो निश्चय ही इससे अलगाववादियों की राजनैतिक लालसायें भी तीव्र होंगी। अधिक संतानों के द्वारा वोट की अधिक ताकत तो वे संग्रहीत करेंगे ही, इसके साथ ही उनकी व्यापक हिन्दू समाज से अलग विशेष पहचान इस प्रकार रेखांकित किया जाना उनमें अपनी अलग राजनीति और अलग सत्ता की भी लालसा पुन: जगा सकता है। वे स्वयं को विशेष मानते हुये और स्वयं के साथ विशेष व्यवहार होते हुये भी अगर देखेंगे तो इससे वे बहुत बड़ी भ्रांति के शिकार हो जायेंगे और अपने को समान नागरिक कानूनों से परे मान लेंगे। यह स्थिति राष्ट्र की एकता के लिये भी बाधक है और बंधुता की समान भावना के लिये भी। इसलिये मोदी सरकार को अब सामाजिक समरसता और राष्ट्रीय एकता तथा समान बंधुता की स्थापना के लिये समान नागरिक कानून शीघ्र बनाना चाहिये। प्रसन्नता की बात है कि प्रधानमंत्री जी ने ऐसा कानून बनाने का संकल्प सार्वजनिक रूप से व्यक्त किया है। यह एक श्रेष्ठ राष्ट्रनेता के अनुरूप शोभनीय कदम है। यह कार्य अवश्य ही होना चाहिये।

ए 141, आकृति हाईलैण्ड
डाकघर-फंदा, भोपाल-462030 (म.प्र.)
मो. 8349350267

समान नागरिक संहिता पर गलत बहस

– शंकर शरण

जन्म – 4 जनवरी 1961।
जन्म स्थान – जमालपुर, बिहार।
शिक्षा – एम.ए., पीएच.डी।
रचनाएँ – भारतीय इतिहास लेखन जैसी गंभीर पुस्तक सहित लगभग दर्जन भर पुस्तकें प्रकाशित।

जिस रूप में एकाएक समान नागरिक संहिता की बहस शुरू या प्रायोजित हुई है, वह कई कोणों से गलत है। सब से पहले, इसे राष्ट्रीय नहीं बल्कि दलीय उद्देश्य से उछाला गया है। सभी राजनीतिक दल, और टिप्पणीकार इसे साफ-साफ अगले लोक-सभा चुनाव के मुद्दे के रूप में देख रहे हैं। यह स्वत: प्रमाण है कि इसे देश के हित में लागू करने के लिए नहीं, बल्कि दलीय और सामाजिक ध्रुवीकरण करने के लिए उछाला गया है।

दूसरे, इसे 'उछाला' गया है-क्योंकि उस संहिता का कोई ठोस प्रारूप सामने नहीं है। कि उसमें क्या-क्या होगा या क्या नहीं होगा। यह अपने-आप में एक अनुचित, गैर-जिम्मेदार काम है, कि लोगों को किसी काल्पनिक हानि-लाभ पर तू-तू मैं-मैं करने के लिए छोड़ दिया जाए। वरना, जैसा राष्ट्रीय शिक्षा नीति पर हुआ था, पहले एक संहिता प्रारूप बनाकर उस पर समाज को विचार-विमर्श करने और सुझाव, आलोचना देने के लिए कहा जाता।

तीसरे, जो सब से महत्त्वपूर्ण है, जिन लोगों ने इसे उछाला है वे धर्म, रिलीजन और इतिहास से अनजान प्रतीत होते हैं। ऊपर के दोनों बिन्दु ही इसे साफ-साफ दिखा रहे हैं। यह लगभग सौ वर्ष पहले गाँधी जी और कांग्रेस द्वारा की गई हिमालयी भूल का ही स्मरण दिलाता है। जब गाँधी जी ने कहा था कि उन्हें 'जानने की जरूरत ही नहीं' है कि खलीफत क्या है, अथवा इस्लाम और शरीयत क्या है। पर चूँकि मुस्लिम नेता खलीफत की सत्ता बचाना चाहते हैं, इसलिए यह गाँधी जी, और उनके साथ कांग्रेस और हिन्दुओं का कर्तव्य हो जाता है कि वे भी खलीफत को 'मुसलमानों की गाय' मान कर के लिए आंदोलन करें! उसके जो भीषण परिणाम हुए, वह इतिहास उलट कर देखना चाहिए (क्योंकि खलीफत आंदोलन के इतिहास को हमारी नई पीढ़ियों से पूरी तरह छिपाया गया है)।

आज कई वर्षों से संघ-परिवार के नेता, जो आज के सब से प्रभावी राजनीतिक समूह हैं, वही विचित्र रुख दर्शा रहे हैं। उन के बड़े-बड़े नेताओं के नियमित बयान, और विविध प्रकार के कार्य ठीक इस्लाम, कुरान, शरीयत, और जिहाद तथा पूरे इतिहास के प्रति वही भोलापन दर्शा रहे हैं। अगले लोक-सभा चुनाव से ऐन पहले किसी अनिश्चित समान नागरिक संहिता पर अधकचरी बहस, या सही कहें तो उत्तेजना को जगाना इसी का संकेत है कि वे इस्लामी राजनीति की तमाम विशिष्टताओं, और उस के इतिहास से अनजान हैं। फलत:, जैसा गाँधी जी के हाथों हुआ था, अपनी सदनीयती के बावजूद वे अनायास एक सामाजिक विध्वंस को बढ़ावा देने के उपकरण बन जा सकते हैं। ऐसा विध्वंस जिसमें हिन्दू समाज की घोर हानि होती रही है।

यदि हम सच्चा विमर्श, और देश का हित चाहते हैं, तो हमें आँख खोलकर यह देखना-परखना होगा कि भारत में हिन्दू समाज पिछले हजार सालों से एक सभ्यतागत युद्ध झेल रहा है। भाजपा-परिवार इस से इससे कुछ न कुछ परिचित भी है। बल्कि इसी तथ्य का इस्तेमाल कर, यानी हिन्दुओं की चिन्ता, आशंका का उपयोग करके ही अकेले केंद्रीय सत्ता में आया। लेकिन सत्ता में आ जाने के बाद इस की प्रवृत्ति केवल सत्ता में बने रहने की जुगत भर रही है। चूँकि यह कई दशकों का अनुभव है, इसलिए भी उन के द्वारा अभी समान नागरिक संहिता का मुद्दा उछालना एक प्रपंच लगता है। उसी तरह, संघ-भाजपा के कुछ नेताओं द्वारा 'बिगड़ती जनसांख्यिकी' का मुद्दा उठाना भी हिन्दुओं को डराने की तिकड़म ही लगती है।

ऐसा इसलिए लगता है क्योंकि हमारे देश में अभी कानून से ऊपर भारतीय संविधान है। लेकिन स्वयं संविधान ही, अनजाने,

अथवा बाद में राजनीतिक दलों द्वारा विकृत अर्थ दिया जाकर, हिन्दुओं के विरुद्ध भेद-भाव करता है। वह भी ठीक धर्म और शिक्षा के दो मर्मभूत विषयों में। यह किसी के भी देखने-परखने योग्य ठोस तथ्य है। कि भारत में हिन्दुओं को अपने शिक्षा संस्थानों, और अपने मंदिरों पर वही अधिकार नहीं हैं, जो क्रिश्चियनों और मुसलमानों को अपने शिक्षा संस्थानों और चर्च, मस्जिदों पर है। तब यदि संविधान ही हिन्दू-विरोधी बना हुआ, या बना दिया गया है, तो कुछ गौण मामलों (विवाह, तलाक, संपत्ति उत्तराधिकार, वसीयत, आदि) में समान नागरिक संहिता की बात ही फूहड़, अनावश्यक और ध्यान भटकाने वाली, इस प्रकार हिन्दुओं की और दुर्गति कराने वाली है।

क्योंकि जो समाज पहले से ही दूसरे दर्जे का नागरिक बना हुआ है, उसे तो पहले विशिष्ट दर्जा पाए समाजों के समान बनाना परमावश्यक है। वरना उसकी पराजय और दुर्दशा निश्चित है। वैसे भी, चाहे जनसंख्या-नियंत्रण हो या समान नागरिक संहिता, यह मूलत: हिन्दू और मुस्लिम समुदायों के बीच तुलनात्मक सामर्थ्य और समझ का मामला है। जबकि जमीनी वास्तविकता यह है कि हिन्दू समाज अपने स्कूलों और मंदिरों पर समान अधिकार से भी वंचित, दुर्बल अवस्था में है। वस्तुत:, मुसलमानों, क्रिश्चियनों की तुलना में हिन्दुओं को इस तरह दूसरे दर्जे का नागरिक बनाए रखना हिन्दू समाज के अस्तित्व पर ही चोट है। इस निरंतर अपमानजनक और अंतत: प्राणघातक अन्याय को जारी रखते हुए, भाजपा-परिवार की हिन्दुत्व वाली सारी भंगिमाएँ आश्चर्यजनक भोलापन अथवा क्षुद्र प्रपंच मात्र है।

आखिर, जिसे बैंगन भूनने में संकोच हो, वह शालिग्राम कैसे खा लेगा! संविधान को सभी समुदायों के लिए बराबर बनाना बड़ा आसान है-यह मानवीय समानता के अधिकार के नाम पर मजे से किया जा सकता है। जिसे सभी दल समर्थन देंगे या विरोध नहीं करेंगे। शिक्षा और मंदिरों के संचालन में हिन्दू नागरिकों को मुस्लिम, क्रिश्चियन नागरिकों के समान अधिकार देना इसीलिए सरल है। बैंगन भून कर खाने जैसा। जबकि मुसलमानों को शरीयत के प्रावधानों की उपेक्षा करके उन्हें आधुनिक, स्त्री-पुरुष समानतापरक, मानवीय कानून मानने के लिए बाध्य करना शालिग्राम खाने की कोशिश समान है। निस्संदेह, शरीयत को अछूता छोड़ कर कोई समान संहिता बनाना असंभव है, अथवा वह एकतरफा फिर हिन्दुओं को ही तरह-तरह कई नई बंदिशों में जकड़ना भर बन के रह जाएगा।

तनिक सोच कर देखें। समान सागरिक संहिता या जनसंख्या-नियंत्रण जैसे मुद्दे उछालने से मुसलमानों में विरोध पैदा होगा। इस्लामी नेताओं, संगठनों को बैठे-बिठाए उग्र होने का मुद्दा मिल जाएगा। स्वभाविक रूप से तब हिन्दुओं में प्रतिक्रिया और भय पैदा होगा। जिस का उपयोग भाजपा-परिवार के कार्यकर्ता, और प्रचारक अपना पार्टी-समर्थन पक्का करने में लगाएँगे। इस तरह, वे हर मोर्चे पर केवल विरोध-प्रतिरोध उकसाएँगे, जबकि हिन्दू समाज को मिलेगा कुछ नहीं! उलटे पूरी दुनिया में बदनामी होगी कि भारत में मुसलमानों पर जबर्दस्ती हो रही है। वह बदनामी यहाँ के हिन्दू समाज के माथे पर आएगी, जिससे हिन्दुओं से सहानुभूति रखने वाले विदेशी लोग, संस्थाएँ, सरकारें भी बिदक जाएँगी। यह तो हिन्दुओं के विरुद्ध सवा-सत्यानाशी योजना है, जिसका आरंभ भाजपा-परिवार ने कर डाला है!

यह भी दर्शनीय है कि पिछले सात दशकों में भाजपा-परिवार ने समान नागरिक संहिता के लिए कभी कोई पहलकदमी या हस्तक्षेप भी नहीं किया। तब भी, जब स्वयं सुप्रीम कोर्ट इस की जरूरत पाँच बार बता चुकी है। यह उस ने 1985, 1995, 2003, और 2011 ई. में विविध मामलों की सुनवाइयों/फैसलों में सुप्रीम कोर्ट ने इस बात को रेखांकित किया था। पर भाजपा समेत सभी राजनीतिक दल मानो किसी मौन दुरभिसंधि से चुप रहे। जब कि उस के लिए संविधान का निर्देश (अनुच्छेद 44) भी था। अब एकाएक भाजपा नेताओं द्वारा समान नागरिक संहिता उठाना साफ मतलबी और दिखावटी लगता है।

इसीलिए, यदि राष्ट्रीय या हिन्दू हित की सच्ची चिन्ता हो, तो हिन्दुओं को अपनी शिक्षा और अपने मंदिर संचालन में दूसरों के समान अधिकार देना सब से पहला काम और अनिवार्य कर्तव्य भी है। यह करना इसलिए भी सरल है, क्योंकि इसमें मुसलमानों का कुछ नहीं छिनेगा। केवल हिन्दुओं को भी वह अधिकार मिल सकेंगे जो दूसरों को पहले से मिले हुए हैं।

अत: यह सार्थक ही नहीं, सहज काम भी है। केवल संसद में एक प्रस्ताव पास करना कि, 'संपूर्ण भारत में किसी भी धर्म को मानने वाले नागरिकों को, बिना भेद-भाव के, अपने-अपने शिक्षा संस्थान, तथा अपने-अपने धर्म/पूजा स्थलों के संचालन का समान अधिकार दिया जाता है।' इसे नागरिक समानता के नाम पर अधिकांश दलों का समर्थन मिलेगा। अंतर्राष्ट्रीय जगत में भी इसे सहज स्वीकार किया जाएगा। कौन कहेगा कि धर्म-

रिलीजन के आधार पर शिक्षा-संस्थान और धर्म-स्थानों के संचालन में भेद-भाव होना चाहिए?

इसीलिए, भाजपा-परिवार को चुनाव जीतते रहने के सिवा सचमुच राष्ट्रीय या हिन्दू-हित का कोई असली काम करना हो तो देश भर में जिन मंदिरों को सरकारों ने कब्जे में लिया हुआ है, वह हिन्दू समाज को वापस करे। इस में कोई हीला-हवाला या दलीय प्रपंच न करे। साथ ही, शिक्षा का अधिकार (आर.टी.ई.) कानून भी बिना धार्मिक भेद-भाव के सभी के लिए समान रूप से लागू करे। अर्थात् मुसलमानों, क्रिश्चियनों द्वारा संचालित स्कूलों, शिक्षा संस्थाओं को जो छूट दी गई, वह हिन्दुओं द्वारा संचालित स्कूलों, शिक्षा संस्थाओं को भी हो।

यह दो काम कर देने से मुसलमानों, क्रिश्चियनों की कोई हानि नहीं होगी। केवल हिन्दुओं को हो रही हानि खत्म हो जाएगी। यदि भाजपा नेतागण यह नहीं करते, तो मानना होगा कि वे अपने प्रपंचों से केवल हिन्दू-समाज को दिनो-दिन कमजोर और दुनिया में बदनाम भी कर रहे हैं। केवल इसलिए, क्योंकि उन्होंने अपने पार्टी हित को राष्ट्रीय हित से अलग मान लिया है। अन्यथा, वे एकतरफा ऐसे गंभीर मुद्दे उछालने के बदले, पहले एक राष्ट्रीय विमर्श का विनम्र आह्वान करते। हरेक दल को इस में भागीदार बनने का सम्मानपूर्वक आमंत्रण देते।

परन्तु, जैसा ऊपर कहा गया, चूँकि भाजपा-परिवार इस्लामी मामलों में गाँधी जी जैसा ही भोला, चाहे सदायसी है। इसलिए इतना बुनियादी और सरल काम आज तक नहीं हो सका। न उसे करने का उनके पास कोई विचार है। वे इस गंभीर विषय से निपट अनजान हैं, यह इस से भी दिखता है कि हिन्दुओं को अपने शिक्षा संस्थान और मंदिर संचालन में दूसरे समुदायों के समान अधिकार मिलने का काम बहुत पहले हो सकता था। वह भी अनायास। क्योंकि एक बार, स्वयं एक वरिष्ठ मुस्लिम नेता सैयद शहाबुद्दीन ने लोक सभा में अप्रैल 1995 में लगभग वैसा ही विधेयक (नं 36/1995) रखा था।

तब सैयद शहाबुद्दीन का उद्देश्य जो भी रहा हो, परन्तु उन्होंने साफ-साफ प्रस्तावित किया था कि संविधान के अनु. 30 में जहाँ-जहाँ 'सभी अल्पसंख्यक' लिखा हुआ था, उसे बदल कर 'भारतीय नागरिकों का कोई भी वर्ग' कर दिया जाए। जिससे सब को अपनी शैक्षिक संस्थाएँ बनाने, चलाने का समान अधिकार मिले। अपने विधेयक के उद्देश्य में शहाबुद्दीन ने स्वयं लिखा था कि अनु. 30 केवल अल्पसंख्यकों पर लागू किया जाता है, जबकि 'एक विशाल और विविधता भरे समाज में लगभग सभी समूह जिन की पहचान धर्म, संप्रदाय, फिरका, भाषा, और बोली किसी आधार पर हो, व्यवहारतः कहीं न कहीं अल्पसंख्यक ही होते हैं, चाहे किसी खास स्तर पर वह बहुसंख्यक क्यों न हों। आज विश्व में सांस्कृतिक पहचान के उभार के दौर में हर समूह अपनी पहचान के प्रति समान रूप से चिंतित है और अपनी पसंद की शैक्षिक संस्था बनाने की सुविधा चाहता है। इसीलिए, उचित होगा कि संविधान के अनु. 30 के दायरे में देश के सभी समुदाय और हिस्से सम्मिलित किये जाएँ।' वह मात्र एक पृष्ठ का, किन्तु अत्यंत मूल्यवान विधेयक था।

यदि वही विधेयक हू-ब-हू फिर लाकर पास कर दिया जाए, तो भारत में राष्ट्रीय हित के लिए एक बड़ा काम हो जाएगा। उस की तुलना में हिन्दुओं के लिए महत्वहीन 'समान नागरिक संहिता' को आज उठाना केवल सांप्रदायिक तनाव उभारने का नुस्खा है। उससे किन्हीं दलों को चुनावी लाभ-हानि भले हो जाए, देश-हित घूरे पर ही पड़ा रहेगा। ऊपर से हिन्दुओं की नाहक बदनामी अलग से होगी, और इस्लामी कट्टरपंथियों को मुस्लिम समाज पर अपना कब्जा बढ़ाने का मौका और नुक्ता मिल जाएगा।

यह भाजपा-परिवार की अचेतावस्था का प्रमाण है कि सैयद शहाबुद्दीन का वह महत्त्वपूर्ण विधेयक यूँ ही पड़ा-पड़ा खत्म हो गया, जिसे तब देश में सबसे प्रखर मुस्लिम नेता ने पेश किया था। उसे पारित करने से यहाँ अल्पसंख्यक तुष्टीकरण की जड़ कमजोर होती। क्योंकि संविधान के अनुच्छेद 25-31 की अर्थ-विकृति करके ही हिन्दुओं को दूसरों के समान शैक्षिक, सांस्कृतिक अधिकारों से वंचित किया गया है। जो संविधान निर्माताओं का हरगिज आशय न था। संविधान सभा के मिनट्स साफ दिखाते हैं कि संविधान-निर्माताओं की चिंता किसी अल्पसंख्यक के अपने सांस्कृतिक, शैक्षिक अधिकार से वंचित न रहने की थी। यानी जो अधिकार हिन्दुओं को हैं, उनसे गैर-हिन्दुओं को वंचित न रहना पड़े। लेकिन बाद में, तमाम हिन्दू नेताओं के सोए रहने के कारण, हिन्दू-विरोधी वामपंथियों, मिशनरी और इस्लाम-परस्त नेताओं ने उस का धीरे-धीरे यह अर्थ कर डाला कि वह अधिकार तो केवल अल्पसंख्यकों को ही है! इस तरह,

अल्पसंख्यकों को विशेषाधिकार प्राप्त बताकर हिन्दुओं को दूसरे दर्जे के नागरिक बना दिया गया।

वह धीमी, पर क्रमशः उग्र होती प्रक्रिया भारतीय राजनीति में गत पचासेक वर्ष से चल रही है। जिस के अन्याय और पक्षपात को समय-समय पर समझ कर भी सभी राजनीतिक दल वोट-बैंक के लोभवश चुप रहते हैं। बल्कि बढ़ावा देते हैं।

यह कितनी बड़ी विडंबना है कि हिन्दुओं को जो कानूनी वंचना ब्रिटिश राज में भी नहीं थी, वह स्वतंत्र भारत में कर डाली गई! अपने देसी नेताओं द्वारा। इस पाप में सभी दल मुखर, मौन, या सुसुप्त शामिल थे। आश्चर्य से अधिक यह लज्जा की बात है।

वस्तुतः, 1995 ई. में सैयद शहाबुद्दीन द्वारा दिए गए महत्त्वपूर्ण अवसर को हिन्दू नेताओं द्वारा गँवा देना भी उसी लज्जाजनक हालत का प्रमाण है। हिन्दू नेता मानो अपने को हिन्दू मानते ही नहीं, वरना उन्हें इस अपमान का बोध क्यों नहीं होता कि वे हिन्दू के रूप में, हिन्दू होने के कारण ही, भारत में कई बुनियादी अधिकारों से वंचित हैं, जो किसी गैर-हिन्दू को मिले हुए हैं!

जबकि एकाधिक बार सुप्रीम कोर्ट ने भी कहा है कि संविधान के अनु. 25-26 मुसलमानों, क्रिश्चियनों को जो अधिकार देते हैं, उस से हिन्दुओं को वंचित नहीं करते। सुप्रीम कोर्ट ने 'रत्तीलाल पनाचंद गाँधी बनाम बंबई राज्य' (1952) मुकदमे में फैसला दिया था कि किसी धार्मिक संस्था के संचालन का अधिकार उसी धर्म-संप्रदाय के व्यक्तियों का है। उनसे छीन कर किसी सेक्यूलर प्राधिकरण को देना उस संवैधानिक अधिकार का उल्लंघन है, जो सब को दिया गया था। पुनः एक अन्य मुकदमे में, 'पन्नालाल बंसीलाल पित्ती बनाम आंध्र प्रदेश राज्य' (1996) मामले में भी सुप्रीम कोर्ट ने वही दुहराया। सुप्रीम कोर्ट की यह टिप्पणियाँ भी दर्शाती हैं कि हिन्दुओं पर अन्याय हो रहा है। पर तमाम राजनीतिक वर्ग, हिन्दू नेता और बौद्धिक, मानो किसी नशे में डूबे हुए हैं।

बहरहाल, शिक्षा संस्थान चलाने और मंदिरों के संचालन में हिन्दुओं को समान नागरिक अधिकार देना ही सब से सार्थक और सर्वाधिक आवश्यक काम है। यह आसान और देश-हित की दृष्टि से बहुत महत्त्वपूर्ण भी है। इस से सांप्रदायिक राजनीति कमजोर होगी और लोगों में सद्भाव बढ़ेगा। केवल विशेष समुदाय को वित्तीय सहायता, केवल हिन्दू मंदिरों पर सरकारी कब्जा, और हिन्दुओं द्वारा चलाए जा रहे स्कूल-कॉलेज चलाने पर वित्तीय, टैक्स-संबंधी, आरक्षण, आदि भेद-भाव खत्म हों। समान शैक्षिक-सांस्कृतिक अधिकार से सामाजिक संतुलन बनेगा, जो अन्य समस्याओं को सुलझाने में भी सहायक होगा। अन्यथा भारत में ही हिन्दू दूसरे दर्जे के नागरिक बने अभिशप्त रहेंगे। ऐसा अभिशाप, जो उन पर ब्रिटिश राज में भी नहीं था। स्वतंत्रता के 75 वर्ष बाद हिन्दुओं का इस संवैधानिक, कानूनी दुर्दशा में रहना कितनी लज्जा की बात है, कभी यह अनुभव करना चाहिए।

2/18, अंसारी रोड, दरियागंज,
नई दिल्ली - 110002
मो. - 9910035650

सूचना

अक्षरा के सम्माननीय पाठकों, सदस्यों से विनम्र आग्रह है कि पते के साथ अपना मोबाइल नंबर भी अवश्य भेजें। ताकि पत्रिका आपको पहुँचने में विलंब न हो।

अल्पसंख्यक स्त्रियों को भी स्वाधीनता और समानता अपेक्षित है

- कुसुमलता केडिया

स्वदेशी अर्थचेतना की संवाहक।
जन्म - 2 जुलाई 1954।
जन्म स्थान - पडरौना (उ.प्र.)।
शिक्षा - एम.ए., पीएच.डी।
रचनाएँ - अनेक पुस्तकें प्रकाशित।

समान नागरिक कानून नहीं होने के कारण भारत के अल्पसंख्यक समुदायों की स्त्रियों को वैसी स्वाधीनता और समानता प्राप्त नहीं है जैसी हिन्दू स्त्रियों को है। यह एक ही देश की स्त्रियों के बीच भेदभाव बरतना है जो भारत के राज्य के घोषित उद्देश्यों के सर्वथा विपरीत है। भारत के राज्य के कर्तव्य और अधिकार संविधान में वर्णित हैं। तदनुसार राज्य जन्मस्थान, जाति, मूलवंश, लिंग या धर्म के आधार पर कोई विभेद नहीं करेगा और भारत के सभी नागरिकों को विधि के समक्ष समता का अधिकार प्राप्त है। संविधान के भाग 3 अनुच्छेद 14 एवं 15 में यह स्पष्ट कहा गया है। ऐसा स्पष्ट प्रावधान होने के बाद भी भारत में राज्य के द्वारा भारतीय स्त्रियों के मध्य धर्म के आधार पर भेदभाव किया जाता रहा है, जो सर्वथा अनुचित है।

एक ओर तो भारत के वर्तमान शासन ने प्रत्येक वयस्क नागरिक को एक स्वतंत्र व्यक्ति के रूप में तथा मतदाता के रूप में मान्यता दे रखी है जो अपने मताधिकार के प्रयोग से शासन का संचालन करने के लिये जनप्रतिनिधि चुनता है। दूसरी ओर राज्य के द्वारा नागरिकों के बीच इस प्रकार के खुले भेदभाव होते रहना लज्जास्पद है।

नागरिकों की अस्मिता की रक्षा के लिये ही धार्मिक स्वतंत्रता और अल्पसंख्यकों की संस्कृति एवं शिक्षा की गारंटी सरकार ने दे रखी है जो संविधान में स्पष्ट रूप से अनुच्छेद 29 एवं 30 के रूप में प्रतिपादित है। ये प्रावधान नागरिकों की अस्मिता की रक्षा के लिये ही हैं। ऐसी स्थिति में स्त्री नागरिक की अस्मिता की रक्षा भी उतनी ही महत्त्वपूर्ण है और मजहब या रिलीजन की आढ़ में अपने समुदाय की स्त्रियों के व्यक्तित्व और सम्मान को बाधित करने का कोई भी अधिकार किसी भी समुदाय को नहीं है। इसलिये भारत शासन का यह कर्तव्य है कि वह समान नागरिक कानून शीघ्र से शीघ्र बनाये। मोदी शासन से देशवासियों को न्याय की अपेक्षा जगी है और स्त्रियों के प्रति न्याय सामाजिक न्याय का एक महत्त्वपूर्ण अंग है।

मजहब के नाम पर 'सरिया कानूनों' को यदि महत्व दिया जाना है तो फिर भारत के आधुनिक विधि विभागों और संकायों में शरिया कानून की पढ़ाई अलग से और विस्तार से होनी चाहिये। जाहिर है कि इसका तत्काल निहितार्थ यह है कि हिन्दू धर्मशास्त्रों के प्रावधानों का भी स्वतंत्र रूप से और विस्तार से अध्ययन आवश्यक होगा और क्रिश्चियन कानूनों का भी। अभी ऐसे अध्ययन की कोई व्यवस्था नहीं है। जबकि यह सर्वविदित है कि इस्लाम को मानने वाले लोगों के बीच शरिया कानूनों को लेकर भारी मतभेद हैं और यह भी सर्वविदित है कि शरिया कानून अल्लाह के द्वारा आखिरी रसूल को भेजे गये संदेश नहीं हैं।

कुरान शरीफ में वर्णित निर्देषों के अतिरिक्त और कोई भी कानून वस्तुतः अपने मूल अर्थ में इस्लामी नहीं कहा जा सकता। क्योंकि जो कुरान में नहीं है, वह इस्लाम नहीं है और जो कुरान के विरुद्ध है वह इस्लाम के विरुद्ध है। शरिया कानून के नाम पर ऐसे अनेक मनमाने प्रावधान किये जाते हैं जो कुरानशरीफ में वर्णित प्रावधानों के पूरी तरह विपरीत हैं। उदाहरण के लिये किसी भी प्रकार का नशा करना या किसी भी नशीली वस्तु की खेती या उत्पादन करना या कारोबार करना या ऐसी खेती,

उत्पादन अथवा करोबार में प्रत्यक्ष या परोक्ष किसी भी प्रकार का सहयोग देना अल्लाह के विरुद्ध किया गया जुर्म और गुनाह है जिसे हदूद गुनाह कहा गया है। जबकि शरिया कानूनों में अनेक हदूद गुनाहों के लिये कोई प्रावधान नहीं है। इसी प्रकार भारत के मुसलमानों ने यह माँग कभी भी नहीं की है कि अगर कोई मुसलमान चोरी करते पकड़ा जाये तो उसका हाथ काट लिया जाये और अगर वह चोरी या कोई जुर्म करके भागने की कोशिश कर रहा हो तो पकड़े जाने पर उसके पैर काट लिये जायें। अथवा यदि वह शराब पीते देखा जाये तो उसे पकड़कर 100 कोड़े लगाये जायें। ऐसे किसी कानून की माँग बाकी मुसलमानों ने आज तक नहीं की है। ऐसी स्थिति में वे शरिया कानून के नाम पर मनमानी की छूट नहीं पा सकते क्योंकि वह उनके मजहब का अनिवार्य अंग प्रमाणित नहीं होता।

मजहब का अनिवार्य अंग उतना ही है, जो कुरानशरीफ में वर्णित है। क्योंकि मुहम्मद साहब के जीवन के विषय में उनके जाने के वर्षों बाद जो कुछ संस्मरण संकलित किये गये, उन्हें लेकर स्वयं मोमिनों में भारी मतभेद है और अलग-अलग जगह सुन्ना के अलग-अलग रूप प्रचलित हैं। अत: वह कोई दैवी विधान नहीं है। मुसलमानों के लिये दैवी विधान केवल कुरानशरीफ है।

परंतु स्वयं कुरानशरीफ के प्रावधानों का भी पक्ष भारतीय मुसलमानों ने खुलकर नहीं लिया है। जैसे कि किसी भी भारतीय मुस्लिम संगठन ने सार्वजनिक तौर पर यह माँग नहीं की है कि किसी भी जुर्म में एक मोमिन मर्द की गवाही के बराबर चार मोमिन औरतों की गवाही ही मानी जाये। ऐसे अन्य अनेक प्रावधान भी हैं।

इससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण बात यह है कि किसी भी देश में 'मुस्लिम पर्सनल लॉ' जैसी कोई चीज नहीं है। भारत में भी यह नहीं थी। स्वाधीनता के लगभग तीन दशक बीत जाने पर चौथे दशक में 1973 ईस्वी में मुसलमानों ने मुस्लिम पर्सनल लॉ बोर्ड बनाया और दावा किया कि यह मुसलमानों के हितों की रक्षा के लिये बना है। इस प्रकार भारत के संविधान के समानान्तर एक मुस्लिम पर्सनल लॉ की हिफाजत करना इस बोर्ड का लक्ष्य बताया गया। जो कि स्वयं में संविधानेतर सत्ता स्थापित करने का एक प्रयास है।

कांग्रेस सरकार ने पहली बार मुस्लिम पर्सनल लॉ बोर्ड जैसी किसी चीज को मान्यता दी। जो स्पष्ट रूप से भारतीय मुसलमानों को अलग श्रेणी का नागरिक बनाने की पहल है। यह भारतीय नागरिकता को द्विभाजित करने वाली कुचाल है। अत: किसी भी सच्ची राष्ट्रीय सरकार को ऐसी अराष्ट्रीय संस्थाओं की मान्यता तत्काल भंग कर देनी चाहिये।

यहाँ सबसे अधिक महत्व की बात यह है कि किसी भी मुस्लिम नवाब या बादशाह के शासन में कोई मुस्लिम पर्सनल लॉ जैसी चीज नहीं थी और शरिया कानून भी अधिकृत रूप से घोषित नहीं था। एक सामान्य चलन यह था कि मुसलमानों के मामले में काजी और मुल्लाओं की सलाह से जुर्म की सजा तय हो जाती थी परंतु वह कोई एक व्यवस्थित और स्पष्ट निर्धारित प्रक्रिया नहीं थी। अकबर, जहाँगीर, शाहजहाँ किसी के भी शासन में ऐसा कोई स्पष्ट मुस्लिम कानून घोषित नहीं था। औरंगजेब ने पहली बार इसकी कोशिश करने के लिये कुछ मुल्लाओं से कहा परंतु आम राय नहीं बन सकी। ऐसी स्थिति में ब्रिटिश शासन ने अपने क्षेत्र में मुस्लिम प्रजा के विवादों के निपटारे के लिये शरीयत एक्ट 1937 ईस्वी में बनाया। जो मुख्यत: स्त्रियों का सम्पत्ति में हिस्सा तथा वसीयत और उत्तराधिकार के बारे में था। उसे मुस्लिम पर्सनल लॉ के रूप में इधर कुछ समय से कुछ लोग प्रचारित करने लगे हैं जो असत्य है और शरारतपूर्ण है।

इस तरह मुस्लिम पर्सनल लॉ नाम का कोई अधिकृत प्रावधान मुस्लिम इतिहास में नहीं है। कुरान ही मुसलमानों के लिये सर्वोच्च निर्देश है। क्योंकि वह अल्लाह के आखिरी रसूल पर उतरी हुई आयतों का संकलन है। इस तरह मनमाने ढंग से पर्सनल लॉ की बात करने वाले लोग वस्तुत: मोमिन हैं ही नहीं। वे तो मुनाफिकीन हैं जो पर्सनल लॉ की आढ़ में अथवा मजहबी हक की आढ़ में-देश में 'लॉ-लेस-नेस' फैलाने की कुचाल मात्र है। स्वयं कुरान के अनुसार ऐसे सब लोग मोमिन नहीं

मुनाफिकीन हैं और कड़ी सजा के पात्र हैं जो अल्लाह के निर्देशों का उल्लंघन करें और मनमाने कानून बनाने की माँग करें या कोषिष करें। इसलिये सच्चे मोमिनों को वैसे भी ऐसी तमाम कोशिशों का विरोध करना चाहिये।

भारत सरकार ने इकतरफा तीन तलाक के विरुद्ध कानून बनाकर मुस्लिम बहनों को बहुत राहत दी है और उनके जीवन में इससे ताजी हवा का एक झोंका आया है। अब समान नागरिक कानून बनाकर इसके अगले चरण की ओर बढ़ना चाहिये। जिससे कि मुस्लिम बहनों को भी अपनी हिन्दू बहनों के समान अधिकार मिल सकें और वे स्वाधीनता तथा समानता का जीवन जी सकें।

यही बात ईसाई बहनों के विषय में भी है। उन्हें मुस्लिम बहनों की तुलना में बहुत अधिक अधिकार प्राप्त हैं। परंतु 'वाइफ' के रूप में ईसाई बहनों को हिन्दू स्त्रियों के समान अधिकार प्राप्त नहीं है और उन्हें दाम्पत्य जीवन में समानता का भी अधिकार प्राप्त नहीं है।

एक रोचक बात यह है कि 1927 ईस्वी में विशेषकर ईसाई पादरियों तथा ईसाई संगठनों की प्रेरणा से मागरिट एलिजाबेथ ने ऑल इंडिया वीमेन कान्फ्रेंस का गठन पुणे में किया। जिसने स्त्रियों की सम्पत्ति के मामले में स्वतंत्र अधिकार की माँग शुरू की परंतु यह विशेष बात है कि वह माँग मुख्यत: हिन्दू समाज में ही फैली। गुजरात के प्रथम मुख्यमंत्री बने श्री जीवराज मेहता की पत्नी हंसा मेहता तथा कांग्रेस की नेता लक्ष्मी मेनन आदि ने ऑल इंडिया वीमेन कांफ्रेस को आगे बढ़ाया और स्त्रियों को अधिक अधिकार दिये जाने की माँग तेज की। परंतु इन सभी का जोर हिन्दू स्त्रियों को ही अधिक अधिकार देने के पक्ष में रहा। मुस्लिम और ईसाई स्त्रियों के विषय में ऐसी कोई माँग इन्होंने नहीं की। वह स्थिति आज तक चल रही है। माँग तो समस्त भारतीय स्त्रियों के विषय में उठाई जाती है, परंतु वह एक औपचारिकता हो जाती है। व्यवहार में सारा ही जोर केवल हिन्दू स्त्रियों के बीच वीमेन कान्फ्रेंस के प्रस्तावों और विचारों को फैलाने पर होता है। ऐसा क्यों है, यह स्पष्ट नहीं हो पाता।

अब प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी जी ने समान नागरिक कानून के विषय में संविधान में दिये गये निर्देश का पालन करने की घोषणा की है और उसके विषय में विस्तार से समझाया भी है कि भारत के सभी समुदाय एक ही भारतीय परिवार के सदस्य हैं। इसलिये परिवार के एक सदस्य के लिये अलग कानून बने और दूसरे सदस्य के लिये दूसरा कानून बने, यह न तो उचित है और न ही इससे कोई परिवार चल सकता है। अत: भारत की अर्थात् भारतीय समाज की एकता और अखंडता को सुनिश्चित करने के लिये समान नागरिक कानून अत्यंत आवश्यक हैं। संविधान के भाग 3 में भारतीय नागरिकों के मूल अधिकारों का प्रतिपादन है। इस भाग में अनुच्छेद 14 में स्पष्ट कहा गया है कि भारत का राज्य भारत के राज्यक्षेत्र के किसी भी व्यक्ति को विधि के समक्ष समता से या विधियों के समान संरक्षण से वंचित नहीं करेगा और अनुच्छेद 15 में कहा गया है कि राज्य किसी भी नागरिक से धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग, जन्मस्थान आदि किसी भी आधार पर कोई विभेद नहीं करेगा। अत: समान नागरिक कानून बनाया जाना संविधान का आदेश है। इतने वर्षों तक इस आदेश का पालन नहीं हुआ, यही दुर्भाग्यपूर्ण है। संविधान का अनुच्छेद 11 स्पष्ट घोषित करता है कि 'इस विषय में नागरिकता के बारे में वर्णित समस्त उपबंधों की कोई भी बात नागरिकता के अर्जन और समाप्ति के तथा नागरिकता से संबंधित अन्य सभी विषयों के संबंध में उपबंध करने की संसद की शक्ति को अल्पीकृत या अवमानित अथवा अप्रतिष्ठित नहीं कर सकती।' अत: संसद को इस विषय में सर्वोच्चता एवं सर्वाधिकार प्राप्त हैं। संविधान के भाग 4 में राज्य के नीतिनिदेशक तत्व वर्णित हैं। उनके अन्तर्गत अनुच्छेद 44 का निर्देश है कि भारत शासन समान नागरिक कानून बनाने का कार्य करेगा। इसलिये मोदी जी द्वारा समान नागरिक कानून बनाने की घोषणा समस्त भारतीयों के लिये एक कल्याणकारी घोषणा है। इसका सभी के द्वारा स्वागत स्वाभाविक है।

ए 141, आकृति हाईलैण्ड
डाकघर-फंदा, भोपाल-462030 (म.प्र.)
मो. 8349350267

समान नागरिक संहिता (यूसीसी) कितना सही

- राजीव खंडेलवाल

जन्म - 5 जनवरी 1955
जन्मस्थान - बैतूल (म.प्र.)
शिक्षा - स्नातकोत्तर, एल.एल.बी.।

धरातल पर वास्तविकता में कितना उतर जाएगी?

'मसौदा' (प्रारूप) सार्वजनिक कर सुझाव माँगे जायें!

पहल व कानून बनाए जाने का समर्थन! :- परिवर्तन प्रकृति का नियम है, 'जड़ता' नहीं। ठीक इसी प्रकार कानून भी जड़ता लिए न होकर परिवर्तनशील होकर आवश्यकतानुसार इनमें समय-समय पर संशोधन व नये कानून बनाये जाते रहे हैं। जैसी कि एक फारसी कहावत है कि 'हरचे आमद इमारतों नो साख्त'। जिसका अर्थ है-जो आया, उसने एक नयी इमारत तामीर की। इस दृष्टि से, और संविधान के भाग 4 के अनुच्छेद 44 के अन्तर्गत दिये गये नीति निर्देशक सिद्धांत के अपेक्षित अनुपालन में तथा उच्चतम न्यायालय द्वारा वर्ष 1985 में शाहबानो प्रकरण व तत्पश्चात् कई बार वर्ष 1995, 1997, 2014 में यूसीसी की संहिता बनाये जाने के निर्देश दिये गये। तदनुसार यूनिफॉर्म सिविल संहिता बनाये जाने की गंभीर, दृढ़ इच्छा शक्ति के साथ भारतीय जनता पार्टी की सरकार प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी के नेतृत्व में जहमत उठा रही है। इसके परिपालन में 22वें भारतीय विधि आयोग (लॉ कमीशन) जो संवैधानिक या वैधानिक निकाय न होकर भारत सरकार के आदेश से गठित एक कार्यकारी निकाय है, ने 14 मई को एक पत्र सार्वजनिक कर संपूर्ण देश के लिए एक 'समान सिविल संहिता' (यूसीसी) कानून बनाए जाने के लिए एक महीने के अंदर आम नागरिकों से सुझाव माँगे हैं। निश्चित रूप से इस पहल का व अंततः इसे कानूनी रूप दिये जाने की दिशा में बढ़ाए गए कदम का समर्थन किया ही जाना चाहिए, क्योंकि 'सबके लिए समान कानून' ही 'देश की एकता' 'समरसता' व 'मानवोचित कानून' का आधार है। एकता में ही शक्ति है, जैसी कि उक्ति है कि 'संघे शक्तिः कलौयुगे'! वर्ष 2022 में भाजपा सांसद किरोड़ी लाल मीणा ने राज्य सभा में इस संबंध में एक निजी विधेयक भी प्रस्तुत किया था।

कॉमन व यूनिफॉर्म सिविल कोड में 'अंतर' :- परंतु समर्थन के पहले यह जानना आवश्यक है कि आम जन मानस के बीच पूर्व में समान (कॉमन) नागरिक संहिता की बात चर्चा में रही थी, जो अब 'यूनिफॉर्म नागरिक संहिता' में बदल गई है। 'कॉमन' व 'यूनिफॉर्म' शब्द सतही तौर पर एक समान से ही लगते है। तथापि दोनों में अंतर बहुत है। इसलिए समर्थन/विरोध के पूर्व इसको समझना भी आवश्यक है। कॉमन (समान) शब्द का अर्थ है 'सभी परिस्थितियों में एक समान'। जबकि यूनिफार्म (एक समान) का अर्थ है 'समान परिस्थितियों में समान'। मतलब अलग-अलग लोगों के लिए अलग-अलग कानून हो सकते है। परंतु किसी विशेष समूह के भीतर कानून एक समान होना चाहिए। कॉमन सिविल कोड का मतलब यह है कि यह बिना किसी वर्गीकरण किये संपूर्ण भारत क्षेत्र के समस्त नागरिकों पर कानून लागू होगा, जैसे सामान्यतया क्रिमिनल लॉ होते हैं, जिन्हें हम 'लॉ-इन-रेम' कहते हैं। 'यूसीसी' जहाँ विभिन्न वर्गों को वर्गीकृत करके भी विभिन्न वर्गों के लिए अलग-अलग परन्तु समस्त देश के लिए एक कानून बनाए जा सकते हैं, जो सिविल या पर्सनल लॉ कहलाये जाते हैं। ये प्रभाव में 'लॉ-इन-परसोनम' होते है। जैसे अनुबंध कानून, संपत्ति हस्तांतरण अधिनियम, भागीदारी अधिनियम आदि सिविल कानून है, जो यूसीसी का एक ही भाग है। भारतीय जनता पार्टी की मूल विचारधारा (जनसंघ से लेकर) एक राष्ट्र एक संविधान, एक नागरिकता, एक प्रधानमंत्री, एक झंडा, एक राष्ट्रीय शिक्षा नीति, एक टैक्स (कर), एक राशन की दिशा कि और चलने का यह एक महत्त्वपूर्ण कदमताल है, जिसे भाजपा हर चुनावी घोषणा पत्र में शामिल करती चली आ रही है। 'कर ले सो काज भज ले सो राम' की तर्ज पर निपटाना चाह रही है।

अब यह संहिता (कोड) 'व्यापकता' से हटकर 'सीमित' होकर यूसीसी के रूप में लाई जा रही है। जो एक राष्ट्र–एक नागरिकता के समान, समस्त नागरिकों पर समान रूप से लागू नहीं होने जा रही है, ऐसा प्रतीत होता है। यहाँ इस बात को भी ध्यान में रखने की आवश्यकता है कि हमारा देश कश्मीर से लेकर कन्याकुमारी तक विविधता में एकता व एकता में अनेकता लिये हुए बहुधार्मिक आस्थाओं मान्यताओं का देश है, जहाँ यूसीसी से देश की इस पहचान व स्वरूप पर कहीं कोई आँच नष्ट होने की सीमा तक, तो नहीं पहुँचेगी? अत: अंतत: सरकार या विधि आयोग यूसीसी के अंतर्गत 'क्या' करने जा रहा है, उसे स्पष्ट किया जाना अत्यंत आवश्यक हो गया है क्योंकि 'कुलिया में गुड़ नहीं फोड़ा जा सकता'।

आखिर 'यूसीसी है क्या?' :- प्रथम प्रश्न तो यही है, क्या यूसीसी कोई 'कानून अथवा संहिता है'' जिस पर भारतीय विधि आयोग ने 14 जून को एक सार्वजनिक पत्र (पब्लिक नोटिस) जारी कर 'समान नागरिक संहिता' पर मान्यता प्राप्त धार्मिक संगठनों सहित आम नागरिकों से सुझाव माँगे हैं? उत्तर 'नहीं'। हाँ! अवश्य इस बात का उल्लेख संविधान के 'भाग 4 के अनुच्छेद 44' में मिलता है, जिसके अनुसार 'राज्य संपूर्ण भारत में नागरिकों के लिए समान नागरिक संहिता को सुनिश्चित करने का प्रयास करेगा'। चूँकि यह तथ्य संविधान में 'नीति निदेशक' सिद्धांत के रूप में शामिल है, मूल अधिकार के रूप में नहीं (जो संविधान सभा में तत्समय एक वोट से चूक गया), अत: 'बंधनकारी नहीं है'।

समान नागरिक संहिता का अर्थ है देश के सभी वर्गों के साथ धर्म, पंथ, लिंग पर आधारित व्यक्ति राष्ट्रीय नागरिक संहिता के अनुसार समान व्यवहार किया जायेगा और यह सभी पर समान रूप से लागू होगा।

तब फिर 'यूसीसी अभी तक संविधान द्वारा समर्थित एक विचार मात्र है, कानून नहीं'। इस विचार में देश के समस्त पंथों, धर्मों को मानने वाले नागरिकों पर विवाह, तलाक, भरण पोषण, संपत्ति, उत्तराधिकार, दत्तक ग्रहण (एडॉप्शन), गार्जियनशिप (अभिभावकता) विषयों पर एक ही कानून लागू होगा। इसे कानूनी अमला पहनाए जाने के लिए ही अभी जो मशक्कत की जा रही है, उसका ही यह परिणाम है, भारतीय विधि आयोग की 'दूसरी बार इस संबंध में पहल' व प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी का भोपाल में सार्वजनिक रूप से मंच से प्रश्न एक परिवार दो कानून से क्या घर चल पाएगा? कर समान नागरिक संहिता को लागू करने स्पष्ट रूप से संकेत देना है। आगामी 17 जुलाई से प्रारंभ होने जा रहे मानसून संसद सत्र में शायद समान नागरिक संहिता बिल प्रस्तुत किए जाने की संभावना आशा/आशंका है। जनता से सुझाव माँगने के पूर्व प्रस्तावित कानून का प्रारूप (मसौदा) जरूरी!

विधि आयोग द्वारा जो कानून प्रस्तावित किया जाएगा, जब तक उसका प्रारूप सार्वजनिक नहीं किया जायेगा, तब तक आम नागरिक ही नहीं विशेषज्ञ भी यूसीसी पर अपने विचार सुझाव 'किस सीमा' तक 'कैसे' दे सकते हैं? पता तो चले कि 'ऊँट किस करवट बैठेगा'। क्योंकि यह विषय इतना विहंगम व विस्तृत है कि इस पर एक मोटी किताब लिखी जा सकती है। जब तक आयोग यह नहीं बतलायेगा कि प्रस्तावित कानून द्वारा किन पंथो, धर्मों और वर्गों के संबंध में किन विषयों विवाह, तलाक, संपत्ति इत्यादि के संबंध में यह सब प्रावधान लाये जा रहे हैं, तब तक किसी व्यक्ति के लिए यह कैसे संभव है कि वह कैसे सुझाव दे तो किस बात के लिए। जबकि न्यायमूर्ति चौहान की अध्यक्षता में 21वाँ विधि आयोग ने (वर्ष 2018) में अपनी रिपोर्ट में यह स्पष्ट मत दिया था कि तत्समय यूसीसी की न तो जरूरत है और न ही वांछनीय है। रिपोर्ट में चार वर्ष से अधिक समय व्यतीत हो जाने के कारण विषय की महत्ता प्रासंगिकता तथा अदालती आदेशों के कारण उत्पन्न 22वें विधि आयोग जिसका कार्यकाल 20 अगस्त 2024 तक बढ़ा दिया है, न्यायमूर्ति अवस्थी की अध्यक्षता में अब नये सिरे से पुन: सुझाव माँगे गए हैं।

ऑल इंडिया मुस्लिम पर्सनल लॉ बोर्ड ने हाल में ही यह कहा है कि जब आदिवासियों को यूसीसी के अंतर्गत नहीं लाया जा रहा है, तब फिर मुस्लिमों को क्यों? जबकि विधि आयोग ने ऐसे विचार कभी व्यक्त नहीं किए। यद्यपि अनुच्छेद 371 के कारण सुशील मोदी ने 13 करोड़ आदिवासियों को बाहर रखने की बात जरूर कही है। इस प्रकार इस तरह से बनाये जा रहे 'परसेप्शन' को दूर रखने के लिए व नियत मुद्दों पर राय माँगने पर ही प्रयास सार्थक सिद्ध होगा। विधि आयोग ने जब यूसीसी पर सुझाव माँगे थे, तब 16 प्रश्न के द्वारा हा/न (पाँच को छोड़कर) मत माँगे गये थे। इससे कुछ तो यह ज्ञात हो रहा था कि विधि आयोग किस दिशा की ओर जायेगा। जनता से

यूसीसी पर सुझाव माँगे गये हैं। परन्तु उसका मसौदा नहीं दिया गया है। चूँकि गुणवत्ता के आधार पर यूसीसी को देखने, पढ़ने का अवसर ही उत्पन्न नहीं किया गया है, तब इसमें सुझाव किस बात का? अब जनता खुद अपने दिमाग, मन में एक प्रस्तावित कानून का प्रारूप बना ले और फिर तदनुसार उनके सुझाव के रूप में दे। यह तो वही बात हुई कि 'कबीरा आप ठगाइये, और न ठगिये कोय'। आयोग शायद जनता की यूसीसी बनाने में वास्तविक भागीदारी नहीं चाह रही है?

अत: सरकार तुरंत पहले प्रारूप तैयार कर जारी करे और तब उस प्रारूप पर सुझाव लिये जाते तो इससे सरकार को सबसे बड़ा फायदा यह होता कि इसके आधार पर जब बिल संसद में कानून बनाने के लिए पेश किया जायेगा तो विरोध पक्ष को बोठल करने में सरकार ज्यादा सक्षम होगी। तब उसके पास बिल की प्रत्येक धारा के संबंध में जनता के समर्थन के आँकड़े होंगे। तभी जनता को भी यह ज्ञात होगा कि सरकार जो कानून बनाने जा रही है, उसमें कौन से हित छोड़ दिये हैं और कौन से हित जोड़ना आवश्यक है और कौन से हित गलत जोड़ दिये हैं, उसे हटाना आवश्यक है। यह भी ध्यान में रखना जरूरी है कि 'कानून ऐसे हैं जिन पर सुचारू रूप से अमल किया जा सके।'

अंत में हाँ जब भी यूसीसी की बात उठती है, तब देश में बहुसंख्यकों व अल्पसंख्यकों खासकर मुसलमानों के बीच एक दरार की लकीर खींचने का प्रयास किया जाता है, जो वास्तविकता में सही नहीं है। यह तथ्यों से आँख मूँदने वाली बात है। इसका विस्तृत अध्ययन हम अगले लेख में करेंगे।

हाँ विधि आयोग द्वारा पूर्व में इस तरह के दो प्रयास किए जा चुके हैं। विधि आयोग या सरकार ने यह तो तय कर लिया है कि राष्ट्रीय खेल हॉकी जहाँ कोई विकल्प नहीं है, इसलिए वह 'सीसीसी' है, की जगह अंग्रेजी खेल क्रिकेट खेलना है, जहाँ कई विकल्प है, यह वह 'यूसीसी' है। परंतु वह अभी तक यह तय ही नहीं कर पाई है कि क्रिकेट का कौन सा प्रारूप खेलना है? टेस्ट मैच, वनडे टी20 या फिर कोई नया प्रारूप टी10 तब यह कहना क्या उचित नहीं होगा 'अभी तो सूत न कपास, जुलाहों में लठ्ठम लठ्ठा है!'

मो.- 9425002638

रचनाकारों से अनुरोध

- ***मौलिक तथा अप्रकाशित-अप्रसारित रचनाएँ ही भेजें।***
- ***रचना फुल स्केप कागज पर साफ लिखी हुई अथवा शुद्ध टंकित मूल प्रति में भेजें।***
- ***रचनाकार/लेखक अपना पूरा परिचय, पता, पिनकोड, फोन नंबर एवं फोटो साथ भेजें।***
- ***डाक टिकट लगा लिफाफा साथ होने पर ही अस्वीकृत रचना वापस भेजी जा सकती है। अत: लेखकों से निवेदन है कि लेख की एक प्रति अपने पास अवश्य रखें।***
- ***'अक्षरा' में प्रकाशन हेतु रचना भेजने के बाद उसे अन्यत्र प्रकाशन हेतु न भेजें। यदि अन्यत्र प्रकाशित हो रही हो तो कार्यालय को अवश्य सूचित करें।***
- ***आप अपनी रचनाएँ* myakshara18@gmail.com *पर ई-मेल द्वारा भी भेज सकते हैं।***

समान नागरिक संहिता : विद्वानों के विचार

- मनीषचन्द्र शुक्ल

जन्म - 20 मई 1983।
जन्मस्थान - मुंबई।
शिक्षा - एम.ए., पीएच.डी.।
रचनाएँ - पत्र-पत्रिकाओं में रचनाएँ प्रकाशित।

'अक्षरा' का यह अंक 'समान नागरिक संहिता' एवं रामदरश मिश्र शताब्दी अंक पर विशेषांक प्रकाशित हो रहा है। 'समान नागरिक संहिता' पर संपादक, साहित्यकार, शिक्षाविद, धर्माचार्य, वकील, सामाजिक कार्यकर्ता आदि विद्वानों के अभिमत अविकल रूप से यहाँ प्रस्तुत हैं . . .

जगद्गुरु शंकराचार्य स्वामी वासुदेवानंद सरस्वती महाराज :- देश में समान नागरिक संहिता लागू होनी चाहिए। मानवीय संविधान मनुस्मृति महाराजा मनु का बनाया हुआ और वर्तमान भारतीय संविधान का समन्वय करते हुए आचार संहिता बननी चाहिए। मेरा यही मत है कि चाहे हिंदू, मुसलमान, ईसाई, बौद्ध, सिक्ख, यहूदी या पारसी हों सबके लिए एक कानून, एक समान अधिकार और विचार होना चाहिए। यही समान नागरिक संहिता का स्वरूप होना चाहिए।

- अनंत श्री विभूषित कैवलज्ञान पीठाधीश्वर जगद्गुरु श्री अविचलदेवाचार्य जी महाराज :- (राष्ट्रीय अध्यक्ष- अखिल भारतीय संत समिति) विश्व में जितने राष्ट्र पंथनिरपेक्ष हैं, उन सभी देशों में समान नागरिक संहिता है। भारत भी पंथनिरपेक्ष (सेक्युलर) देश है। इसलिए भारत में सभी पंथ, संप्रदाय के लिए समान नागरिक संहिता (Uniform Civil Code) होनी चाहिए। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 44 में स्पष्ट रूप से दर्शाया गया है कि राज्य भारत के पूरे क्षेत्र में एक समान नागरिक संहिता को सुनिश्चित करने का प्रयास करे। समान नागरिक संहिता से पूरे देश में सभी धार्मिक समुदायों के लिए विवाह, तलाक, विरासत, गोद लेने आदि कानूनों में एकरूपता होगी।

भारतीय संसद द्वारा 1956 में 'हिन्दू पर्सनल लॉ' जवाहरलाल नेहरू की सरकार द्वारा लाया गया जो कांग्रेस के राजनैतिक लाभ के लिए विशेष समुदाय की तुष्टिकरण नीति का नतीजा था। जो सिक्खों, जैनियों ओर बौद्धों पर लागू किया गया। मुस्लिम व्यक्तिगत कानून (**Personal law**) विशेषकर महिलाओं के साथ भेदभाव करता है। महिलाओं का हर तरह से शोषण एवं उत्पीड़न करने को पुरुषों को एकतरफा आजादी देता है। जो मानवता के वितरीत है। देश में समान नागरिक संहिता से धर्म आधारित भेदभाव समाप्त होगा, जिससे आए दिन सांप्रदायिक दंगे होते हैं, वह रुकेंगे। सभी धार्मिक समुदाय में समरसता आयेगी। सर्वोच्च न्यालय ने भी 1995 में और वर्ष 2019 में सरकार को समान नागरिक संहिता लागू करने का निर्देश दिया है।

अंग्रेजों द्वारा-'आपस में फूट डालो और राज करो' नीति को लेकर हिन्दू-मुस्लिम समुदाय आपस में लड़ते रहे, इसी उद्देश्य से शरियत के आधार पर मुस्लिम व्यक्तिगत कानून का प्रबंधन किया गया था। देश स्वतंत्र होने के बाद केवल वोट की राजनीति को ध्यान में रखकर पूर्व सरकारों ने यह चालू रखकर बड़ा अन्याय किया है। देश के प्रत्येक नागरिक के लिए एक समान कानून होना चाहिए, चाहे वह किसी भी धर्म का या जाति का क्यों न हो। अखिल भारतीय संत समिति समान नागरिक संहिता का दृढ़तापूर्वक समर्थन करती है। और सरकार से आग्रह करती है कि जल्द से जल्द भारत में समान नागरिक संहिता लागू करनी चाहिए। भारत पंथनिरपेक्ष देश है तो जाति, मजहब और पंथ से परे रहकर संविधान होना चाहिए। व्यक्तिगत कानून से वर्ग विशेष को, महिलाओं के साथ महिलाओं के अधिकारों का उल्लंघन ही नहीं

अपितु पुरुषों द्वारा उन पर अत्याचार की खुली छूट दी गई है। अंत: राष्ट्र हिताय और जन हिताय और विशेष करके महिलाओं के प्रति संवेदनशीलता दिखाते हुए सभी भारतवासियों को समान नागरिक संहिता का समर्थन करना चाहिए।

- स्वामी जितेन्द्रानंद सरस्वती महाराज :- (महामंत्री-अखिल

भारतीय संत समिति) देश संविधान से चलेगा। यह शरिया अथवा धर्मग्रंथों के आधार पर नहीं चलेगा। सर्वधर्म समभाव और सभी धर्मों का सम्मान यह एक प्रश्न है। दूसरा बड़ा प्रश्न है कि देश में संवैधानिक व्यवस्था लागू होगी कि नहीं होगी? एक समाज को चार-चार शादी करने की छूट देकर और बाकी हिन्दू, ईसाई, बौद्ध, जैन, पारसी इन सभी को संवैधानिक दायरे में बाँध करके हम किस प्रकार के लोकतांत्रिक समाज की स्थापना चाहते हैं? इस देश में बढ़ती जनसंख्या, अनियंत्रित जनसंख्या, उपभोग और उत्पादन के बीच तालमेल बिठाने में हम असफल रहे हैं। क्या देश में संविधान की सर्वोच्चता है? संविधान के मूल अधिकारों में समानता का अधिकार और धर्म स्वतंत्रता का अधिकार है तो यह धर्म स्वतंत्रता का अधिकार वर्ग विशेष या संप्रदाय विशेष के लिए है अथवा सभी संप्रदायों के लिए? एक जन और एक राष्ट्र, राष्ट्रीय एकता और अखंडता की पहली शर्त है। इस देश के लिए संविधान के ढाँचे में एक व्यक्ति, एक कानून आज का युगधर्म है। इसलिए समान नागरिक संहिता राष्ट्रीय एकता और अखंडता के परिप्रेक्ष्य में अत्यावश्यक कदम है। हमें आश्चर्य है कि सरकार ने अब तक ये कदम उठाया क्यों नहीं? मैं इस दृष्टि से कभी नहीं देखता कि भारतीय जनता पार्टी की घोषणा पत्र में था या समय-समय पर माँग उठती रही है। हमारे विचार करने का आधार है कि हम इस देश के नागरिक हैं तो संविधान में प्रदत्त हमारे अधिकार कहाँ सुरक्षित हैं? किसी के बहुसंख्यक अथवा अल्पसंख्यक होने के आधार पर अगर संवैधानिक अधिकार निर्धारित किये जायेंगे तो मैं समझता हूँ कि यह असमानता का अधिकार होगा न कि समानता का अधिकार। इसलिए भारत सरकार को तत्काल निर्णय लेना चाहिए और 2024 के लोकसभा के चुनाव में जाने से पूर्व समान नागरिक संहिता जो इस देश की आवश्यकता है जिसे सत्ता, सरकार और राजनीतिक दलों को लागू करना चाहिए। मेरा मानना यह भी है कि किसी भी धार्मिक समूह बहुसंख्यक हो या अल्पसंख्यक उसके सामने झुके बगैर, देश को संवैधानिक व्यवस्था में चलाने का पूरा प्रबंध करना चाहिए। 'ऑल इंडिया मुस्लिम पर्सनल लॉ बोर्ड' यह वाक्य कहता है कि हमारे हदीस में, कुरान में यह लिखा है। हम तो यही फॉलो करेंगे, तो हम धर्माचार्य भी यह कहने के लिए मजबूर होंगे कि हमारे स्मृतियों में, हमारे ग्रंथों में यह लिखा है। इसलिए हम भी यही फॉलो करने के लिए मजबूर होंगे। इससे संविधान की अवमानना होती है। अत: न अल्पसंख्यक की न बहुसंख्यक की, सर्वोच्चता संविधान की रहे तो ज्यादा श्रेयस्कर होगा।

-हृदयनारायण दीक्षित :- (पूर्व विधानसभा अध्यक्ष, उत्तर

प्रदेश) संविधान निर्माताओं ने प्रत्येक नागरिक के लिए एक समान सिविल संहिता प्राप्त करने का कर्तव्य अनुच्छेद 44 राष्ट्र राज्य को सौंपा है। समान राष्ट्र-राज्य का यह कर्तव्य संविधान के नीति निदेशक तत्वों में है। नीति निदेशक तत्व न्यायालयों द्वारा प्रवर्तनीय नहीं हैं। इन निदेशों के लिए अनुच्छेद 37 में कहा गया है कि-'वे देश के शासन में मूलभूत हैं और विधि निर्माण में इन तत्वों को लागू करना राज्य का कर्तव्य होगा।' यह कर्तव्य महत्त्वपूर्ण है। विधि आयोग ने हाल ही में समान नागरिक संहिता के संबंध में देश के सामाजिक और धार्मिक संगठनों से सुझाव माँगे हैं। विधि आयोग का यह कार्य प्रशंसनीय है। लेकिन कांग्रेस ने इसका विरोध किया है। कांग्रेस महासचिव जयराम रमेश ने इसे नरेन्द्र मोदी सरकार का ध्रुवीकरण एजेंडा बताया है। तुष्टिकरण कांग्रेस की अपनी नीति है। ध्रुवीकरण का आरोप इसी का विस्तार है। कांग्रेस दीर्घकाल तक सत्तारूढ़ रही है। उसे बताना चाहिए कि उसने समान सिविल संहिता लागू करने के संवैधानिक कर्तव्य पालन की दिशा में क्या कदम उठाए? सांप्रदायिक निजी कानून महिला अधिकारों और सशक्तिकरण में बाधा है। राष्ट्रवादी आंदोलन का मौलिक विचार जाति, पंथ, लिंग, मजहब भेद का विरोधी था।

संविधान सभा (23 नवंबर 1948) में समान नागरिक संहिता पर तीखी बहस हुई थी। मोहम्मद इस्माइल ने कहा कि 'समन्वय के लिए अपेक्षित नहीं है कि लोगों को उनके निजी कानून छोड़ने के लिए बाध्य किया जाए।' नजीरुद्दीन अहमद ने कहा कि- 'प्रत्येक धार्मिक समुदाय के विशेष धार्मिक कानून व विशेष व्यवहार विषयक कानून भी होते हैं। एक विधि बनाते समय इन धार्मिक कानूनों की उपेक्षा नहीं की जानी चाहिए।' महमूद

अली बेग ने कहा कि–'हिन्दुओं में विवाह एक संस्कार होता है। यूरोप में यह स्थिति भिन्न है। मुसलमानों में कुरान के अनुसार संविदा जरूरी है। मुसलमान 1350 वर्षों से इस कानून पर चलते रहे हैं। विवाह की अन्य प्रणाली को हम मानने से इंकार कर देंगे। के. एम. मुंशी ने कहा कि–'किसी भी उन्नत मुस्लिम देश में अल्पसंख्यक जाति के निजी कानूनों को इतना अटल नहीं माना जाता कि समान नागरिक संहिता बनाने का निषेध हो। तुर्की अथवा मिस्र में किसी अल्पसंख्यक को ऐसे अधिकार नहीं दिए गए।' मुंशी ने मुसलमानों से कहा कि 'मुस्लिम मित्र समझ लें कि जितना जल्दी हम अलगाववाद की भावना को भूल जायेंगे, उतना ही देश के लिए अच्छा होगा।' डॉ. अंबेडकर ने कहा कि 'यहाँ दण्ड विधान में एक विधि है। संपत्ति हस्तांतरण कानून भी पूरे देश में लागू है। यह कहने का कोई लाभ नहीं कि मुस्लिम कानून अटल है। 1935 तक पश्चिमोत्तर सीमा प्रांत में शरीयत कानून नहीं था। उत्तराधिकार आदि विषयों में हिन्दू कानूनों का अनुसरण होता था। 1937 तक पश्चिमोत्तर सीमा प्रांत के अतिरिक्त शेष भारत में भी जैसे संयुक्त प्रांत (उत्तर प्रदेश), मध्य प्रांत और बम्बई में उत्तराधिकार सम्बंधी हिन्दू कानून मुसलमानों पर लागू था।'

विविधता में एकता राष्ट्र की प्रकृति है। गोवा में ईसाई पंथ मानने वालों की संख्या काफी है। लेकिन यहाँ समान नागरिक संहिता लागू है। संयुक्त राज्य अमरीका में विश्व के तमाम पंथिक समूहों के नागरिक रहते हैं। यूरोप में भी। अमरीका में समान नागरिक संहिता लागू है। किसी भी सांप्रदायिक समूह को इससे आपत्ति नहीं है। कांग्रेस अल्पसंख्यकवाद के नाम पर मुसलमानों में भय पैदा करती है। तुष्टिकरण करती है। क्या यह पक्षपात नहीं है कि एक समुदाय के निजी कानूनों को संहिताबद्ध कर दिया गया है लेकिन अन्य समुदायों को निजी कानूनों पर चलने की छूट है। राष्ट्र निजी कानूनों के आग्रही सांप्रदायिक समूहों का गठजोड़ नहीं होते। राष्ट्र सभी नागरिकों में जय–पराजय की समान अनुभूति और समान नागरिक कानूनों से शक्तिशाली बनते हैं।

– **जवाहरलाल कौल :–** (वरिष्ठ पत्रकार) अपना संविधान

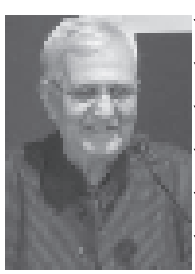

बनाते समय ही हमने यह निश्चित किया था कि भारत एक लोकतांत्रिक राज्य होगा, जिसमें सभी नागरिकों के अधिकार समान रहेंगे। लेकिन उसको एक संवैधानिक व्यवस्था में परिवर्तित करना आसान नहीं था। भारत एक प्राचीन राष्ट्र है, जिसका निर्माण हजारों वर्षों के सांस्कृतिक विकास के साथ–साथ आकार लेता रहा है। 15अगस्त1947 को स्वतंत्र देश में आँखें खोलते ही हमने अपने नागरिकों के सर्वांगीण और मौलिक अधिकारों की एक समकालीन संहिता बनाने के निमित्त अपनी प्राचीन संस्कृति और विकसित और विकासमान देशों के संविधानों से हमें जो उपयोगी बिंदु मिले, उनके आधार पर स्वतंत्र भारत के संविधान को आकार दिया। लेकिन स्वतंत्रता पाने के समय हमारे देश में अनेक वर्गों के नागरिक रहते थे, जिनमें से अभी अनेक वर्ग वनवासी ही थे, जिन्हें हम जनजातीय कहते थे, सामाजिक भेदभाव का शिकार जातियाँ थीं, लंबे कालखंड में विकसित अलग–अलग पंथों के लोग थे और विदेशों से बसने आए दूसरे धर्मों के लोग भी थे। इन सब ने पिछली शताब्दियों में अपने सामाजिक नियम कायदे अपना लिये थे। यह संभव नहीं था कि स्वतंत्रता के पश्चात् कुछ वर्षों में ही इन सब के बीच प्रचलित सामाजिक, धार्मिक मान्यताओं और आर्थिक नियमों में पूर्ण सहमति प्राप्त की जा सकती। इसलिए नागरिक संहिता तो हमने बना ली लेकिन उन बीसियों विसंगतियों में सहमति नहीं ला सके। ऐसा नहीं है कि हमने समान नागरिक संहिता बनाने के बारे में कोई कदम नहीं उठाया है। शाहबानो का मामला हो या तीन तलाक का, पर्दा प्रथा हो या बाल विवाह की समस्याएँ सभी समान नागरिकता के प्रति जाने वाले कदम ही तो थे। स्वाभाविक है कि यदि हमने तय किया है कि हमें अब नागरिकों को समान कानून के ही दायरे में लाना चाहिए तो जन संवाद को जारी रखते हुए एक–एक कदम उठाते हुए लक्ष्य तक पहुँचा जा सकता है। संवाद और सहमति ही एकमात्र मार्ग है।

–**इंदुशेखर तत्पुरुष :–** (पूर्व अध्यक्ष–राजस्थान साहित्य

अकादमी, संपादक– साहित्य परिक्रमा) वस्तुत: यह नेशनल बनाम पर्सनल का मुद्दा है। शरीयत का कानून भारत के 'एक राष्ट्र–एक जन' के सिद्धांत की खुली अवमानना है। प्रश्न है कि देश में निर्णय नेशनल लॉ से होगा कि पर्सनल लॉ से? सांप्रदायिक दुराग्रह एवं मजहबी तुष्टीकरण के आगे राष्ट्रीय एकात्मता की अवहेलना करना निश्चय ही हमारी दुर्बलता को दर्शाता है। डॉ.अंबेडकर ने क्षुब्ध होकर टिप्पणी की थी कि 'मैं व्यक्तिगत रूप से समझ नहीं पा रहा हूँ कि किसी धर्म (मजहब) को यह

विशाल, व्यापक क्षेत्राधिकार क्यों दिया जाना चाहिए। ऐसे में तो धर्म जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में हस्तक्षेप करेगा यह स्वतंत्रता हमें इसलिए मिली है कि हम इस सामाजिक व्यवस्था में जहाँ हमारे मौलिक अधिकारों के साथ विरोध है, वहाँ-वहाँ सुधार कर सकें।'

जो यह कहते हैं कि भारत विविध मत, पंथ, जाति परम्पराओं वाला देश है, अत: यहाँ समान नागरिक संहिता लागू नहीं की जा सकती, उन्हें पता होना चाहिए कि विश्व के अनेक राष्ट्रों, जैसे अमेरिका, रूस, आयरलैंड, फ्रांस, जापान, इजराइल, तुर्कि, सऊदी अरब, मिस्त्र, नाइजीरिया, पाकिस्तान, बांग्लादेश, सूडान आदि में 'समान नागरिक संहिता' लागू है। प्रश्न है कि देश संविधान से चलेगा या शरिया से? हमें दोनों में से एक बात चुननी होगी। या तो हम सेक्यूलर स्टेट बने रहें या धार्मिक राज्यतन्त्र को स्वीकार कर लें। अत: हमें दो में से एक चीज चुननी होगी। या तो हम स्वयं को सेक्युलर कहना बंद करें अथवा समान नागरिक संहिता लागू करें। दोनों एक साथ नहीं चल सकते। यदि हम सेक्युलर रहना चाहते हैं तो 'समान नागरिक संहिता' अनिवार्य है। यदि भारत में धर्मराज्य की स्थापना करनी है तो धार्मिक ग्रन्थों के आधार पर कानून बनाएँ। अत: हमें सेक्युलर स्टेट की मान्यता का सम्मान करते हुए तत्काल 'समान नागरिक संहिता' लागू कर देना चाहिए। इसके लिए शासन की दृढ़ इच्छाशक्ति चाहिए। प्रश्न है कि शासन को यह शक्ति कौन देगा? यह शक्ति पुलिस, सेना या प्रशासन से नहीं मिलेगी। यह मिलेगी प्रचण्ड और सर्वव्यापी जनमत से। जनता के अप्रतिहत दबाव से। अत: सर्व समाज में यह जनमत निर्माण करना देश की प्राथमिक आवश्यकता है। तदनन्तर इसे लागू करने के लिए सरकार को दृढ़ता और साहसपूर्वक कदम उठाना होगा। अन्यथा देश की विघटनकारी शक्तियाँ इस में रोड़े अटकायेंगी।

न्याय की दृष्टि से कुछ मुद्दों को अलग-अलग बाँटना पड़ेगा। जैसे सभी मत-पंथ-मजहब के लोगों की पूजा-उपासना को उनकी धार्मिक-मजहबी पुस्तकों के अनुसार तथा विवाह, उत्तराधिकार, तलाक आदि व्यवहारों को भारतीय विधि संहिता के अनुसार संपादित करना होगा। जो राज्य इसे लागू करने में आनाकानी करता हो, उसके वित्तीय संसाधनों पर नियंत्रण करना होगा।

-गिरीश्वर मिश्र :- (पूर्व कुलपति, महात्मा गाँधी अंतरराष्ट्रीय

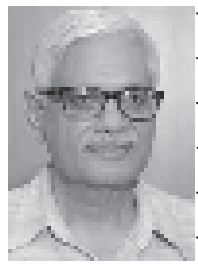

हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा) भारतवासी नागरिकों के लिए एकल या समान नागरिक संहिता का प्रावधान सामाजिक, आर्थिक और मानवीय भेदभाव को समाप्त करने के लिए एक अनिवार्य कदम है। संविधान में निहित समता और समानता की आकांक्षाओं को वास्तविकता में उतारने के लिए सभी नागरिकों को नागरिक के रूप में एक तरह का बर्ताव करना ज़रूरी है। ऐसा न करना विश्व-पटल पर देश के लिए हास्यास्पद स्थिति पैदा करता है। यदि हम प्रगति करना चाहते हैं और समतामूलक समाज चाहते हैं तो इसे अपनाना होगा। इसका विरोध निहित स्वार्थ साधने के लिए किया जाता है। वैसे भी नागरिक के रूप प्राप्त अधिकार के ऊपर अपनी मर्ज़ी से आचरण की अतिरिक्त छूट लेना जनहित में नहीं है।

इस तथ्य के आए दिन अधिकाधिक प्रमाण मिल रहे हैं कि समान नागरिक संहिता के अभाव में मिलने वाली स्वच्छंदता के बहाने अन्य व्यक्तियों/समुदायों की स्वतंत्रता के हनन को अंजाम दे रहे हैं। तलाक़, विवाह, उत्तराधिकार, तथा धन-सम्पदा आदि के मामलों को लेकर बहुतेरे प्रचलित विधान पंथ (रेलीजन) या समुदायविशेष से जुड़ी रूढ़िवादी भिन्नता को दर्शाते हैं। उन सबमें मनुष्य होने का अर्थ और प्रयोजन भिन्न-भिन्न प्रकारों से विहित माना जाता है। इस तरह की भिन्नता के कारण भौतिक लाभ का बँटवारा अलग-अलग पैमानों पर होता है। धर्म-पालन की आड़ में इसे जायज़ ठहराना और निजी मामले में दख़लंदाज़ी कह कर समान नागरिक संहिता का विरोध मानवीय रिश्तों को स्वार्थ की बेदी पर भेंट करने लिए प्रायोजित करने जैसी बात है।

इतिहास के जिन अंधकाराच्छन्न युगों या काल-खंडों में वे कभी अंगीकृत किए गए थे उनमें से कई परिस्थिति विशेष में अपनाए गए थे और अब असंदिग्ध रूप से न केवल अनुपादेय हैं बल्कि घोर शोषण और अनावश्यक भेद-भाव को भी जन्म दे रहे हैं। वे विचार करने पर न विवेकसम्मत लगते हैं न बुद्धि-विज्ञान के ही अनुकूल। उनमें कई तो मनुष्यता और जीवन के आधारभूत मूल्यों के भी विरुद्ध हैं। पंथनिरपेक्षता (सेक्युलरिज़्म), वैज्ञानिकता, राष्ट्रीय एकता, तथा सामाजिक समता के लिए समान नागरिक संहिता स्वाभाविक आवश्यकता है। विश्व के उन्नत

देशों ने इसे सफलतापूर्वक अपनाया है। इस्लामी देश भी शरिया पर आधृत समान नागरिक संहिता अपनाए हुए हैं। विधान के अनुच्छेद–44 स्पष्ट रूप से राज्य द्वारा इसके लिए चेष्टा करने की बात करता है जिसे उच्चतम न्यायालय ने अनेकश: उल्लेख किया है और इसके लिए सरकारी हीला–हवाली की प्रवृत्ति की आलोचना की है। भारत के सभी नागरिक इसके हक़दार हैं और प्रभुसत्ता सम्पन्न भारतीय गणतंत्र की यह ज़रूरत है।

–प्रोफेसर हरवंश दीक्षित :– (पूर्व सदस्य, उच्चतर शिक्षा सेवा आयोग) प्रयागराज संविधान का अनुच्छेद 44 सबसे अधिक दुष्प्रचारित हिस्सों में से एक है। इस उपबन्ध के साथ बहुत अन्याय हुआ है। इसमें देश के सभी नागरिकों के लिए एक जैसा कानून बनाने की बात कही गयी है। सरकार से अपेक्षा की गयी है कि वह पंथ, क्षेत्र, भाषा की दूसरे इस तरह का बँटवारा करने वाले आधारो की परवाह किए बगैर सभी के लिए एक जैसा कानून बनाए। ऐसी व्यवस्था बनाए जो मानवीय गरिमा का सम्मान करता हो, उसे सुरक्षा बोध दे और सभ्य समाज के मानकों पर खरा उतरे।

दुर्भाग्यवश अनुच्छेद 44 की इस पवित्र मंशा आगे बढ़ाने के बजाय को हमने आपकी फितरत के मुताबिक एक हौव्वा खड़ा कर दिया। उस पर तार्किक बहस करने के बजाय उसे साम्प्रदायिक रूप देकर अछूत बना दिया। सुप्रीम कोर्ट का आग्रह बेकार गया। अदालत के निर्देशों की हेठी की गयी। यह दस्तूर आज भी कायम है। इस मामले में तो हम लोकशाही की महान परम्पराओं से भी मुँह चुराने लगते हैं। इस विषय पर स्वस्थ बहस करने के बजाय इसके प्रस्तावकों की लानत सलामत करने लगते हैं और उसे तब तक जारी रखते हैं जब तक कि सामने वाला थक हार कर बैठ न जाए।

संविधान निर्माताओं ने महसूस किया कि विवाह और भरण–पोषण से जुड़े मामलों का सम्बन्ध किसी पूजा–पद्धति से नहीं है बल्कि इसका संबंध इंसानियत से है। निस्संतान व्यक्ति यदि किसी बच्चे को गोद लेकर अपनी वंश परंपरा को आगे बढ़ाना चाहता है या उससे उसको सुरक्षाबोध का अहसास होता है। तो उससे किसी पूजा पद्धति की अवमानना कैसे हो सकती है? यदि किसी कानून से किसी महिला को सामाजिक सुरक्षा मिलती है या पति से अलग होने या पति के नाराज होने के बाद उसे दर–बदर भटकने के बजाय यदि गुजारे भत्ते की व्यवस्था की जाती है तो इसमें उसका धर्म कहाँ से आड़े आता है। महिला पुरुष के वैवाहिक सम्बन्धों में यदि समानता सुनिश्चित की जाती है तो इससे किसी भी सभ्य समाज के लिए शर्मिन्दगी नहीं अपितु गर्व होना चाहिए।

आधुनिक सोच का लाभ केवल हिन्दुओं तक ही सीमित न रहे और वह दूसरे मतावलम्बियों को भी हासिल हो, इसके लिए अदालतें लगातार कोशिश करती रही हैं। मोहम्मद अहमद खान बनाम शाहबानो (1985) में सुप्रीम कोर्ट ने इस पर चिन्ता व्यक्त करते हुए कहा कि यह अत्यन्त खेद का विषय है कि संविधान के अनुच्छेद 44 में तय की राज्य की जिम्मेदारी अब निर्जीव शब्द समूहों का संग्रह मात्र बनकर रह गयी हैं। सरकारी उपेक्षा को ध्यान में रखते हुए अदालत ने कहा कि मुस्लिम समाज को इस मामले में पहल करने की जरूरत है ताकि प्रगति के दौड़ में वे दूसरों से पीछे न रहें। हैरानी की बात यह है कि शाहबानो के जिस मुदकमें में सुप्रीम कोर्ट ने लोगों से इस दिशा में आगे बढ़ने की पहल का आवाहन किया। उसके दुष्प्रचार ने समान नागरिक कानून के पहले दिशा को सबसे अधिक चोट पहुँचायी।

मारकण्डेय काटजू ने अपने बयान में समान नागरिक कानून की वकालत करके संविधान के अनुच्छेद 44 और सुप्रीम कोर्ट के निर्देशों की परम्परा को आगे बढ़ाने का काम किया है। इसके पहले अन्य विद्वानों ने भी इसकी वकालत की है। न्यायामूर्ति मुहम्मद करीम छागला ने मोतीलाल नेहरू व्याख्यान मामले में प्रोफेसर ताहिर महमूद ने अपनी पुस्तक 'मुस्लिम पर्सनल लॉ' (1977) में तथा न्यायमूर्ति एम.यू. बेग ने 'इम्पेक्ट आफ सेक्यूलरिज्म' (1973) में भी संविधान के अनुच्छेद 44 को अमली जामा पहनाने का आवाहन किया किन्तु शाहबानो प्रकरण दु:स्वप्न से अभी भी कोई उबरने को तैयार नहीं है। समाज के व्यापक हितों के मद्दे नजर समाज के पंथनिरपेक्ष हितचिन्तकों को आगे बढ़कर इस दिशा में पहल करने जरूरत है ताकि हम एक प्रगतिशील समाज के रूप में एकजुट हो सकें।

प्रोफेसर राधेश्याम सिंह :– (सलाहकार संपादक–'युगतेवर' विभागाध्यक्ष–हिन्दी, के.एन.आई.पी.एस.एस. सुल्तानपुर, उ.प्र.) भारत एक धर्मनिरपेक्ष गणतंत्र है और विविध धार्मिक विश्वासों, प्रथा, परंपराओं वाले देश को एकसूत्र में बाँधने का उपक्रम समान नागरिक संहिता लागू करके किया जा सकता है। परंतु देश

का दुर्भाग्य था कि स्वतंत्रता मिलने के पचहत्तर साल बाद तक धार्मिक समुदायों को अपने अपने परंपराओं के पालन की छूट दी गयी। किसी परंपरा को रूढ़ि बनने के लिए पचहत्तर साल कम नहीं होते। आज जब सरकार चेती है तो विसंगतियों का आना अवश्यंभावी है। इसमें सावधानी की आवश्यकता है। विभिन्न संप्रदायों के प्रतिनिधियों को विश्वास में लेकर ही इसे लागू करने का विचार करना चाहिए। कई ऐसी प्रथा परंपराएँ हैं जिसे हिन्दू-मुसलमान दोनों बड़े समुदाय अपने प्रेक्टिस में लिए हुए हैं। एक बच्चे को गोद लेने संबंधी नियम समुदायों में अलग-अलग हैं। किस समुदाय के नियम को आप सभी समुदायों पर थोपेंगे? इसलिए ऊपर से जितना यह मामला आसान है, भीतर से उतना ही विसंगतिपूर्ण है।

भारतीय समुदाय ने अपनी विविधताओं का सम्मान करते हुए एक साझी चेतना भी विकसित की है। जरूरत उस चेतना को सुदृढ़ करने की है। यदि समुदायों के बीच जाकर राष्ट्रहित को केन्द्र में रखकर संवाद किया जाये तो बात बन सकती है। कुछ नया करने में कुछ छोड़ना पड़ता ही है। इस संदेश को व्यापक रूप से प्रचारित करना होगा। भारत अलग अलग धार्मिक कानूनों को लेकर जीता रहा तो अंततः वह कमजोर ही होगा। धर्मनिरपेक्ष देश में धर्म को वैयक्तिक व्यवहार घोषित कर दिया जाना चाहिए। किसी भी धार्मिक समुदाय को अपने विश्वासों के खुले प्रदर्शन पर रोक लगनी चाहिए। देश एक है तो उसके कानून में भी एकरूपता होनी ही चाहिए। यह देश और उसके नागरिकों के हित में है। देश संविधान से चलेगा, उसके आगे किसी पंथ के किसी विश्वास का कोई मूल्य नहीं है। स्वतंत्रता के बाद यह कार्य तुरंत हो जाना चाहिए था परंतु राजनैतिक स्वार्थपरता के कारण बाधाएँ आती रहीं। आज नागरिक समाज को धार्मिक करेक्शन नहीं, पोलिटिकल करेक्शन की आवश्यकता है, पर समाधान का आधार संवाद ही होगा, यह भी तय है। हर समुदाय में प्रगतिशील इकाइयाँ रहती हैं, उन्हें सशक्त करने की जरूरत है। समान नागरिक संहिता देश हित में है, यह किसी को अपने धार्मिक प्रैक्टिस करने से नहीं रोकती। सत्ता को यह बात विश्वसनीयता से बताना होगा। यदि इस कानून को लागू करना है तो सोशल मीडिया द्वारा अनाप शनाप फैलाए गये संभ्रम को दूर कर, व्यापक संवाद के रास्ते समाधान देकर लागू किया जा सकता है और विश्व को भारत की प्रगतिशीलता का संदेश दिया जा सकता है।

- विश्वनाथप्रसाद तिवारी :- (पूर्वअध्यक्ष- साहित्य अकादमी, दिल्ली समान नागरिक संहिता भारतीय संविधान की मूल भावना के अनुरूप है। भारत के संविधान निर्माताओं का मूल संदेश है-स्वाधीनता और समानता। यही मनुष्य का आदर्श मूल्य भी है। क्षेत्र विशेष और मौसम के आधार पर सबके रहन-सहन, खान-पान, वेश-भूषा में अंतर तो स्वाभाविक है पर एक देश में नागरिक संहिता समान होनी चाहिए अर्थात् नागरिक के विवाह, परिवार के सदस्यों के अधिकार, उत्तराधिकार आदि के बारे में एकरूपता होनी चाहिए। दुनिया के सभी सभ्य देशों में समान नागरिक संहिता का पालन होता है। भारत में भी संभवतः गोवा में इस प्रकार की संहिता है जहाँ हिन्दू, मुसलमान, ईसाई सभी वर्गों के लोग रहते हैं। ये धर्म का मामला नहीं है, यह नागरिकता का मामला है। मेरे विचार से समान नागरिक संहिता से हिन्दुओं की अपेक्षा अल्पसंख्यक समुदायों जैसे मुसलमान, ईसाई आदि को ज्यादा लाभ होगा क्योंकि उनमें असमानता अधिक है। फिर उन वर्गों के लोग विरोध क्यों करते हैं या क्यों कर रहे हैं? उसका कारण यह है कि उन्हें इस संहिता के बारे में पता नहीं है। उनके समुदाय के नेता और धार्मिक लोग उन्हें बरगलाते हैं। स्वयं मुझे इस संहिता का पूरा विवरण ज्ञात नहीं है। जितना ज्ञात है उसी के आधार पर मैं कुछ कह रहा हूँ। सरकार को चाहिए या विधि आयोग को चाहिए कि वह समान नागरिक संहिता से क्या-क्या परिवर्तन होगा, इसको विज्ञापनों के माध्यम से प्रचारित करे ताकि लोगों को इसका सही विवरण ज्ञात हो सके और वे अपना सही राय दे सकें। मेरा खयाल है ऐसा करने पर अधिकांश लोग इसका समर्थन करेंगे।

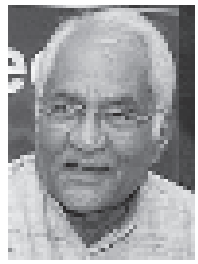

-विश्वनाथ त्रिपाठी :- (वरिष्ठ साहित्यकार) स्वभावतः एक देश में जो सामाजिक व्यवस्था है, प्रशासनिक व्यवस्था और न्याय व्यवस्था है, वह एक जैसी होनी चाहिए, इसमें कोई संदेह नहीं। जब हम समान नागरिक संहिता की बात करते हैं तो यह सुनने में आकर्षित लगती है। जो समान नागरिक संहिता है और जो वर्तमान संहिता है, वह उससे बेहतर है कि नहीं। सवाल यह है कि कोई संहिता बनेगी तो वह हमारे देश के

लिए रहेगा कि नहीं? तर्कसंगत यह है कि हम अपने देश की विशेषताओं को ध्यान में रखकर फिर व्यवस्था बनाएँ, तब वह इस देश के लिए अधिक स्वीकार्य भी होगी और असरदार भी।

हमारा देशकाल बहुत दीर्घ है। इसका इतिहास भी बहुत पुराना है और क्षेत्र भी बहुत बड़ा है। जिसे हम विविधता कहते हैं वह इस देश की मिट्टी में है, प्रकृति में है। हम छः ऋतुओं की बात करते हैं। उन ऋतुओं की अलग-अलग पोशाकें भी हैं। इसी तरह धर्म, मजहब, पंथ, भोजन की अनेक प्रणालियाँ और अनेक रीत-रिवाज हैं। ऐसे अनेक रीत-रिवाज हैं, जिसे हम जानते ही नहीं लेकिन हम लोगों ने उसे अपना समझकर स्वीकार कर लिया है, जैसे- सिंदूर। जिसे हम एकता कहते हैं, वह एकता बहुलताविरोधी नहीं होती। समान नागरिक संहिता तो होनी चाहिए जितनी समानता संभव है। संभव का मतलब यह है कि जिससे कोई आहत न हो। समान संहिता का मतलब एक ऐसी संहिता जो सबको सुखद हो, सबको सम्मान्य हो।

-विराग गुप्ता :- (अधिवक्ता, सर्वोच्च न्यायालय, दिल्ली)

संविधान के अनुच्छेद-44 में प्रावधान होने की वजह से समान नागरिक संहिता की दिशा में प्रयास होने ही चाहिए। इसे सफल बनाने के लिए चार महत्त्वपूर्ण बातों पर ध्यान रखना जरूरी है। पहला-संविधान और कानून से जुड़े इस मुद्दे का धार्मिक ध्रुवीकरण और सियासी लाभ के लिए इस्तेमाल नहीं हो। दूसरा-हाईकोर्ट में केन्द्र सरकार के हलफनामे और संसद में मंत्री के दिए हुए बयान के अनुसार समान नागरिक संहिता पर राज्यों की बजाए संसद से ही केन्द्रीय स्तर पर कानून बनना चाहिए। तीसरा-आपराधिक कानूनों को एकरूप तरीके से सभी वर्गों पर लागू किया जाता है, यद्यपि इनमें राज्यों के अनुसार फेरबदल करने की गुंजाइश है। समान नागरिक संहिता मामले पर धार्मिक विभाजन के साथ क्षेत्रीय स्तर पर भी अनेक चुनौतियाँ हैं। इसलिए समान नागरिक संहिता को राज्यों के साथ परामर्श के बाद चरणबद्ध तरीके से लागू करना चाहिए। चौथा-मुस्लिम धर्म से जुड़े सिविल मामले अधिकाशंतः पर्सनल मामलों से संचालित होते हैं। इसलिए प्राथमिक तौर पर उन्हें संहिताबद्ध करने यानी कानून बनाने की जरूरत है। एक बार सभी समुदायों के सिविल लॉ के बारे में संसद से कानून बन जायें तो फिर उन्हें एकीकृत करके समान नागरिक संहिता को सफल और सार्थक बनाया जा सकता है।

- अनूप बरनवाल 'देशबन्धु' :- विधिवक्ता, इलाहाबाद उच्च

न्यायालय, प्रयागराज किसी देश की व्यवस्था के स्वस्थ संचालन के लिए संविधान के बाद सबसे अधिक महत्त्व अपराध संहिता एवं सिविल संहिता का होता है। इनका धार्मिक आधार पर भेदभाव मुक्त होकर लागू होना पहली शर्त है। दुर्भाग्य से ब्रिटिश हुकूमत ने सिविल व्यवहार संबंधी कुछ कानूनों को धर्म के आधार पर बाँट दिया था। उनकी इस बाँटो और राज करो की नीति के कारण देश का धर्म-आधारित बँटवारा हुआ। इसके बाद सबसे अधिक आवश्यकता इन कानूनों को समाप्त करने की थी, ताकि धर्म-आधारित पृथक्करणीय सोच समाप्त हो और भारतीयता की भावना मजबूत हो। इसी विचार के साथ सरदार पटेल की अध्यक्षता वाले मूल अधिकार समिति ने सर्वप्रथम 30 अगस्त 1947 को समान नागरिक संहिता लागू करने की संस्तुति की और इसे संविधान सभा ने अनुच्छेद 44 के रूप में 23 नवम्बर 1948 को अंगीकृत किया। इसकी वकालत करते हुए के.एम.मुन्शी ने कहा कि जितना ही जल्दी हम जीवन के पृथक्करणीय दृष्टिकोण को भूल जायेंगे, देश के लिए उतना ही अच्छा होगा। किन्तु हमारे तत्कालीन नीति-निर्माताओं ने 1955 में हिन्दू कानून बनाकर तमाम धर्म-आधारित पृथक्करणीय कानूनों को बने रहने की छूट दे दिया। इसका विरोध डॉ. राजेन्द्र प्रसाद जी ने किया था।

समान नागरिक संहिता बनाने का मूल ध्येय है कि धार्मिक व्यवहार के विषय जैसे ईश्वर का स्वरूप, पूजा-पद्धति, व्रत रखने या देह अंत्येष्टि का तौर-तरीका, आत्मिक शान्ति का मार्ग, धार्मिक शिक्षा इत्यादि को लेकर शरीयत, गीता, बाइबिल जैसे धार्मिक पुस्तकों द्वारा संचालित होने की आजादी हो और बाकी सभी सिविल व्यवहारों को इनसे अलग करके एक समान व्यवस्था-कानून से विनियमित किया जाए। विश्व के तमाम आधुनिक देशों ने 19वीं शताब्दी के दौर में समान नागरिक संहिता स्वीकार कर लिए थे। स्विस सिविल संहिता, जर्मन सिविल संहिता, फ्रांस सिविल संहिता, पुर्तगाल सिविल संहिता, टर्की सिविल संहिता इसके उदाहरण है। 'संस्थागत' या 'पेण्डेक्टवादी' पद्धति पर आधारित इन संहिताओं में सिविल व्यवहार संबंधी सभी विषयों व्यक्ति, राष्ट्रीयता, परिवारिक संपत्ति

एवं दायित्व के कानून शामिल है।

भारत में भी समान नागरिक संहिता को व्यापक स्वरूप में लागू होना चाहिए। जिसमें व्यक्ति, राष्ट्रीयता, परिवारिक संपत्ति एवं दायित्व के कानून शामिल हो। जितना वैवाहिक उम्र, बहुविवाह, मौखिक तलाक, गोद, वसीयत, विरासत, जैसे सिविल व्यवहार को लेकर धर्म के नाम पर भेदभाव मिटाना आवश्यक है, उतना ही आवश्यक संपत्ति कानूनों में मुस्लिम धर्म को मिले छूट को समाप्त करने का है (उदाहरण- संपत्ति स्थानांतरण कानून की धारा 2 एवं 129), उतना ही आवश्यक धार्मिक विन्यास (व्यक्ति का कानून) के सिद्धान्त एवं छूट को लेकर धर्म-आधारित भेदभाव समाप्त करने का है, उतना ही आवश्यक इस देश में रह रहे लोगों के राष्ट्रीयता (राष्ट्रीयता का कानून) को घोषणा करने और राष्ट्रगान के माध्यम से 'अधिनायक' के बजाए संविधान की भावना के अनुरूप अपने 'जननायकों' को जयकारा लगवाने की है। इस तरह के तमाम सुधारात्मक बदलाव के साथ यदि हम व्यापक स्वरूप में भारतीय सिविल संहिता नाम से समान नागरिक संहिता बनाने में सफल होते हैं, तो यह देश न केवल गुलामी के सैकड़ों कानूनों-प्रतीकों के बोझ से मुक्त हो जायेगा, बल्कि कई जटिलताओं का एकमुश्त समाधान भी हो जाएगा।

- मेधा पाटकर :- नर्मदा बचाओ आंदोलन की संस्थापक, भारतीयसामाजिक कार्यकर्ता समान नागरिक कानून जो संविधान के मार्गदर्शक सिद्धांतों में से एक है। अनुच्छेद 44 के तहत शासनकर्ताओं का कर्तव्य बिंदु रहा है। मुझे याद है कि बचपन में पिता जी के साथ समाजवादियों के जुलूस में पहली बार शामिल हुई थी, जिसका मुद्दा यही था। समता और न्याय जिस राष्ट्र के संवैधानिक तथा मानवीय मूल्य भी हैं, उन्हें हर शासकीय निर्णय, आदेश, नीति और कानून में प्रतिबिंबित होना जरूरी है।

हर नागरिक जाति, धर्म, पंथ, प्रांत और लिंगभेद के पार, वर्गभेद को भी नकारते हुए, हर कानून के समक्ष समान होना ही है। समान नागरिक कानून का उद्देश्य धर्म के या जाति के नाम पर महिलाएँ, बालक या किसी भी नागरिक समुदाय के लिए अन्याय कारक प्रथा-परंपराएँ चलती रही है, तो उन्हें बदलना होगा। यह सभी प्रगतिशील मानवधर्मी नागरिक, समूह, संगठनों के लिए जरूरी माना जायेगा। लेकिन 'समान नागरिक कानून' की घोषणा के इर्द-गिर्द में आज का परिवेश क्या है, यह देखना भी जरूरी है। कुछ साल पहले इसका मसौदा लॉ कमीशन से प्रचारित हुआ था तब विवाद और बहस चली थी, जो स्वाभाविक था। किंतु, आज एक उत्तराखंड का ही उदाहरण लें तो एक ओर मार्च महीने से समान नागरिक कानून घोषित करने वाला पहला राज्य होते हुए भी, वही तो आज धर्मांधता का भयावह चेहरा सामने क्या, रास्ते पर लाया गया है। विशिष्ट धर्म के 'अल्पसंख्यक' का बिरुद देकर लोगों को हटाया, भगाया जा रहा है। इस विरोधाभास को ही और बढ़ावा तो नहीं देगा समान नागरिक कानून, यह सोचना जरूरी है। जरूरी है, इस नए कदम के पीछे की नई परिस्थिति के तहत रही सोच का संज्ञान लेना! आज अनुच्छेद 25 के तहत हर धर्म को संवैधानिक आजादी देना सर्वप्रथम मंजूर हो तो धर्मांध हिंसा को सर्वप्रथम रोकना बेहद जरूरी है। नागरिक समानता चाहिए, इस संतुलन के साथ जिससे जाति, धर्म के नाम पर हो रहे महिला या पुरुष भी भुगतते अत्याचार रोके, लेकिन पीढ़ियों से चलती आई कई पारंपरिक क्रिया-प्रक्रियाओं की विविधता, जो अन्यायवाचक नहीं है, उस पर आक्रमण न हो। कुछ अमानवीय कृत्य-कार्य दूर करने के लिए समानता लाई जाए लेकिन 'एकधर्मी राष्ट्र' जैसा असंवैधानिक सपना साकार करने के लिए इसे हथियार नहीं बनाया जाए। आज अगर मसौदा सामने लाने से भी हिंसक विभाजन बढ़ता है तो समता या समानता नहीं, विषमता की गहराएगी। 'हिंदूराष्ट्र' जैसा अजेंडा उसमें झलकेगा तो आज 'जिहाद' के नाम पर हो रही बर्बर हिंसा बढ़ेगी। मूल उद्देश्य क्या, संविधान भी कुचला जायेगा, यह चेतावनी समझना भी बेहद जरूरी है।

अगर मसौदा बनाने से लेकर अंतिम स्वरूप देने तक की प्रक्रिया अहिंसक, जनतंत्रवादी और सत्याग्रही रहे, यह सुनिश्चित करना है तो समिति का गठन हो या मसौदा पर चर्चा-विचार, हर कदम पर सर्वधर्मी जातियों के पार, लैंगिक न्याय की सोच के साथ सहभाग सुनिश्चित होना भी आवश्यक है। पहले कदम से होगी परीक्षा, जिससे समझेंगे दिशा और मंजिल भी।

सी-17 गली नम्बर-2, हरदेव नगर,
नई दिल्ली-110084
मो.-9873889159

समान नागरिक संहिता : साहित्यिकारों के विचार

– दीपक पगारे

जन्म – 15 मार्च।
जन्मस्थान – भोपाल (म.प्र.)।
रचनाएँ – एक पुस्तक प्रकाशित।
सम्मान – म.प्र. राष्ट्रभाषा प्रचार समिति द्वारा यशवंत अरगड़े सम्मान से सम्मानित।

शैलेन्द्र

देश में इन दिनों समान नागरिक संहिता लागू किये जाने की चर्चा है। प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने इसके लिए बकायदा देश के नागरिकों से राय माँगी है। यह सही है कि भारत विविधताओं का देश है। यही इसकी 'आत्मा' है।

विविधताओं के बाद भी कई मायनों में संविधान में 'समानता' का प्रावधान है। लेकिन जात-पाँत, धर्म और लिंग की आड़ में कुछ असमानतायें भी हैं। जो यदा-कदा देश में वाद-विवाद पैदा करते हैं। यही बात है जो 'समान नागरिक संहिता' के विरोध की वजह बनी है।

इसी सामयिक और अनिवार्य मसले को लेकर हमने विभिन्न विचारधाराओं के साहित्यकारों से चर्चा की। सबने इस मामले में बेबाक राय दी है। इन विचारों को हम हमारे पाठकों के सामने जस के तस प्रस्तुत कर रहे हैं–

देश की एकता-अखंडता के लिए खतरा हो सकता है?

शायर सरशाह सैलानी का एक शेर याद आ रहा है–

'चमन में इख्तिलाफे रंग ओ बू से बात बनती है,
तुम ही तुम हो तो क्या तुम हो, हम ही हम हैं तो क्या हम हैं।'

हमारा देश भारत जिसकी बेमिसाल खासियत यह है कि जहाँ एक तरफ इतने सारे मौसम हैं, इतनी नदियाँ हैं, इतने पहाड़ हैं, इतनी सारी तरह-तरह की प्राकृतिक संपदा है, वहीं दूसरी तरफ इतने सारे धर्म हैं, इतनी सारी जातियाँ हैं, इतनी सारी भाषाएँ हैं, इतनी सारी संस्कृतियाँ हैं, इतने रीति-रिवाज हैं, यानी भारत एक ऐसा बहुआयामी चमन है जिसमें तरह-तरह के फूल हैं, तरह-तरह की खुशबू हैं। इस बेमिसाल चमन को कायम रखना ही चाहिए। तब ही तो भारत में सामाजिक चेतना की विकास यात्रा सतत् चलती रही है। जड़ताओं, प्रतिगामी प्रवृत्तियों का हमेशा प्रतिरोध हुआ है। चाहे कितनी ही बार चार्वाक की हत्याएँ हुई हों, लेकिन सामाजिक चेतना के विकास की सुदीर्घ यात्रा कभी भी समाप्त नहीं हुई। इस प्रक्रिया में ही यहाँ गौतम बुद्ध, महावीर स्वामी, गुरु नानक, दयानंद सरस्वती हुए। इस्लाम की धारा व्यापक हुई, ईसा मसीह का संदेश प्रसारित हुआ, पारसी भाई भी यहाँ सहजता से घुल मिल गए अर्थात् भारत में संस्कृति की कोई मूल धारा नहीं है। भारत संस्कृतियों का समुच्चय है। आदिवासियों की अपनी अलग सुदीर्घ संस्कृति है। हिन्दुओं में भी अलग-अलग संस्कृतियाँ हैं। उत्तर भारत के हिन्दुओं और दक्षिण भारत के हिन्दुओं के रीति-रिवाज भिन्न हैं।

एक ही उदाहरण काफी है कि-उत्तर भारत के हिन्दुओं में मामा और भांजी का विवाह वर्जित और अनैतिक है, लेकिन दक्षिण भारत के हिन्दुओं में मामा और भांजी का विवाह सर्वाधिक पवित्र और मान्य है।

इस बेमिसाल देश की विविधता को कायम रखना एक मानवीय मूल्य है। यदि सत्ता के अहंकार में और संसद में बहुमत के आतंक से समान नागरिक संहिता भारत की जनता पर थोपी जाती है तो यह अमानवीय होगा। यह भारत के संवैधानिक मूल्यों के भी विपरीत होगा। इससे देश की एकता और अखंडता संकट में पड़ जायेगी।

अब यह किसी से छिपा नहीं है कि लगातार बढ़ती मँहगाई, बेरोजगारी, गरीबी, भुखमरी, कुपोषण से जनता का ध्यान हटाने के लिए तथा निजीकरण, किसानों-मजदूरों-कर्मचारियों के खिलाफ बनाए जा रहे, काले कानूनों, भारत के संवैधानिक मूल्यों को ध्वस्त करने की प्रवृत्तियों के खिलाफ जनता के प्रतिरोध तथा जन आंदोलनों की धार को कमजोर कर जनता को भ्रमित करने के लिए ही वर्ष 2024 में होने वाले लोकसभा चुनावों से पहले समान नागरिक संहिता को मुद्दा बनाया जा रहा है। यह अनुचित और अनैतिक है। जब अपराध, आर्थिक मामलों

के लिए एक समान कानून हैं, जो सर्व मान्य हैं, तब समान नागरिक संहिता को मुद्दा बनाने की कोई जरूरत नहीं है।

भारत की एकता, अखंडता, संप्रभुता, सद्भाव और सबसे बड़ी बात मानवता को बचाने के लिए समान नागरिक संहिता का प्रतिरोध होना ही चाहिए।

भारत के मानवीय मूल्यों के लिए प्रतिबद्ध सभी साहित्यकारों, संस्कृति कर्मियों, बुद्धिजीवियों का यह सामाजिक और रचनात्मक दायित्व है कि वे समान नागरिक संहिता का प्रतिरोध करें। क्योंकि लेखक विश्व नागरिक होता है। सच्चा लेखक किसी भी तरह की संकीर्णता से मुक्त होता है। इसलिए भारत के साहित्यकारों पर यह ऐतिहासिक जिम्मेदारी है कि वे समान नागरिक संहिता सहित किसी भी तरह संकीर्णता, प्रतिगामी प्रवृत्तियों का कड़ा मुकाबला करें।

(वरिष्ठ साहित्यकार एवं राज्य सहसचिव भाकपा)

जाति, धर्म और लिंग के आधार पर अलग कानून क्यों हो?

स्वाती तिवारी

– **स्वाति तिवारी :**– 'समान नागरिक संहिता' की बात करने से पहले हम अपने देश पर बात करें तो भारत के बारे में कहा जाता है कि यहाँ हर चार कोस पर पानी, और भोजन का स्वाद तक बदल जाता है, रीति–रिवाज, परम्परा, वेश–भूषा सब बदल जाती है। कहने का मतलब है कि–भारत विविधता वाला देश है। विविधता के कारण, एक समान और समान नियम बनाना कठिन है बल्कि कहें कि नियम पालन करवाना कठिन है। तो यह सच है, लेकिन असम्भव नहीं। हमारी सामाजिक व्यवस्था में सुधार की आवश्यकता है, जो असमानताओं, भेदभावों और अन्य चीजों से भरी है। जो हमारे मौलिक अधिकारों के साथ टकराव करती हैं। जहाँ तक मैं समझती हूँ, जब संविधान हमें समान अधिकार देता है तो, हमारे नियमों में धर्म, जाति, लिंग के आधार पर कानून अलग–अलग क्यों? हमें समान स्वतंत्रता चाहिए, समान वेतन चाहिए तो समान नियम और कानून क्यों अपने–अपने धार्मिक आधारों पर अलग–अलग चाहिए? समान नागरिक संहिता यानी यूनिफॉर्म सिविल कोड का अर्थ है भारत में रहने वाले हर नागरिक के लिए एक समान कानून होना, चाहे वह किसी भी धर्म या जाति का क्यों न हो। समान नागरिक संहिता में शादी, तलाक और जमीन–जायदाद के बँटवारे में सभी धर्मों के लिए एक ही कानून लागू होना चाहिए। जी हाँ मैं इसका समर्थन करती हूँ। क्योंकि यह देश को अनुशासित करेगा, यह निष्पक्षता लाएगा और जीवन को सहज और सरल बनाएगा। धर्म की आड़ में किये जानेवाले वे कार्य जो किसी दूसरे नागरिक के अधिकारों का हनन करते हैं, या कुछ लोग जो इसका फायदा उठाकर दूसरा, तीसरा विवाह करते हैं, इसका फायदा उठाने के लिए धर्म परिवर्तन करते हैं। उन सब पर रोक लगाई जा सकती है। एक धर्म, एक विवाह पर एक निष्ठा का सिद्धांत देता है। उसी देश में दूसरा धर्म चार विवाह का प्रावधान दे देता है, तो धर्म परिवर्तन करो जितने चाहो उतने विवाह कर लो। यह न तो उचित है, न ही होना चाहिए। सुप्रीम कोर्ट ने भी माना कि– दूसरी शादी के लिए इस्लाम अपनाना पर्सनल लॉ का दुरुपयोग है। आगे कहा गया कि हिंदू विवाह को हिंदू विवाह अधिनियम, 1955 के तहत भंग किया जा सकता है। यानी केवल इस्लाम में परिवर्तित होकर दोबारा शादी करने से हिंदू विवाह कानून के तहत विवाह समाप्त नहीं होता है और इस प्रकार यह भारतीय दंड संहिता की धारा 494[5] के तहत अपराध होगा। लेकिन यह होता रहा है। जबकि एक आपराधिक संहिता है जो देश में धर्म, जाति, जनजाति और अधिवास के बावजूद सभी लोगों पर लागू होती है लेकिन तलाक और उत्तराधिकार से संबंधित कोई समान संहिता नहीं है, जो व्यक्तिगत कानूनों द्वारा शासित होती है। सभी नागरिकों को उनके धर्म, वर्ग, जाति, लिंग आदि के बावजूद समान दर्जा प्रदान करना है। समान नागरिक संहिता (यूसीसी) को हमारे संविधान में राज्य के नीति–निदेशक सिद्धांतों के अनुच्छेद 44 के तहत परिभाषित किया गया है। इसमें कहा गया है कि पूरे भारत में नागरिकों के लिए एक समान नागरिक संहिता सुनिश्चित करना राज्य का कर्तव्य है। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि इसका अर्थ है

एक देश एक नियम :– जब न्यायालय के समक्ष सभी भारतीय नागरिक समान हैं। आपराधिक कानून और अन्य सिविल कानून सभी के लिए समान हैं। तो फिर पर्सनल लॉ को हटाया जाना ही उचित होगा। सभी नागरिकों को उनके धर्म, वर्ग, जाति, लिंग आदि के बावजूद समान दर्जा प्रदान करेगा। राजनीति के मुद्दे से बाहर इसको लाया जाना होगा। कानून भी समय के साथ बदले जाने चाहिए मैं सामान नागरिक संहिता का समर्थन करती हूँ।

रेवा कुटीर,
सी– 452, शाहपुरा, भोपाल (म.प्र.)

सकारात्मकता और संप्रेषणीयता का समन्वय : रामदरश मिश्र की कविताएँ

– अज़हर हाशमी

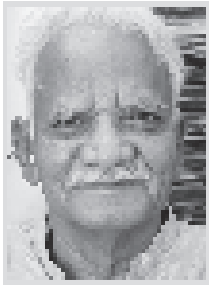

अपनी बात बेबाकी से रखने वाले श्रेष्ठ कवि, चिंतक, लेखक, एवं व्यंग्यकार हैं। आपकी सात पुस्तकें प्रकाशित हैं एवं नियमित स्तंभ प्रकाशित होते हैं। आप म.प्र. साहित्य अकादमी के अखिल भारतीय निर्मल वर्मा सम्मान सहित अनेक पुरस्कारों से अलंकृत हैं।

हिंदी के मूर्धन्य साहित्यकार डॉ. रामदरश मिश्र का सृजन-सामर्थ्य उनकी बहुआयामी प्रतिभा का प्रतीक है। मिश्र जी के रचना-संसार में कविताओं और ग़ज़लों की सरिताएँ हैं तो गीतों के घाट भी ललित निबंधों के निर्झर हैं तो संस्मरणों के सरोवर भी, उपन्यासों के उद्यान हैं तो कहानियों की क्यारियाँ भी, साक्षात्कार का सदन है तो डायरी की ड्यौढ़ी भी, आत्मकथा का आँगन है तो आलोचना की अनुगूँज भी।

डॉ. अगस्त 1924 को गोरखपुर जिले के कछार अंचल के गाँव डुमरी में जन्मे रामदरश मिश्र अभी भी सृजन-सक्रिय हैं। वे हिंदी साहित्य की धरोहर हैं (ईश्वर उन्हें शतायु करें!) डॉ. मिश्र जी की रचनाधर्मिता का फलक विराट् है। मैं, अपने इस आलेख में डॉ. मिश्र को दो कविताओं ('बनाया है मैंने ये घर धीरे-धीरे' और 'मैं यहाँ हूँ') पर विस्तार से अपना विनम्र मत रखूँ उसके पूर्व यह उल्लेख करना चाहूँगा कि उनके सब तो नहीं कुछ उपन्यास (जैसे : 'जल टूटता हुआ, पानी के प्राचीर, सूखता हुआ तालाब, बिना दरवाजे का मकान') मैंने पढ़े हैं। इनमें ग्राम चेतना (खास तौर पर 'जल टूटता हुआ में।') और ग्रामीण परिवेश का सही-सटीक चित्रण है। कुछ कहानी-संग्रह (जैसे : 'खाली घर, वसंत का एक दिन, एक कहानी लगातार, अपने लिए') पढ़कर मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि डॉ. रामदरश जी की कहानियों में पारिवारिक संबंधों का स्वरूप सहज-स्वाभाविक तरीके से रेखांकित हुआ है। ललित निबंध-संग्रह (जैसे : 'घर-परिवेश, बबूल और कैक्टस, छोटे-छोटे सुख') में डॉ. रामदरश मिश्र जी की लेखनी का लालित्य भी झलकता है और चिंतन की गंभीरता भी। संस्मरण से संबंधित डॉ. मिश्र जी की केवल दो पुस्तकें ही (स्मृतियों के छंद, 'अपने-अपने रास्ते') मैं पढ़ पाया। संस्मरण-लेखन में डॉ. रामदरश जी मिश्र की कलम-कलम न रहकर कैमरा बन जाती है और ऐसा महसूस होता है जैसे स्मृतियों के स्क्रीन पर हम अतीत के चलचित्र देख रहे हों। यात्रा-वृत्त 'घर से घर तक' और 'देश यात्रा' में रोचकता की रवानी रेखांकित होती है। आलोचना पर डॉ. मिश्र जी की दो पुस्तकें मेरे अध्ययन के दायरे में रहीं और आज भी हैं। ये पुस्तकें हैं-'हिंदी आलोचना का इतिहास' और साहित्य : संदर्भ और मूल्य। मेरे विनम्र मत में डॉ. मिश्र जी की लेखनी आलोचना-विधा में निष्पक्षता की संदेशवाहिका है। वैसे भी रचनाधार्मिता के धरातल पर डॉ. रामदरश मिश्र किसी 'कैम्प' के ध्वजवाहक नहीं हैं। हाँ, अपनी कवितायात्रा (पथ के गीत) के आरंभ में उनपर छायावाद की हल्की-सी छाया जरूर दिखाई देती है। लेकिन जैसे-जैसे विविध विधाओं में उनके लेखन के नूतन क्षितिज निर्मित होते गए, परिवर्तन को अपनाने की उनकी सहजता से पाठकों का साक्षात्कार होता रहा।

एक विशेष बात और। डॉ. रामदरश जी मिश्र द्वारा जिन, विधाओं में भी ग्रंथों का प्रणयन किया गया उनमें अधिकतर के शीर्षकों में प्रकृति और पर्यावरण से जुड़े शब्दों का प्रयोग हुआ है। उदाहरणार्थ – काव्य-संग्रह के शीर्षक हैं-'थक गई है धूप, कंधे पर सूरज, दिन, एक नदी बन गया, बारिश में भीगते बच्चे, हवाएँ साथ हैं, धूप के टुकड़े, आग कुछ नहीं बोलती, आग की हँसी।'

उपन्यासों के शीर्षक हैं-'पानी के प्राचीर, जल टूटता हुआ, सूखता हुआ तालाब, आकाश की छत।'

कहानी संग्रह के शीर्षक हैं-बसंत का एक दिन, आज का दिन भी।

ललित निबंध (संग्रह) का शीर्षक है : 'बबूल और कैक्टस।' तात्पर्य यह है कि पेड़-पौधे-लताएँ, परिन्दें, नदी, तालाब, सुबह, दिन, धूप, बारिश, पानी, आग, सूरज बसंत, आकाश जैसे शब्द डॉ. रामदरश जी मिश्र की लेखनी का स्पर्श पाते हैं और उनकी कृतियों के शीर्षक बन जाते हैं।

अब आता हूँ मैं, उन दो कविताओं पर जो इस आलेख का

प्रतिपाद्य हैं। ये दोनों कविताएँ मैंने डॉक्टर रामदरश जी मिश्र के ग़ज़ल-संग्रह बनाया है मैंने ये घर धीरे-धीरे और काव्य-संग्रह (मैं तो यहाँ हूँ) से विवेचनार्थ ली हैं।

बनाया है मैंने ये घर धीरे-धीरे-डॉ. रामदरश मिश्र जी की यह कविता (ग़ज़ल), जो उनके ग़ज़ल-संग्रह का शीर्षक भी है, इस प्रकार है।

'बनाया है मैंने ये घर धीरे-धीरे
खुले मेरे ख्वाबों के पर धीरे-धीरे

किसी को गिराया न खुद को उछाला
कटा जिंदगी का सफर धीरे-धीरे

जहाँ आप पहुँचे छलाँगें लगाकर
वहाँ मैं भी पहुँचा मगर धीरे-धीरे

पहाड़ों की कोई चुनौती नहीं थी
उठाता गया यूँ ही सर धीरे-धीरे

गिरा मैं कहीं तो अकेले में रोया
गया दर्द से घाव भर धीरे-धीरे'

उक्त ग़ज़ल में धीरे-धीरे की 'रदीफ़' है और घर, पर, सफर, सर, भर 'काफ़िया' है। मेरे विनम्र मत में डॉ. रामदरश मिश्र जी की यह ग़ज़ल सकारात्मकता और संप्रेषणीयता का उल्लेखनीय उदाहरण है। कहावत भी है कि 'जल्दी का काम शैतान का।' मिश्र जी ने अपनी इस ग़ज़ल में ऐसा संदेश दिया है कि व्यक्ति विकारों का विसर्जन और संस्कारों का सृजन करें। 'धीरे-धीरे' शब्द यहाँ अंधी दौड़ और होड़ को खारिज करता है तथा शनैः-शनैः के साथ की बनी हुई गति को जायज़ करार देता है। धीरे-धीरे शब्द कर्म की निरंतरता और साधनों की शुचिता को भी रेखांकित करता है।

संस्कृत का सुभाषित भी है -

'शनैः कंथा शनैः पंथा शनैपर्वत लंघनम्।
शनैर्विद्या शनैर्वित्तम पंचे तानि शनैःशनैः।।'

अर्थात्-धीरे-धीरे ही रजाई (कंथा) बुनी जाती है, धीरे-धीरे ही पथ पर चलना चाहिए (ताकि हाँफना न पड़े), धीरे-धीरे ही पर्वत को लाँघा जा सकता है (यानी पर्वत पर चढ़ा जा सकता है), धीरे-धीरे ही विद्या ग्रहण करना अच्छा होता है (तभी समझ में आएगी।) धीरे-धीरे ही वित्त अर्थात् धन कमाना चाहिए (क्योंकि जल्दी अमीर होने के लालच में व्यक्ति अनैतिक साधनों का उपयोग करेगा जो अनुचित है) इस प्रकार ये पाँच कार्य (जिनका उल्लेख कर दिया गया है) धीरे-धीरे ही करना चाहिए। गौरतलब है कि तुलसी, रहीम और कबीर जैसे कवियों ने भी धीरे-धीरे यानी संतुलन और सात्विकता के साथ कार्य करने पर बल दिया है। प्रसिद्ध 'दोहा' भी है -

'धीरे-धीरे रे मना, धीरे सब कछु होय।
माली सींचे सौ घड़ा, ऋतु आए फल होय।।'

सबसे खास बात यह है कि डॉ. रामदरश मिश्र धीरे-धीरे घर बनाने में साधनों की शुचिता अर्थात् नैतिक साधनों से बनाए हुए घर को चित्रित किया है। ऐसे घर में ही सुख-सुकून का वास होता है। आनंद का आभास होता है। इस ग़ज़ल के अन्य शेर भी ईमानदारी के ईज़ल में लगे, कर्म के कैनवास पर, सकारात्मकता के चित्र हैं। और अब प्रस्तुत है उनकी कविता 'मैं तो यहाँ हूँ' उल्लेखनीय है कि यह कविता डॉ. रामदरश जी मिश्र के काव्य संग्रह का शीर्षक भी है। इस संग्रह को के. के. बिरला फाउंडेशन का 'सरस्वती सम्मान' प्राप्त हो चुका है।

मैं तो यहाँ हूँ - सभी चले गये थे मंदिर में अपनी मुरादों के चीथड़े छोड़कर / मैं अकेला बैठा था प्रभुमूर्ति के सामने / और बातें कर रहा था। सुख-दुख की / लेकिन मूर्ति जड़ बनी रही / ऊब कर मंदिर से बाहर निकला / तो देखा चारों ओर पुष्पित खेत खिलखिला रहे थे / चहचहाती चिड़ियों का महाराग मचा था / हवाएँ खुशबू में नहा रही थीं / और जड़-चेतन की त्वचा पर स्पंदन की कथा लिख रही थीं / पास बहती हुई नदी में तरंगों का नर्तन और गान चल रहा था। लगता था धरती और आकाश के बीच संवाद हो रहा है। प्रतीत हुआ जैसे चारों ओर एक आवाज गूँज रही है-'अरे, मैं तो यहाँ हूँ, यहाँ हूँ।'

मेरे मत में डॉ. रामदरश जी मिश्र की उक्त कविता प्रकृति और पर्यावरण में निहित परमात्मा की पदचाप और आनंद की अनुगूँज है।

32, इन्दिरा नगर,
रतलाम-457001 (म.प्र.)
फोन-07412-260221

रामदरश मिश्र की प्रतिनिधि कहानियाँ : ताप और दीप्ति की खोज

– आनन्द प्रकाश त्रिपाठी

जन्म – 15 अप्रैल 1960।
शिक्षा – एम.ए., पीएच.डी., डीलिट्।
रचनाएँ – आठ पुस्तकें प्रकाशित कतिपय सम्पादित।
सम्मान – अंबिका प्रसाद दिव्य रजत अलंकरण सहित अनेक सम्मानों से सम्मानित।

हिंदी कथा लेखन की दुनिया जिस तेजी से बदल रही है वह हमारे समय और समाज में आगत व्यापक परिवर्तन और चुनौतियों का परिणाम है। नये-नये विमर्श, सोशल मीडिया का विस्तार, कोरोना महामारी का संकट और बदलते जीवन-संदर्भ तथा समाज और जीवन के अन्यान्य पक्षों के गहरे प्रभाव में हिंदी कथा साहित्य का परिसर विशद और वैश्विक हुआ है। हमारे चिंतन का फलक भी व्यापक हुआ। समय ही इस दौर का मुख्य चरित्र है जो मनुष्य को अनेक तरह से निर्मित कर रहा है और भ्रमित भी। इसकी पीठिका में पूर्व की सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक पृष्टभूमि भी कारगर रही है। बीती सदी के समय और समाज के चेहरे को पहचानने के लिए हमें उस युग के कथासाहित्य के द्वार पर दस्तक देना होगा और व्यापक सच्चाई को समझना होगा।

हिंदी कथा साहित्य के इतिहास में एक वरिष्ठ कथाकार की हैसियत से रामदरश मिश्र की सर्जनात्मक उपस्थिति मील का पत्थर है। वे प्रेमचंद, फणीश्वरनाथ रेणु, नागार्जुन, विवेकी राय, अमरकांत, मार्कंडेय आदि की ग्रामीण चेतना और कथा-परंपरा के समर्थ कथाकार हैं। पूर्ववर्ती ग्रामकथा साहित्य में ग्राम-जीवन-यथार्थ का बहुत कुछ अदेखा और अछूता रह गया था। बदलते युग-परिवेश में गाँव-समाज की जो तस्वीर और तकदीर बदली, शहरी मानसिकता और उसके साथ आगत विकृतियों, संकीर्णताओं, अधकचरी आधुनिकता, बेमेल विचार आदि के कारण गाँव के रूप-रंग में तथा सोच-विचार के तौर-तरीके में बदलाव आया, उसने हिंदी के उन कथाकारों को बहुत बेचैन किया जो गाँव छोड़कर नगरों और महानगरों में आकर बस गए थे तथा जिनकी यादों में उनका जिया हुआ गाँव आँख-मिचौली करता रहा है। भावनात्मक क्षणों में ऐसे लेखकों ने अपने गाँव को अपनी रचनाओं में टेरा और वहाँ के जीवन और समाज के खदबदाते सच को उजागर करने का प्रयास किया है। उन्हीं कथालेखकों में बहुप्रतिष्ठित नाम रामदरश मिश्र का है। महानगर दिल्ली में रहते हुए अपने गाँव क्षेत्र से मिश्र जी का संपर्क बराबर बना रहा है। वही गाँव समय-समय पर उनकी रचनाओं में अपनी तासीर और तकदीर तथा विद्रूपताओं, कुरूपताओं के साथ अभिव्यक्त हुआ है। मिश्र जी का प्रगतिशील चिन्तन, उनका आधुनिक जीवन बोध और नगरीय जीवनानुभवों का प्रभाव उनके उपन्यासों और कहानियों में प्रायः दृष्टिगत होता है। ग्रामीण जीवन और संस्कृति की भावभूमि पर रचित उनके उपन्यास और कहानियाँ ग्राम-जीवन के महत्त्वपूर्ण दस्तावेज हैं जिसमें उनके गाँव-जवार तथा समाज का सारा कुरूप, पीड़ा और विकृत यथार्थ उभर आया है।

गाँव से आकर दिल्ली महानगर में रामदरश जी ने अपना लेखकीय और अध्यापकीय जीवन जिया, तमाम उतार-चढ़ाव और लोगों की संघर्ष भरी जिंदगी देखा और समझा। गाँव के लोगों की जिंदगी, गँवई राजनीति, नेतागिरी, सामंती दुष्चक्र, अफसरों और बड़मनई लोगों के द्वारा गरीबों का शोषण, उत्पीड़न, भुखमरी, गरीबी, हारी-बीमारी, सूखा-बाढ़, महामारी, गाँव की नयी पीढ़ी, शिक्षा व्यवस्था, असुविधाएँ, शादी, रीति-रिवाज, अंधविश्वास, रूढ़िवादिता और भी बहुत कुछ उनके कथासाहित्य के विस्तृत कैनवास पर प्रतिबिंबित हुआ है। ग्रामीण और महानगरीय जीवन के अनुभवों को मिश्र जी ने बड़ी संजीदगी और आदर्शवाद के अतिरिक्त दबाव से मुक्त होकर अपनी कृतियों में रचा है। जब का तस चित्रण उनके कथालेखन का वैशिष्ट्य है। प्रतिनिधि कहानियाँ संकलन की भूमिका में ओम निश्चल ने लिखा है- 'एक कथाकार के रूप में रामदरश मिश्र का मन करुणा और सहानुभूति से भीगा हुआ लगता है। उनकी कहानियाँ प्रेमचंद के बाद के गाँव-समाज का आईना हैं। वे निचले तबके के लोगों के उजले चरित्रों और ऊँचे तबके के लोगों के निम्नतर चरित्र के ढके-मुंदे पतन की गाथा भी कहती हैं। वे यह जतलाती हैं कि आधुनिकता और भूमंडलीकरण ने भले ही बहुत कुछ बदला है

पर अभी मनुष्य का चरित्र नहीं बदला। ऊँच-नीच की खाइयाँ समाप्त नहीं हुई हैं। ये कहानियाँ बार-बार पढ़ी जाती हुई भी हर बार अपने कथ्य में नई लगती हैं। **(पृ. 9)**

रामदरश मिश्र की प्रतिनिधि कहानियों का एक महत्त्वपूर्ण संकलन राजकमल प्रकाशन, दिल्ली से 2022 में प्रकाशित हुआ है जिसमें छोटी-लंबी कुल बारह कहानियाँ संकलित हैं। चयन और भूमिका आलोचक और कवि डॉ. ओम निश्चल जी की है। वैसे तो मिश्र जी ने शताधिक कहानियाँ लिखी हैं जो खाली घर, एक वह, बसंत का एक दिन, आज का दिन भी, एक कहानी लगातार, फिर कब आएँगे, अकेला मकान, विदूषक, आखिरी चिट्ठी सहित दो दर्जन कहानी संग्रहों में संकलित हैं। इन्हीं संग्रहों से 12 कहानियों का चयन मुश्किल काम था, फिर भी ओम जी ने उनके कहानी संसार के प्रतिनिधि रंगों से कुछ प्रमुख रंगों की कहानियाँ चयनित की जिसे पढ़कर रामदरश मिश्र के कहानीकार स्वरूप की एक बानगी तो हमें मिल ही जाती है।

प्रतिनिधि कहानियों को पढ़ते हुए मुझे अपने गाँव-जवार की अनेक घटनाएँ, चरित्र और वहाँ की जिंदगी के रंग याद आये। वे अनगिनत चरित्र, गाँव का सारा रोग-दोषभरा माहौल, समस्याएँ, स्त्री और पुरुष के संबंध, वातावरण आदि सब साकार हो उठे हैं जिसे कहानीकार ने कथावृत्त में रूपायित किया है। कहानीकार का कथागाँव अब पहले जैसा नहीं रहा है। बहुत बदल गया है। इन कहानियों का गाँव कई दशकों पहले का रूखा-सूखा, कलपता, गरीबी, भुखमरी, अकाल, बाढ़ झेलता दुखियारा गाँव है। जिसकी व्यथा कथा लेखक को बहुत बेचैन करती है। गाँव में लेखक की आवाजाही शहर से वर्षों तक बराबर बनी रही है। गाँव उनके लेखन का प्रेरणास्रोत रहा है। उनके कथासाहित्य का मूल चरित्र भी यही है। यहाँ उत्पीड़ितों का जीवन-संघर्ष है। प्रेम में मरते-कलपते युवक-युवतियाँ हैं, आर्थिक बदहाली में जीते लोग हैं। बोलते और अनबोलते पात्रों का दु:ख-दर्द है, उनकी आँखों की गीली कोरें हैं, दिल और दिमाग पर लगे अनेक जख्म हैं। उनके समय की नाना सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक विसंगतियाँ और जीवन की विडंबनाएँ हैं। किसी से भी बचने की कोशिश कथाकार ने नहीं की है।

रामदरश मिश्र के 'प्रतिनिधि कहानियाँ' संग्रह में 'माँ, सन्नाटा और बजता हुआ रेडियो' पहली लंबी कहानी है जो अत्यंत हृदयद्रावक है। लेखक 'मैं' पात्र के रूप में कहानी में उपस्थित है। अपनी माँ का क्रियाकर्म करके वह शहर लौटता है। वह दुखी है गाँव के हालात को देखकर, किंतु जनता के वीरभाव से प्रभावित है-'जनता का मनोबल बहुत ऊँचा है अपनी सारी कठिनाइयों के बावजूद वह बड़ी बहादुरी से जूझ रही है। मैं जनता के इस वीर भाव से बहुत प्रभावित हूँ।' **(पृ. 17)**

इस कहानी में कोई एक कथा न होकर लेखक की अपने घर-गाँव की यात्रा का आँखों देखा हाल है। आत्मकथात्मक शैली में लेखक के परिवार और गाँव का सच्चा बयान है। गाँव-जीवन के अनेक दुखद प्रसंगों के माध्यम से लेखक गाँव के परिवेश और वहाँ के लोगों की दुर्दशा और अपने पिता की अभावभरी जिंदगी, माँ की मृत्यु का दर्द, उनकी अनुपस्थिति की पीड़ा, परिवार की संघर्षमय जिंदगी आदि का यथार्थ चित्र खींचा है। राजनीति का रंग भी है। इस गाँव में सिर्फ अभाव है, असुविधाएँ हैं। लोगों के जीवन में कष्ट हैं, लाचारगी है। स्वार्थपरता ने घेर लिया है सभी को। माँ के न रहने पर पिता का उदासपन और घर का सूनापन अखरने वाला है। यह देखकर लेखक का मन भी दुखी है; क्योंकि जब से वह शहर में रहने लगा है, माँ अकेली छूट गई पिताजी के साथ। ऐसे अवसादमय वातावरण में भी लेखक कुछ सुंदर और खुशनुमा लम्हों को देख पाया है। बेबसी और अभाव में भी एक हँसता हुआ सपना देखता है। गाँव की विषम परिस्थितियों पर की गई लेखकीय टिप्पणियाँ या विचार आँखें खोलने वाले हैं। इस कहानी में हलवाहे दुधई की गरीबी, उसके जर्जर स्वास्थ्य और दुर्दशा का मर्माहत करने वाला करुण चित्र भी अंकित है।

इस संग्रह की अत्यंत लघु कहानी 'एक वह' महानगर में रहने वाले अस्सी वर्ष के उस बूढ़े की कथा है जो कभी मूँगफली, कभी भुट्टा और कभी चने-मुरमुरे बेचा करता था। काठ का एक बक्सा, एक टूटी हुई चारपाई, गोल चक्कर घर और वहीं उसकी दुकान, इतनी ही उसकी दुनिया है। जाड़ों की रातों में एक फटी रजाई ओढ़कर खुले आसमान के नीचे चारपाई पर सोना, गर्मी में वही फटी रजाई तानकर छाँह बना लेना, बरसात के दिनों में खुले मकान के ऊपर एक पुरानी बरसाती तान लेना और बारिश बहुत तेज होने पर किसी बरामदे में सरक जाना, इसी तरह उसकी जिंदगी गुज़र रही है। उसे लोग 'ताऊ' के नाम से जानते हैं। रामचरितमानस का पाठ करने वाले ताऊ का अपना किस्सा है, अपना ही रंग-ढंग है। ताऊ अत्यंत भाव-विह्वल होकर जब रामकथा सुनाते हैं तब उनकी आँखें अश्रुविगलित हो उठती हैं। आज के समय में प्रजा का दु:ख उन्हें पीड़ा देता है। वे आज की हर समस्या का समाधान रामचरितमानस में देखते हैं। ताऊ का कहना है-'आज परजा दुखी है राजा के पाप से, आज राजा के पास धरम-अधरम का, पाप पुन्य का विचार नहीं रह गया है। इसलिए तो प्रजा का भी सत्तानास हो रहा है।' **(पृ. 30)** प्रजा के हालात पर वह बहुत दुखी होते हैं और वर्तमान पर तीखी प्रतिक्रिया मानस के परिप्रेक्ष्य में करते हैं। 'अरे ऐ

रामचन्दर जी, गरीब आदमी कइसे जीएँगे।' 'अरे भइया आटा, दाल, चिन्नी, तेल, तरकारी, लकड़ी, कोयला सब के भाव में तो आग लगी है आदमी कैसे जिएँगे। **(पृ. 31)** ताऊ समाजवाद के बारे में यही जानते हैं–'लोग कहते हैं कि गरीबन के दुख दरद दूर करे के खातिर ई आ रहा है।' उन्होंने राजनीति को भी कटघरे में खड़ा किया है। राजनीतिक पार्टियों के चुनाव चिन्ह वाले पोस्टर लगाए गए हैं, उन चुनाव चिन्हों पर पर उनका व्यंग्य बहुत सटीक है। देश की राजनीति, गरीबी, महँगाई पर प्रतिक्रिया करने वाला ताऊ एक दिन लाश में बदल गया। उसके आसपास लगे हुए गरीबी हटाओ के पोस्टर मानो व्यवस्था को मुँह चिढ़ा रहे हैं।

समाज में नगण्य व्यक्तियों, घटनाओं और परिस्थितियों को रेखांकित करती कहानियाँ कथाकार की अति संवेदनशीलता का प्रमाण हैं। 'सड़क' एक गरीब शिक्षक की विवशता की कहानी है जिसे सेवानिवृत्ति के बाद जीवनयापन के लिए चाय बेचने का धंधा करना पड़ता है। लोग उसे उपेक्षित करते हैं। उन्हीं का पढ़ाया हुआ एक बदमाश छात्र जंग बहादुर यादव जिसकी पिटाई पांडेय जी प्राय: स्कूल में कर दिया करते थे, वही आज एम. एल. ए. बन गया है। यादव अब चुटकी लेने से नहीं चूकता है। वह पांडेय जी को अपमानित भी करता है। एक मार्मिक दृश्य है–'गोरे बदन, चौड़े माथे, श्वेत केश वाले पांडेय जी खादी की एक जीर्ण–शीर्ण धोती पहने और उसी का आधा भाग नंगे शरीर पर डाले हुए अपनी झोपड़ी के आगे पड़ी बेंच पर बैठे–बैठे उदास हो चले थे। उनके चंदन–चर्चित ललाट की सिकुड़न भरी रेखाओं में यादव जी की जीप से उड़ी हुई धूल समा गई थी। सोच रहे थे–यादव उसे अपमानित कर गया। वह पहले ही कहता रहा कि यह काम उससे नहीं होगा। वह ब्राह्मण, पुराना कांग्रेसी, स्कूल का शिक्षक। क्या बुढ़ौती में छोटी जातियों के लोगों की तरह चाय पकौड़ी और सुरती बेचना ही उसकी तकदीर में रह गया था। उसने कितना मना किया लेकिन अपनी संतान के आगे किसका वश चलता है।' **(पृ. 35-36)**

स्वयं के बेटे की उपेक्षा पाकर भी वे बहुत दुखी हैं। अपनी ही संतान की उपेक्षा और दयनीय आर्थिक स्थिति के कारण पांडेय जी का दुखी होना स्वाभाविक है। समय के बदलाव साथ ही समाज की सोच भी बहुत बदल गई। यह पीढ़ियों का बदलाव है। लेखक ने पांडेय की दुखती रग पर अँगुली रखा है–'अब जीना ही कितने दिन है। लेकिन जी के मानने–न–मानने का ही सवाल तो नहीं है। उसे स्कूल से रिटायर हुए पाँच वर्ष हो गए, खेत के नाम पर तीन बीघे खेत–वह भी बाढ़ ग्रस्त कछार के खेत। छ:–सात आदमियों का गुजर–बसर कैसे हो? महेश तो पढ़–लिखकर परिवार सहित शहर चला गया नौकरी करने। उसका अपना ही गुजर–बसर मुश्किल से होता है। छोटा लड़का रमेश बहुत धकेलने पर भी आठवीं पार नहीं कर सका। लिपट गया खेती–बारी में। उसके तीन बच्चे हैं, दोनों जून भरपेट खाना तो मिलता नहीं, ये खादी के कपड़े कहाँ से आए?' **(पृ. 36)** यादव की तरक्की देखकर उन्हें लगता है–'अब वह बड़ा नेता बन गया है। पता नहीं इस देश में कैसे इतने बड़े–बड़े चमत्कार हो जाते हैं। और उसे लगता है कि लोग कहाँ से कहाँ पहुँच गए और वह खादी की फटी धोती पकड़े बैठा हुआ है।' **(पृ. 37)** पांडेय जी सोचते हैं कि गाँव में एक अदद सड़क होने पर उनकी उन्नति की संभावनाएँ बनेंगी। एक अच्छी दूकान खोलने की इच्छा है उनकी। एक खादी की धोती खरीद सकने में असमर्थ पांडेय जी की दशा को लेकर लेखक ने आर्थिक तंगी का जो मार्मिक चित्र खींचा है वह समाज में बढ़ रहे आर्थिक वैषम्य और भ्रष्टराजनीति का उदाहरण है।

गाँव के एक गरीब और खेती करने वाले मजदूर के शोषण और उत्पीड़न की कहानी है 'सर्पदंश।' ये सर्प गाँव के प्रधान आदि सत्ता और प्रशासन के निकट के लोग हैं। भवानी बाबा की सिद्धि के चमत्कार से साँप काटने पर गोकुल को बचा लिया गया। यह अंधविश्वास लोक में जीवित रह गया। आधुनिक चिकित्सा को न समझने की विडंबना बची रही। इसी पृष्ठभूमि में मूलकथा निर्धन गोकुल के परिवार की बदहाली और शोषण की है। गोकुल मरना चाहता है; क्योंकि परिवार के भरण–पोषण के लिए उसके पास न अपना साधन है और न ही धन। हलवाही में मिले खेत पर भी उसका अधिकार नहीं है। प्रधान के खेत से मक्के की बालियाँ तोड़ लेने पर चोरी का इल्ज़ाम लगा दिए जाने पर वह दुखी है। यह नाइंसाफी है, क्योंकि खेत को वही ज़ोत–बो रहा है। फसल पैदा होने पर प्रधान के मन में लालच और बेईमानी आ गई। गोकुल को खेत के बदले बंजर भूमि दे दी गई, जिसे गोकुल ने मंजूर नहीं किया और प्रधान की नौकरी न करने का निर्णय लिया। प्रतिक्रिया में गोकुल रात में चोरी से उस खेत से मक्के की बालियाँ तोड़ लेता है। साँप के काट लेने पर उसे घबराहट नहीं हुई; क्योंकि वह जिंदगी से छुटकारा पाना चाहता है। भूख से मरते परिवार का दर्द उससे देखा नहीं जा रहा था। परंतु बचा लिये जाने पर अपने बच्चों को लिपटकर रोते देखकर उसका मन बदल गया और उसने निर्णय लिया कि 'मैं जिऊँगा, मैं अपने परिवार के लिए जिऊँगा। जिस खेत को मैंने पसीने से सींचा है, उसकी फसल काटूँगा। वह फसल

मेरी है। मैं दूसरे गाँव के अपने भाइयों को जमा करूँगा। मैं अकेला नहीं हूँ।' **(पृ. 56)**

अपने प्रति अन्याय वह सहन नहीं कर पाता है। चोरी का इल्ज़ाम लगाये जाने पर गोकुल प्रधान से प्रतिवाद करता है और अपने हक़ की बात करता है–'खेत तो आपका है लेकिन फसल मेरी है।' 'देखिए, गाली मत दीजिए, आपका हलवाहा हूँ, गुलाम नहीं।' प्रधान के लोग उसे पीटते हैं। गोकुल की मौत हो गई। इस घटना के विरोध में हरिजन टोली के थोड़े से लोग दमित आक्रोश लिए खड़े हो गए। गोकुल का लड़का दूसरे गाँव के अपने जाति भाइयों को इकट्ठा होने को कहता है। हरिजन नेता के आह्वान पर सब जीने के लिए एकजुट होकर साँपों से लड़ने का मंसूबा बाँध लेते हैं।

'रहमत मियाँ' एक नायाब चरित्र हैं, जो पेशे से दर्जी हैं। अपने इस काम में बेपरवाह। मन की मौज। सस्ते में लोगों के कपड़े सिलता है। मनमौजी है। फक्कड़पन में जीता है। उसके बारे में लिखे ये शब्द देखिए–'कैसा है यह आदमी। इतना हुनर इसके हाथ में है और एक दुकान तक नहीं खोल सकता। और घर भी काम ले आता है तो मन हुआ किया, मन हुआ नहीं किया। मन हुआ तो दिन–भर में दे दिया, नहीं मन हुआ तो दो महीने तक पता नहीं। औलिया है। ऐसे फक्कड़ से कोई दुकान चलती है क्या? **(पृ. 63)**

जिनके पास अपनी जिंदगी में घटित ढेरों कहानियाँ हैं जिसे वे बाबू जी को सुनाते हैं। रविन्दर की कहानियाँ फिल्मी प्रभाव से मुक्त नहीं हैं। रहमत मियाँ का आग्रह है कि 'बाबूजी आप मेरी इन कहानियों को अपनी कलम से धार दीजिए। मेरी कहानियाँ मेरे पास ही रह जाएँ तो क्या फायदा। आपकी कलम पर चढ़कर वे न सिर्फ अधिक असरदार हो जाएँगी, बल्कि दूर–दूर तक फैल जाएँगी। मेरी कहानियों से समाज का, इंसानियत का कुछ भला हो तो मुझे बेहद चैन मिलेगा बाबूजी।' **(पृ. 60)** रहमत मियाँ हिंदू–मुस्लिम सौहार्द के प्रतीक हैं। उनका एक बेटा है जो किसी हिंदू की औलाद है जिसका नाम मोहन अली रखा है। इस नामकरण के मूल में गाँधी के नाम की प्रेरणा है। गाँधी का मोहन और अपना अली जोड़ कर उसने बेटे का नाम मोहन अली रखा है। रहमत मियाँ बाबू जी को बताते हैं कि यह बेटा उनके मकान मालिक के बड़े बेटे का लड़का है जो दुबई चला गया और फिर लौटकर आया ही नहीं। उसकी पत्नी गर्भवती हो गई थी। लोकलाज के भय से मकान मालिक ने यह बच्चा रहमत मियाँ को दे दिया। रहमत ने अपने बच्चे की तरह पालन–पोषण किया। रहमत अली कहते हैं–'लेकिन मैं आपकी मुसीबत को अपनी खुशी में बदलना चाहता हूँ देखिए मुकेश जी मुझे किसी अदनामी–बदनामी का डर नहीं है। आप लोग बदनामी के डर से एक नन्हीं सी जान से खेल रहे हैं। उसे मेरी झोली में क्यों नहीं डाल देते। सुन लीजिए, अभी तो मैं आपकी इज्जत बचाने के लिए अपनी इज्जत दाँव पर लगा रहा हूँ। इसके बाद मैं आपके घर का सारा भंडाफोड़ कर दूँगा और बच्चे की हत्या का जुर्म लगाऊँगा। रहमत की बीबी सकीना को पहले यह बच्चा स्वीकार नहीं हुआ। किंतु, समझाने–बुझाने पर वह बच्चे को अपनाने के लिए राजी हो गई। यह बच्चा बड़ा हुआ तो उसकी अच्छी शिक्षा की चिंता रहमत को हुई और उन्होंने अच्छे स्कूल में एडमीशन का प्रयास किया है। बच्चे के नाम मोहन अली पर लोगों को आपत्ति है। बच्चे के एडमीशन की बात भी हो चुकी थी। इस बीच रहमत से बाबू जी की भेंट मुलाकात नहीं हुई।

बाद में पता चला कि सीलमपुर के दंगे में रहमत अली की हत्या हो गई। रविन्दर ने सारा घटनाक्रम बताया और कहा कि दंगे के दौरान रहमत की बहादुरी दाद देने लायक़ है। 'वे छाती तान कर खड़े हो गए और ललकार के बोले', देखो तुम्हारे सामने मैं खड़ा हूँ। मैं न हिंदू हूँ न मुसलमान। मैं इंसान हूँ और मेरी दूकान में भी न हिंदू हैं और न मुसलमान। सब मेरे भाई हैं। बेगुनाहों का खून बहाने निकले हो, कुछ तो शर्म करो। दरवाजा नहीं खुलेगा। जिसे दरवाजे के अंदर जाना हो, पहले मेरी छाती पर से गुजरे। 'धाँय' न जाने किस ओर से गोली आई और 'या खुदा' कहकर रहमत चाचा में गिर पड़े।' **(पृ. 69)**

रहमत चाचा की इच्छा और बच्चे को पढ़ाने का सपना रविन्दर, जीवन महतो और यूसुफ तीनों ने मिलकर पूरा करने का संकल्प लिया है। रहमत की ख्वाहिश थी कि 'उसमें हिंदू का खून है, मुसलमान की परवरिश है सरदार युवक की मोहब्बत है। मेरी ख्वाहिश है कि पढ़ लिखकर यह एक बड़ा इंसान बन जाए।' **(पृ 69)** इस कहानी को पढ़ते हुए हमें 'धूल का फूल' फिल्म में मोहम्मद रफी द्वारा प्रस्तुत गीत का एक मुखड़ा याद आया–'न हिंदू बनेगा और न मुसलमान बनेगा। इंसान की औलाद है इंसान बनेगा।'

मामूली–सी घटना या प्रसंग में जीवन के रंग भरने की कला और संवेदना रामदरश मिश्र में खूब है। लड़की के प्रति माता–पिता की उपेक्षा समाज का सबसे घृणित पक्ष है। इस मानसिकता से हम आज भी उबर नहीं पाए हैं। यही तथ्य–सत्य 'लड़की' कहानी में उद्घाटित हुआ है। ग्रामीण परिवार में लड़की के प्रति दुर्व्यवहार कोई नयी बात नहीं है। भाई अपनी बहन को परेशान करता है तो वह सहन कर लेती है, किंतु बहन के डाँट–डपट देने से भाई चीख–चीखकर रोने लगता है। माँ बेटी को ही दोषी मान लेती है। बेटे की ग़लत तरफदारी देखकर बेटी दुखी हुई। माँ बेटी से घर का सारा कामकाज करवाती है। खाने–पहनने में भी वह बेटी की उपेक्षा करती है। बेटा माँ के दुलार–प्यार में बिगड़ने लगा है। बेटी के मन को कहानीकार

पढ़ लेता है–'लड़की चुपचाप मार खाई–सी अपनी जगह सिमटी–सिकुड़ी बैठी थी।' **(पृ. 94)** इस दुर्बल मानसिकता से ग्रामीण समाज आज भी ग्रस्त है।

एक स्त्री की तलाकशुदा जिंदगी के तनाव, उसके आर्थिक संकट, भटकाव और बच्चे की परिवरिश, कानून की मदद से बच्चे को उसकी माँ से अलग कर दिया जाना और दूसरी शादी कर लेना आदि समस्याओं पर आधारित 'एक भटकी हुई मुलाकात' कहानी बहुत मार्मिक है। सुधांशु और अंजना के वैवाहिक जीवन में आये बिखराव के मूल कारणों में दोनों का अहंकार प्रमुख है। कोर्ट के निर्णयानुसार बेटा मनोज पाँच वर्ष तक अपनी माँ अंजना के पास रहता है। माँ अंजना बेटे को लेकर बहुत परेशान है। 'बीच–बीच में अंजना मनोज के अलग होने की कल्पना से उदास होती है जैसे किसी ने एकाएक उसके प्राण रस को सोख लिया हो और मनोज को गीले वक्ष पर चिपका कर अपने सारे दर्द बिखेर देती। पाँच वर्ष पूरे होने पर सुधांशु आया मनोज को ले जाने के लिए।' **(पृ.120)**

अंजना बेटे को मनोज के हाथों नहीं सौंपना चाहती है, किंतु वह विवश है। वह विरोध करती है–'नहीं दूँगी, नहीं दूँगी, नहीं दूँगी। कानून तुम्हारे पक्ष में है तो क्या हुआ? मनुष्य के कुछ नैतिक अधिकार भी तो होते हैं। मनोज मेरे प्यार की बूँद–बूँद पीकर बना है, विकसा है। यह मुझसे अलग होगा तो मैं सह लूँगी, बहुत सी नारियाँ सहती हैं लेकिन मनोज बिखर जाएगा और बेटे का बिखरना माँ नहीं देख सकती। यह अनाथ हो जाएगा, प्यार न पाकर टूट जाएगा।' **(पृ.120)**

अंतत: बेटे मनोज को उसका पिता अपने साथ लेकर चला जाता है। अंजना बेहद लाचार है। कहानी का आरंभ ट्रेन यात्रा में अंजना की अपने तलाक़ लिए पति, बेटा मनोज से अकस्मात् हुई मुलाकात से होता है। पूरी कहानी ट्रेन–यात्रा में संपन्न होती है। स्मृतियों में अंजना की तलाकशुदा जिंदगी की झलक हमें मिलती है। इस ट्रेन यात्रा में अंजना के तलाकशुदा पति के साथ उसकी नवविवाहिता पत्नी सीमा और बेटा मनोज भी है। उनमें परस्पर बातचीत की कोई गुंजाइश नहीं है। अंजना जब अकेली रात में स्टेशन पर उतरती है और अपने बच्चे के लिए एक पैकेट छोड़ जाती है तब भावनात्मक स्तर पर पाठक को अंजना का अकेलापन अखर जाता है। दांपत्य–जीवन में आये अलगाव की पीड़ा एक स्त्री के हिस्से में आती है। कहानी का अंत होते ही पाठक दु:ख की अनुभूति में डूब जाता है।

माँ की ममता मौन है। घर–परिवार में एक औरत की अनुपस्थिति पूरे परिवार को बहुत अखरती है, सभी को रुलाती है। किंतु, एक बच्चे की जिंदगी में माँ का अभाव कितना असर डालता है, यह कहानी उस बिन माँ के बालक बीनू की व्यथा कथा का बयान है। बीनू यानी विनोद जैसा अबोध बच्चा अम्मा के तीर्थ नहाकर आने का अर्थ नहीं समझ पाता है। अपनी मृत अम्मा के लौट आने का इंतजार रहता है उसे। 'बाबू जी उसे गंगा जी पहुँचा कर लौट आए थे, कहते थे, अम्मा बाद में आएगी। कब आएगी चाचा? मैं तो कितने दिन से यहाँ आकर उसे बुलाता हूँ। अम्मा के बिना अच्छा नहीं लगता है चाचा। कुछ भी अच्छा नहीं लगता। अम्मा कितना नहा रही है चाचा? उसे मेरा मोह नहीं लगता अब? चाचा चंपा कहती है की अम्मा मर गई, अब कभी नहीं आएगी। वह गंगा जी में डूब कर भगवान के यहाँ चली गई। मरना क्या होता है चाचा बाबू जी इतने बड़े होकर झूठ बोलेंगे चंपा तो बड़ी झूठी है। झूठ बोलती है चाचा। तुम भी रोते हो चाचा? जब अम्मा गंगा जी नहाने जा रही थी तो सभी रो रहे थे। बाबू जी रो रहे थे, गाँव के लोग रो रहे थे और तुम भी रोते हो! गंगा जी नहाने जाना कोई खराब बात है क्या चाचा?' **(पृ. 129)**

अनुत्तरित प्रश्न है मृत अम्मा का लौटना। लेखक यानी 'मैं' पात्र और बीनू की माँ का देवर–भाभी का रिश्ता है। अपने गाँव पहुँचने पर उसे भाभी की मृत्यु की पीड़ा का गहरा अहसास होता है। भाभी के न रहने पर पूरे घर में सूनापन पसर गया है। पिछली बार वह जब घर आया था तो भाभी थीं। अब उनकी स्मृतियाँ ही शेष रह गई हैं। भाभी के कहे हुए शब्द उसे व्यथित करते हैं। 'जल्दी–जल्दी आया करो बाबू। जाते हो तो आने का नाम ही नहीं लेते भाभी का भीगा हुआ स्वर गीले कपड़े की तरह मेरे अंग–अंग पर बिछ गया था। तुम्हें नहीं होता है, लेकिन देहात के घर में तो साल दो साल पूरा एक जुग होता है बाबू। शहर जाकर निर्मोही हो गए हो न! यहाँ तो मन बहुत उदासता है।' **(पृ. 130–131)** भाभी की आत्मीयता नायक के प्रति बहुत गहरी है। बदले हुए माहौल में पारिवारिक आत्मीयता दुर्लभ हो गई है। भाभी का यह लगाव ग्राम–जीवन का बड़ा मूल्य है। उसके शब्द देखिए–'और जल्दी की बात कही, सो जिंदगी का क्या भरोसा? कौन जाने, इस बार मुझे देख कर जा रहे हो, अगली बार आओ,न पाओ।' **(पृ.131)** दुर्भाग्य, भाभी की मौत पर ही वह गाँव आता है। भाभी की कही हुई बातें, हँसमुख व्यवहार सब कुछ याद कर वह बेचैन हुआ है। 'मुझे क्या पता था कि यह दृष्टांत भाभी पर ही चरितार्थ होगा। साल भर बाद लग रहा है कि भाभी उसी प्रकार दरवाजे पर होठों पर हँसी और आँखों में अगाध व्यथा लेकर मुझे विदा दे रही हैं। मुझे लग रहा है कि वे कमरे के एक कोने में बैठी संदूक से पैसे निकाल रही हैं। खाट पर लेटी हुई बीनू को कहानियाँ सुना रही हैं। मेरे पैर अपने आप अंदर बढ़ गए जैसे एक भयंकर खालीपन चीत्कार कर उठा हो डरकर मैं पीछे लौट आया। **(पृ. 131)**

भाई की मनोदशा और घर में भाभी का न होना अखरने वाला है। भाई की पीड़ा इन शब्दों में व्यक्त हुई है–'तुम तो नहीं आ सके, बड़ी पीड़ा से मरी है। लक्ष्मी घर सूना कर गई! कुछ सोच नहीं पाता, इस बीनू का क्या करूँ? घर में दूसरी कोई औरत होती तो शायद सँभाल लेती। मैं अकेले क्या–क्या करूँ–घर–गृहस्थी, अंचायत–पंचायत सौ लफड़े। बीनू जैसे एक बड़े तपते हुए सुनसान में कोई चिड़िया का बच्चा आ फँसा हो इस असहाय को मैं कैसे समझाऊँ? सुधीर तुम्हारी भाभी विनोद की व्यथा समझती थी। उसकी आँखों में एक गहरी काली रात थरथरा रही थी, वह इसीलिए मर–मर कर मरी है। **(पृ.133)**

पूरी कहानी बीनू यानी विनोद के इर्द–गिर्द घूमती है। परिवार में सभी उसे लेकर चिंतित हैं। माँ के घर आने के बारे में बार–बार उसका पूछना सभी को रुला देता है। उसके सवालों का उत्तर किसी के पास नहीं है।

लेखक लिखता है–'बीनू उसी आम के पेड़ के नीचे पश्चिम की ओर मुँह किए खड़ा था एक अनंत प्रतीक्षा। यह कहानी एक बच्चे के मनोभाव से जुड़ी हुई है जिसकी माँ अब इस दुनिया में नहीं रही और मृत्यु से अनजान बालक माँ के लौटने का इंतजार कर रहा है।

रामदरश मिश्र की प्रतिनिधि कहानियों के इस संकलन की अंतिम कहानी है–'पिता–पुत्री' जो आकार में छोटी है। शिवनाथ और उनकी बेटी राधा की कहानी है। राधा के विवाह की चिंता शिवनाथ को परेशान करती है। राधा की माँ नहीं है। पिता शिवनाथ भी गूँगे हैं। अकेलेपन की चिंता उसे सताती है। वह विवाह न करने का निर्णय लेती है। राधा तो पिता से अलग होने की कल्पना से काँप जाती है। बाबू जी की चिंता उसे परेशान करती है। भाई–पट्टीदार राधा के बड़े होने के कारण विवाह की चिंता की याद दिलाते हैं। मामा के प्रयास से राधा की शादी हो गई। गाँव वाले, रिश्तेदार सभी प्रसन्न हुए थे। राधा अपने पति गोपाल के साथ पिता से मिलने आया करती थी। राधा के पिता के नाम खेती को हड़प लेने की नियति से चाचा हरिहर एक षड्यंत्र रचता है। वह राधा से एक कागज पर हस्ताक्षर करवा लेता है। शिवनाथ की मृत्यु होने पर चाचा हरिहर और कुबेरनाथ ने मिलकर भाई की जमीन जायदाद हड़प लेने की नीयति से उन्हें मौत के मुँह में पहुँचा दिया। मनुष्य के स्वार्थ की पराकाष्ठा में सारे रिश्ते बिला गये। पारिवारिक रिश्तों के पतन की त्रासदी सच्चे आदमी को विचलित करती है ।

'प्रतिनिधि कहानियाँ' संग्रह में चार लंबी कहानियाँ संकलित हैं– कहानी माँ, सन्नाटा और बजता हुआ रेडियो **(पृ. 12)**, मुर्दा मैदान **(पृ. 12)**, वसंत का एक दिन **(पृ. 22)** आखिरी चिट्ठी **(पृ.–21)** लंबी कहानियों का कैनवास विस्तृत है। पात्रों और घटनाओं की बहुलता के कारण कथावस्तु में विस्तार आ गया है। कहीं–कहीं प्रसंग विशेष में विवरणात्मता अर्थात् व्यंजक ब्यौरे के कारण भी कहानियाँ लंबी हो गई हैं? दृश्य विधान की अधिकता ने भी कहानियों में जगह घेर रखा है। धीमी गति से कथा का ताना–बाना बुना गया है।

बेहद कुरेदने वाला शीर्षक है–'मुर्दा मैदान' कहानी का। आरंभ में ही लेखक ने कथ्य का खुलासा शहर की दुर्गंधशाला / कूड़ाघर के वीभत्स वर्णन से किया है। ध्वन्यात्मक प्रसंग भी रोचक बन पड़े हैं। जैसे कुत्ते के 'भौंकना' को शब्द दिए गए हैं। कूड़े के ढेर में कबाड़ ढूढ़ते बच्चे, उनकी मनोवृत्ति, परेशानियाँ और उनके मुरझाए सपने को समझा जा सकता है। 'नरक के कीड़ों' संबोधन से जान सकते हैं इनकी तकदीर। मीलों कूड़ा फैला हुआ है, फिर भी कूड़े के लिए लड़ाई। समाज का नंगा सच है। जिसे चील, कौए, कुत्ते और सूअर भी नहीं छू सके उसे वह उठाकर पेट में झोंके। भोला, बहन लक्ष्मी और उसके बाप की करुण कथा है। भोला को उसका गरीब बाप पढ़ा–लिखा कर बड़ा आदमी बनाना चाहता था। बिना दवाई के भोला की माँ निमोनिया से मर गई। उसका बाबू और माँ ईंट–गारा ढोने का काम करते थे। एक गरीब छोटा आदमी अपने बेटे को बड़ा आदमी बनाने के सपने देखता है, किंतु आर्थिक स्थिति बहुत दयनीय है–'इतने दिनों से हम दोनों हाड़ पेर–पेरकर मँजूरी करते रहे, लेकिन दवाई के लिए चार पैसे भी नहीं बचा सके। इस महँगाई के जमाने में रोज आधा पेट भोजन मिल जाए, यही बहुत है। बेटे, जो नरक हमने भोगा है उसे तू भी भोगे, यह नहीं होने दूँगा। मन लगाकर पढ़ और बहुत बड़ा आदमी बन।' **(पृ. 45)** भोला और उसकी बहन लक्ष्मी को बाबू ने बहुत प्यार से पाला–पोसा है। मजूरी ही इस परिवार की कमाई का जरिया है। बाबू, भोला और लक्ष्मी सब मजदूरी करते हैं। बाबू चाहते हैं कि लक्ष्मी पढ़ लिख ले। सयानी हो रही बेटी लक्ष्मी की शादी की फिक्र भी है उसे। एक शाम जब लक्ष्मी काम से नहीं लौटी तो बाबू रातभर रोते रह गए। थाना–पुलिस भी नहीं ढूँढ़ पायी लक्ष्मी को। और एक दिन बेटी की मृत्यु की खबर पाकर बाबू 'चिंघाड़ मारकर गिर पड़े।' बेटी को मारने का इल्ज़ाम पुलिस ने बाबू पर ही लगा दिया। थाने में बंदकर पुलिस ने पिटाई की। बाबू किसी का नाम न ले। उनका दुख समझने वाला कोई भी नहीं है। 'मेरी लड़की की जान लेने वाले भेड़ियों को पुलिस नहीं पकड़ती, उलटे मुझी को फँसाने की धमकी दे रही है। मेरी बेटी गई, इज्जत गई और अब मेरे ऊपर कलंक लगाया जा रहा है कि मेरे जुल्म से तंग आकर बेटी ने अपनी जान

दे दी है। वाह रे इंसाफ!' **(पृ 46)** बाबू की हालत देखकर बेटे को डर लगा।' पुलिस को लापरवाही और अपराधी का पक्ष लेने का दोषी मान लिया जाता है। मलखान जैसे कुछ लोग पुलिस के खिलाफ बगावती तेवर दिखाते हैं, उसे बुरा-भला कहते हैं, उसके खिलाफ लड़ने की योजना बनाते हैं, किंतु पुलिस के भय के कारण उनका आक्रोश दब जाता है। मलखान संगठित होकर इस अन्याय से लड़ने की बातें कहता है पर किसी का सहयोग व समर्थन नहीं मिलता है। मलखान का तेवर जायज है-'तुम सभी डरपोक हो और एक-दूसरे से कटे हुए हो। इसीलिए तो यह हरामजादी पुलिस जो चाहे सो कर लेती है। बाप से बेटी को छीनकर बाप को मारती है। पैसे वाले गुंडों की गुंडई की सजा हम लोगों को देती है और हम चुपचाप सह लेते हैं। संगठन करके तो देखो कैसी आग फूटती है तुम लोगों के भीतर से। यह आग पुलिस नहीं, पुलिस के बाप को भी झुलसाकर रख दे तो मेरा नाम मलखा नहीं।' **(पृ. 47)**

भोला का बाबू बीमारी से मर गया। वह अकेला रह गया। स्कूल की पढ़ाई-लिखाई छूट गई। पेट की आग बुझाने के लिए कबाड़ बीनने का काम करने लगा। हर जगह उसे पुलिस का भय सताता रहता है। हट्टी भी कबाड़ बीनता है। दोनों दोस्त हो गये हैं। हट्टी की पूरी सहानुभूति है भोला के प्रति। दोनों की स्थिति एक ही है। दोनों के मन में पढ़ाई को लेकर एक हूक बची हुई है। हट्टी और भोला जैसे लड़कों की पीड़ा एक ही है। हट्टी नहीं चाहता है कि भोला की पढ़ाई बंद हो जाये। वह कहता है कि 'यार भोले, तू पढ़ाई मत छोड़। मेरी कितनी ही इच्छा थी कि मैं पढ़ पाता लेकिन पैदा होते ही अपने को गरीबी के नर्क में पाया। माँ-बाप के होते हुए भी अपने को लावारिस समझता रहा। माँ-बाप भी तो जिंदा रहते मुर्दा थे। किसी को पढ़ते देखता तो दिल में हूक उठती कि हाय मैं भी पढ़ पाता।' **(पृ 50)** उसके माँ- बाप कहते हैं, 'हट्टी पढ़ाई-लिखाई हम लोगों के लिए नहीं है। हम लोग तो पैदा होते ही अपने-अपने पेट के हौज को भरने के लिए घूरे पर डाल दिए जाते हैं।' **(पृ 50)** यह कटु यथार्थ संवेदनशील व्यक्ति को तिलमिलाहट से भर देता है।

'वसंत का एक दिन' गाँव के सामाजिक जीवन में व्याप्त जातिगत भेदभाव के साथ ही समरसता के उभार को दबा देने की कथा है। जयराम और फुलवा की प्रेमकथा के अतिरिक्त अन्य प्रेम प्रसंग भी वर्णित हैं जो जातिगत विद्वेष की भेंट चढ़ गये हैं। नि:संदेह यह कहानी जातिगत विद्वेष में डूब गये सच्चे प्रेम की शिनाख्त है। जयराम का जीवन अपने परिवार जनों की घनघोर घृणा और उपेक्षा और अपमान के कारण दमित हो गया है। जयराम अपने ही परिवार में शोषण का शिकार होता है। पिता की मृत्यु के बाद सगे चाचा ने उससे विश्वासघात किया और उसकी जमीनों पर कब्जा कर लिया। चाचा ने अपने भाई को दिया गया एक भी वचन नहीं निभाया। 'मैं इस लड़के को अपने पुत्र से बढ़कर प्यार करूँगा आपके चरणों की कसम भाई साहब।' पिता जी के मरते ही चाचा को उसकी आँखों में सपनों की जगह कंकर-पत्थर दिखाई पड़ने लगा। 'पढ़ेंगे सरऊ-डिप्टी कमिसनर होंगे।' **(पृ 71)**

चाचा अपने भतीजा को थप्पड़ मारकर काम के लिए भेज देता है। 'जयराम के पिता उसके सपनों के लिए आठ बीघा जमीन और कुछ पैसे छोड़ गए थे जिसे चाचा ने हथिया लिया और बात-बात में थप्पड़ से पीटकर कहते हैं, अनाथ हो गए थे न, अपनाया न होता तो गली-गली भीख माँगते-फिरते। हमदर्द चाचा-परिवार और गाँव वालों की घिन भरी नजरों और लांछन भरी फटकार की तेजधार उसके कान के पर्दे को कर्र-कर्र कर चीर रही है।' **(72)** चाचा-चाची के व्यवहार ने उसका सब कुछ छीन लिया। इतनी कठोर घृणा और पीड़ा ने उसे सुन्न बना दिया। 'जयराम ने गाँव में उच्च समाज की जड़ मनोवृत्ति, सामाजिक रूढ़िवादिता और जातिगत भेदभाव आदि का खुलकर विरोध किया है। परिवार की भावनाओं को नकारते हुए निचली जातियों के प्रति प्रेम और सद्भाव का वह स्वयं का उदाहरण पेश करता है। हरिजन कोदई के गगरे से पानी पीना और उसके घर बना खाना खाकर उसने अपने आभिजात्य संस्कारों को धता बता दिया है। इसीलिए जयराम गाँव वालों को बहुत प्रिय है। गाँव में सभापति, नेता, मास्टर, पुरोहित धरम-करम का केवल लेक्चर झाड़ते हैं। गाँव में सब लोग इनकी करतूतों से परेशान हैं। धीरे-धीरे गाँव में जागृति आ रही है। इन उच्च वर्ग के अत्याचार, हरिजनों की बहू-बेटियों पर बुरी निगाह डालने पर हरिजनों द्वारा पिटाई की घटनाएँ, गाँव के तथाकथित बड़े लोगों की बेटियों और निचली जाति के लड़कों के प्रेम प्रसंग आदि से गाँव का माहौल बदलने लगा है। 'अब तक तो वे हमारी बहू-बेटियों से खिलवाड़ करने का हक समझते रहे हैं, लेकिन अब नहीं सहा जाएगा। हमारी टोली के कुछ लड़के भी शहर में पढ़ने लगे हैं और उन्होंने ही चमरौटी में आग पैदा की है। बड़ी जाति के लोगों ने उन्हें मारा भी, उनके घर चोरियाँ भी करवाईं और क्या-क्या नहीं किया। **(पृ. 75)**

जयराम ने अनुभव किया कि इन दस वर्षों में गाँव कितना बदल गया है। 'एक ओर बड़ी जात वाले पहले से ज्यादा हरामी हो गए हैं दूसरी ओर छोटी जातियों में जीने की आग पैदा हो गई है।' **(पृ 76)** गाँव के स्कूलों में पढ़ने वाली लड़कियों के बीच भी छुआछूत व्याप्त है। गाँव के ऐसे वातावरण में फुलवा के फागों की गंध जयराम के मन को महका गई। एक दिन फुलवा भी इज़्ज़तदारों की हवस का शिकार होती है और उन्हीं के हाथों मारी गई। भाई-बहन

के रिश्ते भी तार-तार होते हैं। जयराम का मन घृणा और आक्रोश से भर उठता है। वह इन इज़्ज़तदारों का भण्डाफोड़ करना चाहता है, लेकिन कौन पतियायेगा। जयराम अपने चाचा के परिवार की उपेक्षा, गाँव की उपेक्षा, गाँव-जवार की उपेक्षा से ऊबने लगा है। इक्कीस वर्ष का जवान जयराम तन्हाई काटने के लिए अपने में डूबने लगा था। वह धीरे-धीरे कलाकार बनने लगा है। ग्रामीण कलाओं के प्रति उसकी अभिरुचि जागृत हुई। कितनी ही वस्तुएँ उसने बनाना सीख लिया है। कुकुही वाद्य के माध्यम से दर्द की लहरें पैदा करने लगा। जीवन का दर्द कलाओं के जरिए ही कम किया जा सकता है। सब उसे पागल समझते हैं। लेकिन उससे उस पर कोई फर्क नहीं पड़ता है। उसकी भेंट फुलवा से हुई। उससे संवाद होता है।' उसे ऐसा लगा कि उसके सूनेपन में कोई आग लगा गया हो। उस दिन के बाद उसके भीतर एक अजीब उत्साह भर गया था। वह फुलवा को देखना चाहता था, मिलना चाहता था, लेकिन न जाने क्यों एक अज्ञात संकोच उसे घेर लेता था। **(पृ 82)**

सारी तिक्तताओं के बीच शहद की बूँद सी फुलवा उसकी जिंदगी में आती है। वह सोचता है कि 'कहीं चल कर मेहनत-मजदूरी करें और फुलवा के साथ आदमी की जिंदगी जिए। उसकी बहन और बहनोई उसका विरोध करते हैं। फुलवा छोटी जाति की है और जयराम पंडित। गाँव के जालिमपन से दोनों डरे हुए हैं। वह वनखंडी में बैठकर कुकुही बजाता है। फुलवा की याद आती है। इस फुलवा से मिलकर उसे बहुत अच्छा लगता है। फुलवा को संबोधित कर वह है कि-'फुलवा न जाने वह कौन तार है जो एकाएक हम दोनों के बीच जुड़ गया। वह तार दर्द का है, जय बाबू जो दर्द आपका है वही मेरा है, आपको देखते ही मुझे लगा कि मैं अकेली नहीं हूँ कोई मेरे जैसा भी है, मैं जन्म की दुखियारी हूँ जय बाबू पैदा होते ही मैंने एक ही बार एक माई और बकरी को खा लिया और शादी के बाद मरद को खा गई। कोई बच्चा भी तो नहीं हुआ जिसके सहारे जिंदगी काटती हाय बच्चे मुझे बहुत प्यारे लगते हैं।' **(पृ. 83)**

जयराम रोज-रोज चाचा-परिवार और गाँव वालों की जहरीली टिप्पणियाँ पीकर काम करता है। फुलवा और जयराम के बीच प्रेम पनप गया। 'फुलवा, रोती क्यों है, पगली! इस गाँव से निकल चलें, कहीं दूर, जहाँ कोई हम लोगों की जाति-पाँति न समझे। हम लोग वहाँ मेहनत-मजदूरी करके खाएँ और आदमी की तरह जिएँ। बड़ा जालिम है यह गाँव, प्यारी!' **(पृ. 88)** जयराम की जिंदगी में फुलवा उम्मीद की एक किरण -सी आई है। इसीलिए जयराम ने अपनी लाचारगी व्यक्त किया है, 'बोल-बोल, फुलवा! कुछ तो बोल। मैं तो एकदम टूट गया हूँ, तू ही बस सहारा है, मेरी मौत और जिंदगी का फैसला तेरे हाथ में है। तू भी चुप रहेगी तब क्या होगा!' **(पृ. 88)** फुलवा ग्लानिवश कहती है-

'तुम्हारा धर्म बिगाड़ा। लोग मुझे क्या कहेंगे, क्या कहेंगे? भगवान क्या सजा देगा? किंतु क्या करूँ, बाबू! मन ऐसा पापी है जो दुनिया में किसी के पास ठहरता ही नहीं, सभी जगह से पाप की तेज गंध आती है। घूम-फिर कर तुम्हारे पास ही लौट आता है।' **(पृ 89)** जयराम भी अपने मन की बात कहने से संकोच नहीं करता है।

'जिंदगी जीते-जीते इतना सीख गया हूँ कि प्रेम बिना आदमी, आदमी नहीं रह जाता। जिंदगी टूट जाती है। और वह प्रेम जो आदमी को बल दे, टूटने से उबारे पवित्र होता है, फुलवा! चाहे वह कहीं से मिले। बोल, मेरे साथ चलेगी? फुलवा पूछती है कहाँ? जयराम ने कहा-'नरक में, स्वर्ग में, आकाश में, पाताल में, कहीं भी इस गाँव से दूर। अब मैं बाभन नहीं हूँ, फुलवा। सिर्फ आदमी हूँ। मजदूरी करके खाऊँगा और तुझे खिलाऊँगा।' **(पृ. 89)** दोनों के मन की इच्छा पूरी नहीं हुई। फुलवा की बलात् सगाई दूर के एक गाँव के मल्लाह के साथ कर दी गई। फुलवा कलकत्ता अपने पति के साथ चली गई। वह एक साल के भीतर चल बसी। इधर गाँव में हुए एक अग्नि कांड में एक बच्चे की जान बचाते हुए जयराम बुरी तरह जल गया। जयराम सदा के लिए शांत हो गया था। जयराम और फुलवा की प्रेम कहानी का अंत मौत में होता है। कुछ फिल्मी स्टाइल में।

वृद्ध विमर्श और स्त्री के वैवाहिक जीवन की त्रासदी पर आधारित कहानी है 'आखिरी चिट्ठी।' प्रभा और उसकी चिट्ठियों के माध्यम से ही कहानी के सूत्र विकसित हुए हैं। कथा वर्णन में फ्लैश बैक पद्धति का भी प्रयोग किया गया है। प्रभा के मामा पुलिस विभाग में थे। डाकुओं के साथ हुई एक मुठभेड़ में गोली लगने से उनकी मृत्यु हो गई। कई डाकुओं को उन्होंने मौत के घाट भी उतार दिया था। पति की मृत्यु के बाद पत्नी यानी मामी की अपने ही बेटों की उपेक्षा के कारण दयनीय स्थिति हो गई।' नाते-रिश्ते कितने झूठे पड़ गए हैं। 'जिसके तीन जवान बेटे और तीनों अच्छा कमाते-धमाते हों वह अनाथ की तरह घूमें।' **(पृ.98)**

प्रभा के पिता का दुख यह है कि-'यह न्याय-अन्याय तो आदमी ने खुद बना लिए हैं। बुजुर्गों के प्रति उपेक्षा भाव पहले कहाँ था? अब देखो, कमाई-धमाई में डूबे हुए लड़के माँ-बाप के बेकार होते ही उन्हें बोझ समझने लगते हैं।' **(वही)** इसे वे राम का न्याय नहीं मानते हैं। बुजुर्ग माता-पिता के प्रति बेटों की उपेक्षा का मूल कारण उनकी दृष्टि 'नई शिक्षा, रहन-सहन और नई व्यापारिक मनोवृत्ति का न्याय है।' **(पृ. 98-99)** अंततः माँ के लिए यह व्यवस्था तय हुई-'तीनों भाइयों ने आपस में सलाह करके यह निर्णय लिया है कि

माँ और बहन बारी-बारी से तीनों भाइयों के पास साल-साल भर रहेंगी। 'एक माँ के लिए बेटों का यह निर्णय कितना दुखद है। माँ कहती हैं-'धिक्कार है ऐसे बेटों को! अरे, डूब मरो कमबख्तों, चुल्लू भर पानी में! इतने बड़े -बड़े ओहदे पर काम करने वाले बेटे और सब के सब कमीने, स्वार्थी। किसी के पास इतना बड़ा कलेजा नहीं है कि वह छाती ठोक कर कह सके-माँ मेरे पास रहोगी। यह मेरी माँ है, कोई चावल-दाल का बोरा नहीं।' **(पृ. 99)** हमारे समय का यह बड़ा सामाजिक सवाल है। यह कहानी मानवीय दृष्टि से यह प्रश्न खड़ा करती है। माँ की दशा यह है कि 'तीनों भाइयों के यहाँ बारी-बारी से उपेक्षा और अपमान का जो नरक हमने भोगा है। उसके बाद फिर उसी नरक में जाने की इच्छा नहीं होती।' लेकिन वह स्त्री एक माँ भी है, इसलिए वह सोचती है कि 'मैं यदि इन लड़कों के साथ नहीं रही तो दुनिया मेरे लड़कों को बदनाम करेगी, उन्हें नालायक कहेगी। और कुछ भी हो, इस माँ के साथ जवान बेटी हो, वह उसकी सुरक्षा के बारे में भी तो सोचती ही होगी, यद्यपि मेरी क्या सुरक्षा इन परिवारों में हो रही है, मैं खुद नहीं जान पाती हूँ। अपमान से मन टूटता है, काम से तन टूटता है, मैं पढ़ना चाहती हूँ मगर किसी को मुझे पढ़ाने में रस नहीं।' **(पृ. 100)**

प्रभा के पत्र से ज्ञात हुआ कि-उसकी माँ का देहांत हो गया है। वह अनाथ हो गई। उसकी शादी तय होती है और शादी का निमंत्रण विनोद और उसके पिता को मिलता है। तीनों भाई भी बहन की शादी में आते हैं। ससुराल में प्रभा के साथ सासु का व्यवहार अच्छा नहीं है। पति अपने साथ उसे नहीं ले जाता है। 'वह निकम्मी घरेलू औरत बनकर नहीं जी सकती।' उसने पति से कहा कि मैं जिंदगी जीना चाहती हूँ, उसे केवल दूसरों की अर्थहीन खुशी के लिए शव की तरह अपने कंधे पर ढोना नहीं चाहती या तो जिंदा रहूँगी या शव ही बन जाऊँगी। जीवित शव मैं नहीं बन सकती।' **(पृ. 110)** ऐसी ढेर सारी बातें प्रभा अपने पत्र में विनोद को लिखती है। विनोद को लगता है कि प्रभा चक्रव्यूह में फँस गई है। ससुर प्रभा की तकलीफ़ को समझता है और मौके पर उसकी तरफदारी भी करता है। 'तुम लोग मिलजुल कर एक देवी सी लड़की का नाश कर दोगे। क्या बिगाड़ा है उसमें तुम लोगों का? देखते-देखते कोफ्त हो गई!' **(पृ. 112)** प्रभा एक बेटी की माँ बनी। सारा घर बौखला गया था कि बेटा क्यों नहीं पैदा किया? प्रभा को जीने का सहारा मिल गया। उसी के लिए वह चित्र बनाती है, कविताएँ लिखती है। ससुर का प्रोत्साहन मिलता है।

विनोद को प्रभा प्राय: चिट्ठियाँ लिखती रही है। अपनी बीमारी की भी सूचना उसने पत्र में दी है। उसने अपने चित्रों का पूरा पुलिंदा विनोद को भेज दिया है और साथ में पत्र भी। लिखा है उसने' सचमुच मैंने अँगुली काट-काट कर खून निकाल-निकाल कर चित्र नहीं बनाए हैं, फिर भी ये मेरे खून से बने हैं। यह तुम्हारे पास सुरक्षित रहेंगे। बेटी यदि जिंदा बचे तो बड़ी होने पर उसे दे देना ताकि वही चित्रों के जरिए अपनी माँ को पहचान सके। कविताएँ भी भेजूँगी, उन्हें फेयर कर रही हूँ। फिर कभी।'(पृ. 114) विनोद पत्रों को पढ़कर बहुत उद्विग्न हो उठता है। यह उसकी आखिरी चिट्ठी थी। बहुत मार्मिक और दु:खभरी। पाठक को रुला देती है। प्रभा की अंतिम लंबी चिट्ठी की आखिरी पंक्तियाँ हैं-'माँ और पिता जी के संबंधों की ऊष्मा मुझे अपने दांपत्य जीवन में कहाँ मिली? यह तो ठीक उसके उल्टा जीवन मिला। प्यार के संबंध की ऊष्मा महसूस करने के लिए उसे छाती से चिपकाए मर रही हूँ। अच्छा भइया, अलविदा' **(पृ. 116)** जातिगत घृणा की परिणति प्रभा के जीवन के अंत से हुई है। कहानी का अंत एक आश्वासन भी है निराशा से बाहर आने का। प्रभा की बेटी के रूप में। लेखक ने लिखा है-'प्रभा की बेटी एक विद्रोह की कविता है, उसके प्यार और आग भरे हृदय से फूटी हुई एक मूर्त कविता। वह घूरे पर नहीं फेंकी जा सकती। नहीं, वह अवरोध पाकर और उठेगी, वह अपनी ही लपटों की झालर में अपनी रक्षा करेगी। प्रभा ने एक नई शुरुआत की है, जिसमें खुद तो होम हो गई, किंतु होम होकर उसने जो ताप और दीप्ति दी है, वह नहीं मरेगी।' **(पृ. 116)**

वस्तुत : रामदरश मिश्र की प्रतिनिधि कहानियाँ ग्राम जीवन का कच्चा चिट्ठा हैं। दु:ख-दर्द में घिसटते पात्रों को कहानीकार की सहानुभूति की आँच मिलती है। उनकी जिजीविषा और छोटे-छोटे सपने जीवन की विषम परिस्थितियों में भी शेष रह जाते हैं। उनमें जो ताप और दीप्ति विद्यमान है वह भविष्य का एक आश्वासन है। कहानी की संरचनात्मक बुनावट और भाषा-शैली की दृष्टि से अनेक कहानियाँ उत्कृष्ट हैं। पात्रों के मनोभावों को पढ़ने और उनके भीतर की उथल-पुथल को लेखक ने पूरी संवेदनशीलता के साथ उजागर किया है। पात्रों का आत्मसंघर्ष उनके आत्मतेजस व्यक्तित्व का परिचायक है। नि:स्संदेह श्री रामदरश मिश्र हमारे समय के अप्रतिम रचनाकार हैं। उनके शतायु पार जीवन की हम कामना करते हैं।

आचार्य, हिंदी विभाग
अध्यक्ष, संस्कृत विभाग
डॉक्टर हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय
सागर-470003 (म.प्र.)
मो. -9425656284

रामदरश मिश्र के उपन्यासों की भाषिक संरचना

– बी. एल. आच्छा

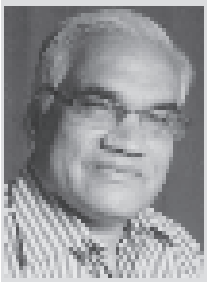

जन्म – 5 फरवरी 1950।
शिक्षा – एम.ए.।
रचनाएँ – पाँच पुस्तकें प्रकाशित।
सम्मान – म.प्र. साहित्य अकादमी सहित अनेक सम्मान।

डॉ. रामदरश मिश्र की उपन्यास–यात्रा आंचलिक परिदृश्यों और महानगरीय अनुभवों के दो /ध्रुवांतों के बीच का सेतु है। रासी और गोर्रा नदियों की उफनती धाराओं के बीच फैले जवार (अंचल) की समस्याओं, आजादी के बाद के परिवर्तनों और आंचलिक रंगों को बुनती हुई यह औपन्यासिक सर्जना महानगरीय बोध का स्पर्श करती है। महानगर से पुनरावर्तित होकर देहाती शहर के बदलते जीवन को दृश्यात्मक बनाती है। इसीलिए महानगरीय अनुभवों के भीतर से आंचलिक स्मृतियाँ झलकने लगती हैं और आंचलिकता के भीतर से शहर झाँकने लगता है। उपन्यासों में दुहरे कथाशिल्प, दुहरे परिवेश, दुहरी भाषा और दुहरे अनुभव संक्रमित हैं। 'अपने लोग' उपन्यास के पात्र नरसिंह साही कहते हैं–'अजब विडम्बना है साहब, कि महानगर में रहने वाले को आपकी कहानियों में देहात की मिट्टी की गंध मिलती है और इस देहाती शहर के लेखकों में महानगर साँस लेता रहता है।' **(पृ. 60)** पर ये उपन्यास आंचलिक और महानगरीय अनुभवों को अलग–अलग दायरों में विभाजित नहीं करते। मटियाली गंध और महानगरीय साँसों को फैशन के बतौर जिंदा अभिव्यक्ति नहीं देते। अनुभव की अन्तरंगता के आधार पर अंचल की तपन और महानगर के अनजबीपन में झुलसते तिरस्कृत होते मानवीय संवेदन को परिदृश्यात्मक शिल्प देने वाले ये उपन्यास प्रेमचन्द और आंचलिक धारा के संधि–क्षेत्र के उपन्यास है।

उपन्यासों की भाषा अंचल और देहाती शहर के जीवन और उसके भीतर होने वाले परिवर्तनों की यथातथ्यात्मक सर्जना करती है। आंचलिक जीवन के विविध रीति–रिवाजों, उत्सवों, भाषा–मुहावरों, सामाजिक, पारिवारिक सम्बन्धों और आजादी के बाद चुनावी राजनीति के कारण हुए विषाक्त परिवर्तनों को संकेतित करने में लेखकीय संवेदन जितना सूक्ष्म–ग्राही है, भाषा उसी संवेदन की प्रत्यायिका है। 'जल टूटता हुआ' के प्रमुख पात्र सतीश को लगता है कि–'कछार की भाषा एक नहीं है, कई हैं, उसके विविध स्वर हैं, उन्हें पहचानना है, हाँ उन्हें पहचानना है, मिट्टी के भीतर छिपे हुए सत्य को पहचानना है।' **(पृ. 99)** भाषा की पहचान जीवन की पहचान है, उसके विविध रंगों, कषाय–अनुभवों, तपते यथार्थ, रीतती हुई सामुदायिक लय और परिवर्तनों की पहचान। इसीलिए 'वह लोगों की आँखों में देखता था, आँखों में तरह–तरह की भाषा उगी होती।' **(आकाश की छत, पृ. 29)** आँखों में उगी भाषा मानवीय विवशताओं, भीतरी हिस्सों में होने वाली कसक और यथार्थ के प्रति समूची प्रतिक्रिया है। यह भाषा केवल परिवेश को ही मूर्त नहीं करती, एक समग्र भाव–बिम्ब की सर्जना करती है। ऐन्द्रिय और मानसिक संवेगों की जीवन सृष्टि करती है।

कथ्य की प्रकृति के अनुरूप उपन्यासों की भाषा एक छोर पर ठेठ आंचलिक देहाती है और दूसरे छोर पर परिनिष्ठित महानगरीय। लेकिन कथा प्रवाह इन दोनों छोरों के बीच में प्रवाहित है। प्रारम्भिक उपन्यासों में आंचलिक ध्वनियों, शब्दों और स्थानीय भाषिक प्रयोगों का व्यापक इस्तेमाल हुआ है। पर देहाती शहर और महानगर की ओर उन्मुख होती हुई उपन्यास–यात्रा आंचलिक रंगों और भाषिक प्रयोगों को कमतर करती जाती है। भाषा के सामान्य प्रवाह में ही आंचलिक शब्द या विकृत तत्सम शब्दावली का संदर्भानुकूल इस्तेमाल हुआ है। न तो आंचलिकता का मोह और न ही परिनिष्ठित भाषा सामान्य प्रवाह को बाधित करते हैं।

स्थानीय रंगत और परिवेशबोधी लय से संसिक्त ध्वनि–प्रयोगों से आंचलिकता की सृष्टि की गयी है। उपन्यासों में स्वरागम (लिंगोटी, पंचायत–वोंचायत, दवा–बोबा, इसकूल), स्वर–

विकृति (चोअअप, पइसा फइसा, खेलवाड़, दोखी, जोगाड़, रूसी (पीप), अनेति, दिनदयला, डौन, (डाउन); व्यंजनागम (बियाहल, चेलवा, जहवा), व्यंजन-लोप, (मालवी जी> मालवीय जी, जिनगी > जिन्दगी, कलट्टर); व्यंजन-विकृति (बेस्सा, विदमान> विद्वान्, गान्हीं > गाँधी, आन्ही > आँधी, सामिल, नखड़ा, बुबुहुहूत> भूत, खडजंत्र > षडयंत्र, मलिन्न > मलिनद, चमइनी, भयहु-बहू, एम्मेले > एम.एल.ए., डागदर-डॉक्टर, मरतक > मृतक) आदि स्तरों पर आंचलिक ध्वनि-प्रयोग जनपदीय जीवन और यथार्थ के व्यंजक हैं। लेकिन कहीं-कहीं असावधानता भी दृष्टव्य है। सामान्यत: आंचलिक ध्वनियों में 'श' के स्थान पर 'स' का प्रयोग हुआ है। पर कुछ स्थानों पर नहीं—'दिनदयला को खूब कचर कर मारूँ और अपनी आत्मा शांत करूँ।' **(बिरजू का कथन, जल टूटता हुआ, पृ. 238)** नितान्त गँवई पात्रों के मुख से आंचलिक बोली का उच्चारण अंचल की आत्मा को मुखर करता है, पर ऐसे अंशों की न्यूनता से उपन्यास अधिक सम्प्रेष्य एवं संवादी बन गये हैं।

विविध अनुरणनात्मक ध्वनियों का प्रयोग भी सार्थक एवं परिवेश व्यंजक है। लोकगीतों के सन्निवेश से उपन्यासों में लयात्मकता और अंचल का दर्द मुखर हुए हैं। पर अनुरणनात्मक ध्वनियाँ श्रुति-बिम्बों और आंतरिक लय को सँजोती हैं। पुक-पुक पुक-पुक (मशीन की ध्वनि), भट-भट भट-भट (ट्यूबवैल की ध्वनि), पड़-पड़ पर पुर (डाँठों के फटने की ध्वनि), हट्ट, हट्ट (खलिहान की गूँज), उर्र-उर्र (बकरी के पुकारने की ध्वनि) कच कच कुच कुच (कुचकुचिया पक्षी), कु ऊ . . . (कुत्ते का रिरियाना) मुर्रओ मुर्रओ (पक्षी का रिरियाना), किरी रिरि किरी रिंगरिरी (सारंगी की ध्वनि), ठिड्, ठिंग धप्प, विधप्प, धिधप्प (तबला), खड ड ड खन खड ड ड खन (जूतों की आवाज), सपासप (बेंत की मार की ध्वनि), धम्म-धम्म (पीठ पर मुक्के की आवाज), घुर-घुर घुर-घुर (पानी गिरना), गडम, गुडम, गुडम- कड़कक, कड़डक छर-छर छर-छर (बादल, बिजली व बरसात की ध्वनि), हहसास- हहसास (लहरों का गरजना), झाँय झाँय झाँय (बरगद का हहराना), झक् झक् झक् (कुलियों का दौड़ना) आदि अनेक अनुरणनात्मक ध्वनियाँ मूर्त हुई हैं। कभी-कभी तो इनसे प्रकृति का सन्नाटा, कभी भयावना शोर, कभी परिवेश का रीतापन और कभी पात्रों की मन:स्थितियाँ व्यक्त हो जाती हैं। 'आकाश की छत' में कुतिया की रिरियाहट रात की खामोश भयानकता को गहरा कर देती हैं। 'जल टूटता हुआ' और 'आकाश की छत में छपाक्' ध्वनि सन्नाटे को चीरकर स्वप्नभंग और अमंगल आशंकाओं को मूर्त कर देती है।

उपन्यासों में कथात्मक, वर्णनात्मक और विवरणात्मक अंशों की प्रमुखता के कारण परिवेशबोधी शब्दावली का सार्थक और सटीक उपयोग हुआ है। अंचल की बोली जीवन से सीधा साक्षात्कार कराती है। लेकिन सम्प्रेषण का संकट उत्पन्न न हो, इसके लिए उपन्यासकार ने सामान्य हिन्दी वाक्यों के बीच में ठेठ आंचलिक शब्दों को गूँथ दिया है, ताकि वे ग्राम्य जीवन की सम्प्रेष्य झलक दे सकें। खेत-खलिहान, रीति-रिवाज, प्रकृति, मौसम, पशु पक्षी, दिनचर्या, हास-परिहास, गाली-गलौच, उत्सव-त्यौहार, राजनीति आदि से सम्बद्ध अंचल की शब्द-संपदा अछूते परिवेश और गँवई जीवन को यथार्थ स्वर देती है। धारी (ठान), गम्मज (हँसी-मजाक), कलन्दर (फालतू) घाट करते (आशनाई करते) भरभट्ट (अपवित्र), तार भाठ, चकरोद, फट्ट अँगिया बेताल, पेटमडुवा, चालिसांदर, साड़ा तोड़ी, मकुनी आदि शब्द नितान्त आंचलिक हैं। हरवाहिन, बियाहल, सवति, करान्ती, डेवड़ी, नताइत आदि शब्द स्थानीय प्रभाव वाले तद्भव शब्द हैं। 'पानी के प्राचीर' और जल टूटता हुआ उपन्यासों में आंचलिक शब्दों की सघनता है। पर बाद के उपन्यासों में ऐसे प्रयोग कमतर हैं। उनका प्रयोग अंचल की स्मृतियों या ग्राम सम्बद्ध पात्र-वर्णनों में ही हुआ है।

अंग्रेजी के शब्दों का प्रयोग शहरी परिवेश और पात्रों से सम्बद्ध अंशों में ही हुआ है, यद्यपि अंग्रेजी शब्दों के विकृत रूपों का प्रयोग गँवई चित्रों में ही हुआ है। स्मगलिंग, टार्च, टेंपरेरी, जनरलाइज्ड, फिलासफर, इल्यूजन आदि शब्द शिक्षित पात्रों के संवादों से प्रयुक्त हुए हैं। सामान्यतया अंग्रेजी शब्दों में हिन्दी के बहुवचन वाचक प्रत्ययों को जोड़कर अंग्रेजी के बहुवचनान्त बनाए गए हैं, टीचरों, कोर्सबुकों जैसे प्रयोग हिन्दी में सामान्य हैं। टेन्थ, एक्जाम्स, जैसे कटवाँ (Clipped) अंग्रेजी शब्दों का भी व्यवहार हुआ है।

संस्कृत और उर्दू शब्दावली के हिन्दी में प्रचलित शब्दों का सामान्य प्रयोग हिन्दी के जीवन्त रूप को ही दर्शाता है। जहन्नुम,

शगल, हकीकत, तहजीब जैसे शब्द हिन्दी को वर्तमान प्रकृति में बस गये हैं। प्लावन, स्पन्दित, संत्रास, हतदर्प जैसे तत्सम शब्द भी उतने ही प्रचलित हैं। कतिपय शब्द लेखक ने गढ़े भी हैं—अरलम-तरलम, दरहम-वरहम, जो अगड़म-बगड़म जैसे प्रचलित शब्द के लय पर गढ़े गये हैं। भाषा में इस प्रकार का संतुलित प्रयोग कृत्रिमता के स्थान पर जीवतंता और भाषा के विकसित रूप को दर्शाता है।

वर्णनात्मकता के बावजूद शब्द-प्रयोग में परिवेश को मूर्त कर देने की शक्ति है। फट्टर-फट्टर जूता फटफटाता हुआ, सटर-सटर जीभ चला रहा है, कमाई के तमाम रुपए खरखरा दिए, वे मुल्हुर-मुल्हुर ताकते रहे, अहक-अहक रो रहे हैं, टिनन-टिनन टिनन रिक्शे, नल पर हुचुर-हुचुर पानी पीते हैं, मटर के दाने को निकाल कर पुडुर-पुडुर पुड़रा लिया, गन्दे बजबजाते हुए नाबदान जैसे प्रयोग क्रिया की मूर्तता के कारण जीवन्त और यथार्थग्राही बन गये हैं। बिम्बात्मक या प्रतीकात्मक मूर्तता के उदाहरण कम हैं-आँसू में भीगी हुई खोह-सी शून्य आँखें, 'चट्टान-सी उदासी', 'फूले गुब्बारे के समान उड़ता मन। यों अंचल को व्यापक और समग्र बिम्ब दिया है।

अपशब्दों अथवा अश्लीलता बोधक शब्दों का प्रयोग भी यथार्थ को व्यंजित करता है। यह धारणा का एक पक्ष है। उपन्यासों में इनका प्रयोग ग्रामीण परिवेश में सीमित स्तर पर हुआ है-नवाब के नाती, फलानचीन मारी, दहिजरा, सोगियानवनी, मरकीनवना, तेल लगाने गया है आदि। रांड और रंडी की गालियों के प्रयोग आम हैं, जो गँवई जबान पर चढ़कर बोले हैं। शहरी परिवेश में प्रतिक्रियावादी, कम्युनिस्ट, जनसंघी आदि दल या विचारधारापरक संज्ञाओं-विशेषणों से परस्पर लांछित किया गया है। बुद्धिजीवी परिवेश को ये शिष्ट गालियाँ हैं।

उपन्यासों में वाक्य गठन भाव-वृत्तियों की दृष्टि से प्रभावपूर्ण है। सामान्य कथा-प्रवाह में छोटे-छोटे साधारण वाक्य गत्यात्मकता ला देते हैं। सभी उपन्यासों में वाक्य गठन में ऋजुता, संक्षिप्तता और प्रासादिकता है। अभिधात्मक कथनों के कारण सम्प्रेष्यता अधिक है। परन्तु प्रकृति-चित्रों, मानसी स्पन्दनों, रोमानी अभिव्यंजनाओं, अभावात्मक परिदृश्यों और ओजपरक संदर्भों में वाक्य रचना विशिष्ट बन गयी है। शब्दों, पदबंधों या वाक्यांशों की पुनरावृत्ति, समान संरचना वाले उपवाक्यों की योजना आदि प्रविधियों से भावात्मक गद्य-लय का सर्जन किया गया है-

(अ) भीतर से बाहर तक वह रीता है / **पेट भी रीता, मन भी रीता / परिवेश भी रीता, वर्तमान भी रीता / भविष्य भी रीता ... (आकाश की छत, पृ. 86)**

(ब) शारदा शारदा, सुगंध की एक अनुभूति/कोमलता का एक स्पर्श, स्वच्छता की एक भाषा और आँखों की निर्मम गहराइयों के पार / कोई मर्ममयी कहानी-(जल टूटता हुआ, पृ. 95)

(स) उसे लगा कि वह बाँहें फैलाए कह रही है-नहीं, मैं आज नहीं जाने दूँगी / पास के बेढ़े से फैलती हुई रातरानी की खुशबू चिल्ला रही है / नहीं जाने दूँगी और कुछ देर पहले की रोई हुई बाँसुरी की सारी तानें / इकट्ठी होकर आगे खड़ी हैं और कह रही हैं-नहीं, नहीं जाने दूँगी। (जल टूटता हुआ, पृ. 84)

(द) सीलन भरी बरसातों में सीलती आँखें / मिट्टी के खाली बरतनों में बार-बार झाँकती और उदास लौट आती आँखें / भहरा-भहरा कर गिरती हुई दीवारों को देखती आँखें / सपाट असीम सन्नाटे से लदी हुई अपमानित पीड़ित और टूटी आँखें। (अपने लोग, पृ. 306)

(इ) इन किसानों के घर पर दर्द से टूटती हुई एक अर्द्धनग्न नारी है / जवानी के भार से भारी और अभावों के शृंगार से बोझिल एक बेटी है / टूटी मड़ैया के नीचे बड़े पेट वाला एक लड़का छटपटा कर रो रहा है। (पानी के प्राचीर, पृ. 209)

इन उद्धरणों में गद्य-लय भीतर के सूनेपन, सुगबुगाते भीतरी संवेदनों, टूटते हुए निरीह अहसासों, कसमकसाते जीवन-रागों और रोमांटिक तीव्रताओं की विविध अनुभूतियों को न केवल व्यंजित करती है, वरन् महसूसने को बाध्य कर देती है। इन मानवी-मुद्राओं के भीतर की सच्चाइयों को बड़ी गहराई से उठाया गया है। इन संवेदनाओं को मूर्त कर अंचल के भीतरी दर्द को बाह्य प्रकृति के साथ एकाकार कर दिया गया है।

भाषा में अंचल को चित्रात्मक एवं ऐन्द्रिय सम्मूर्तन देने वाले परिदृश्यात्मक वर्णन काव्यात्मक संस्पर्श से युक्त है। लेखक की अंचल के प्रति बेसब्र आत्मीयता है। वह स्मृति में अंचल को साकार कर देता है-'यह तरैना पुल है, यह हाटा है, यह मझगाँवा हैं। यह गगहा है।' अंचल उसमें पूरी तरह से रचा बसा है—दशहरे के मेले की गंध जुते-जाते खेतों की गंध, अलगनियों पर सूखते धराऊ रेशमी कपड़ों की गंध, धूप में सूखती मक्के की

बालियों की गंध, उगी हुई डीमियों की गंध, बगीचे में उगी हुई घासों की गंध, शरद के गड्ढों में थिराते हुए पानी की गंध...2, अंचल की जीवन-गंध का यह व्यापक बिम्ब है। चित्रों की मूर्तता और श्रव्यता उल्लेखनीय है। 'कट-कट कर गिरते हुए अरार धड़ाम-धड़ाम, धाराओं का बजबजाता हुआ शोर, धाराओं में पड़ी चीजों का बेतहाशा भागना, कभी किसी बड़ी-सी डाल का ऊपर उठना-गिरना, किसी नाव का डगमगाते हुए धाराओं से संघर्ष करना.... ऊपर-ऊपर काले बादलों का लहरा पर लहरा दूर तक धान के खेतों का काँपना और कहीं-कहीं क्रिया-विहीन उपवाक्यों या पदबंधों से श्रव्य-दृश्य (audio-visual) चित्र सँजोये हुए हैं। 'जल टूटता हुआ' में टूटते हुए बाँधों से दरकते जल की समानान्तर या विपरीत धाराओं को, 'अपने लोग' में देहाती शहर के वातावरण में हवा की वर्तुलाकार विषाक्त लहरों को, सूखता हुआ तालाब में टूट-टूटकर गृह रहे बगीचे को तथा उपन्यासों के शीर्षकों को प्रतीकात्मक गुणवत्ता मिली है। कुछ नये सादृश्य भी प्रभावी हैं। 'दर्द अब आँवा बनकर दहक रहा है मौत की तरह भीगा हुआ अंधकार एक जगह से फट गया, उमा का बीमार शरीर कसाई के घर में पड़ी गाय की तरह हलहल काँप रहा था, कुकरौंछी लगे हुए गदहे की तरह पूरे गाँव में दौड़ रहा था, चाय इस तरह सुड़कने लगे जैसे बैल नाँद में मुँह डुबोकर सानी का पानी सड़कता है, आदि। ये सादृश्य आंचलिकता के गर्भ से उपजे होने के कारण परिवेश को भी यथातथ्य बनाते हैं।

व्यंग्यात्मकता इन उपन्यासों की भाषा की प्रकृष्ट विशेषता है। शब्दों के विपरीतार्थक प्रयोग, परोक्ष-प्रतीकात्मक प्रकथन, व्यंग्यात्मक वाक्य और विरोधी रंगों के इस्तेमाल से उपन्यासों में कथ्य को चुटीला और दहलाने वाला बनाया गया है।

(अ) पिताजी सुबह-सुबह यह मंगलध्वनि (गालियाँ) करते हुए खड़े हैं।

(ब) गाँव की लड़की के साथ शराफत (बदमाशी करते हुए देखा है।

(स) खाना कुत्तों (शिवलाल आदि) के लिए बना था, उसे बैलों को खिला दो। आखिर गाँव के कुत्तों से अपने बैल अधिक नजदीक है न।

(द) चोंकरदास की हवेली के सामने सड़क चौड़ी हो जाती है, जैसे वह भी उनका ख्याल रखती हो। (शोषकों पर व्यंग्य)

(य) इस हिन्दुस्तान में आदमी होना ही काफी नहीं होता, उसे किसी न किसी का आदमी होना चाहिए।

(इ) जैसे एक नई दुनिया देखी एक दुनिया जिसका रंगमहल किसानों और मजदूरों की चीख-चिल्लाहटों के कंधे पर खड़ा था, जिसके कमल इन गरीबों के पसीने के कीचड़ में खिले थे, जिसका प्रकाश गरीबों की हड्डियों की रगड़ से फूटता था।

(विरोधी रंगों के स्थापत्य से पूँजीवाद पर व्यंग्य)

उपन्यासों में कहावतों-मुहावरों का प्रयोग भी आंचलिकता लिए हुए है। ये लोकोक्तियाँ पृष्ठभूमि, अंचल के ठेठपन और लोकजीवन के सत्यों की जिन्दा अभिव्यक्तियाँ हैं—'आन्हर कुकुर बतासै भूके, कहिया पूत जनमलें, कहिया झाँकरि भइल आदि।' हिन्दी में प्रचलित कहावतों-मुहावरों का भी व्यापक प्रयोग हुआ है। आंचलिक भाषा की क्रियाओं के कतिपय व्यवहार हिन्दी के दायरे को विस्तार देते हैं—'तो मोहनभोग लेकर भकोसों और दीया भर-भरकर चरणामृत सुड़को।' 'पेट मडुआ से बोकरवाते (बात उगलवाना) रहे', 'अच्छी फिंचाई की थी' इत्यादि। मिथकीय वाक्यों और शब्दों के प्रयोग अंधविश्वासों और ग्रामीण प्रकृति की श्रद्धान्धता को द्योतित करते हैं-'वन मुर्गियों बनकर पकड़ा है पेट मडुआ ने। 'गान्ही जी (गाँधी) अवतारी आदमी हवें, मुरदा के जिया देलें। जेल में से उड़िजालें। कुआँ में कूदि के पचास कोस दूर जा के उतराले।' 'सेमल के पीछे तो जालिम नट रहता है।' आदि। गँवई बोली (विभाषा) के वाक्यों और लोकगीतों की पंक्तियों से आंचलिक रंग गहरा और लयात्मक बन गया है। लोकगीत पूरे परिवेश की व्यथा, नारी की कसकती पीर और अंचल की समस्याओं को जीवंत करते हैं, तो बोली गत वाक्य अंचल के मुहावरे को व्यंजित करते हैं-

(अ) पान खा के छुरिया छिपा के बेइमनवां हँसे ला कसइया कि अइहो लोगवा।

(ब) हाथ गोड़ फूलि जइहें पेटवा निकरि जइहें बंगला के पानी है, खराब रे बिदेसिया।

(स) हम चरखें से लेवें सुराज, हमार कोई का करिहें।

(द) अरे, हो देखवे रे, भंइसिया और बकरिया, एक्के में मिलि के ताले के ओह पार निकलि गइली। दउर-दउर हाँकि ले आउ नाहीं त केहू के खेत में परि जइयें त हमहन दूनों जनी का मरम्मत होने लागी।

शहरी परिवेश और डायरी के अंशों में भाषा का परिनिष्ठित रूप तथा अंग्रेजी शब्दों वाक्यों का प्रयोग संदर्भ के अनुरूप हुआ है। साहित्यिक परिचर्चाओं में विचारधाराओं से सम्बद्ध शब्दावली तथा अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग बुद्धिजीवियों के शगल को व्यक्त करता है।

(अ) आधुनिकता के नाम पर एक अमूर्त और सार्वभौम संत्रास को उगलते रहते हैं। (ब) आधुनिकता का रिश्ता ये लोग नवीन सामूहिक शक्तियों और मूल्यों से क्यों नहीं जोड़ पाते, और क्यों नपुंसकतावादी मध्यवर्गीय व्यक्तिवादिता को ही आधुनिकता की संज्ञा देते हैं।

(स) प्रेम एक इल्यूजन है, आदमी को भटकाता है।

डायरी के अंशों में अथवा स्मृति-चित्रों में वाक्यविन्यास सामान्य वाक्य-योजना से विशिष्ट एवं जटिल हैं। बौद्धिक परिचर्चाओं में वाक्य लम्बे और उलझे हुए हैं। उपन्यासों में वाक्य-योजना की सामान्य वृत्ति छोटे और साधारण वाक्यों का गठन एवं प्रवाह है। परन्तु विशिष्ट स्थलों, संदर्भों, पात्रों और शब्द-चित्रों के अनुरूप जटिल मिश्र वाक्यों, संयुक्त वाक्यों, क्रियापरक संक्षिप्त उपवाक्यों, क्रियाविहीन वाक्यों का गठन लेखक के भाषागत सचेत प्रयोग को दर्शाता है। कहीं-कहीं सूक्तिवाक्य या व्यंग्यपरक अवधारणा सूचक वाक्य भी भाषा की शक्ति और संहति को लक्षित करते हैं-'जमींदारी की सभ्यता आदमियत को धीरे-धीरे निगलना शुरू करती है।' देहात में पुरुषार्थ पत्नी को पीटे बिना अधूरा रहता है। 'मेरी शिक्षा-दीक्षा की श्वेत प्रतिमाओं के नीचे कोई कराह रहा है।' खून का रिश्ता पानी का हो रहा है। और पानी का रिश्ता खून बन रहा है। 'दिल्ली में जैसे लोग सुबह को जगाते हैं और यहाँ सुबह लोगों को जगाती है।' इत्यादि।

उपन्यासकार ने अंचल, देहाती शहर और महानगर को समस्याओं, संघर्षों और संवेदनों के धरातल पर चित्रित करते हुए तुलनात्मक प्रतिक्रियाएँ भी व्यक्त की हैं। अंचल की सामुदायिकता दरक-दरक कर सूखते सूखते, कँटीले और विषाक्त सम्बन्धों में परिवर्तित हो रही है। आज भी ये अंचल, ये देहाती शहर अकथ गरीबी में कसमसा रहे हैं। राजनीति ने सम्बन्धों को इतना विषाक्त बना दिया है कि कोई स्वतन्त्र रहकर जी नहीं सकता। उपन्यासकार ने स्वातंत्र्योत्तर भारतीय जीवन, विशेषत: आंचलिक और देहाती शहरों के जनजीवन में आए परिवर्तनों को बहुत ही बारीकी से पकड़ा है। उसका मूल संकल्प उसी खुरदरे यथार्थ, रीतती हुई संवेदनाओं, ग्राम जीवन के संघर्षों और उनमें होने वाले परिवर्तनों को दर्शाना है। ये समस्याएँ, ये परिवर्तन और सामुदायिक मूल्यों को खंडित करने वाले स्वार्थी व्यक्तित्व किस तरह गाँधीवादी आस्थाओं और आजादी के सपनों को निरर्थक और विकृत कर रहे हैं, इसके मार्मिक चित्रण उपन्यासों की भाषा में खुरदरे और बेलौस यथार्थ के साथ हुआ है। उपन्यासकार आंचलिकता को शैली या आन्दोलन के रूप में ग्रहण नहीं करता, अपितु अंचल को एक समग्र एवं यथार्थ बिम्ब के रूप में सजीव बनाता है। इसीलिए आंचलिक भाषा का प्रयोग संतुलित है, वह अपने आप में साध्य नहीं, अपितु साधनभूत है।

रचनाकार कथ्य की सम्प्रेष्यता को अधिक महत्त्व देता है। इसीलिए भाषा में सर्वत्र सरलता और स्पष्टता, कथात्मकता और लयात्मक प्रवाह है। वह भाषा के पारंपरिक प्रयोगों का ही अभ्यस्त नहीं है, उगती हुई भाषा को भी पहचानता है। यह उगती हुई भाषा जनजीवन की है, उदास चेहरों की है, ठंडी आस्थाओं और निरीह चेहरों की है। जीवन से इतने गहरे लगाव के कारण ही भाषा में जीवन की तपन मूर्त हुई है। सूखती हुई अंचल की संवेदनाओं का यथार्थ बिम्बन हुआ है। लेखक शिल्पगत, भाषागत या शैलीगत प्रयोगों में न उलझकर कथ्य की सजीव और संवेदनात्मक अभिव्यक्ति करता है। इसीलिए कलात्मक स्थापत्य और परिवेशगत यथार्थ में प्रभावी एवं संतुलित गठबन्धन है।

फ्लैट नं-701 टॉवर-27
नॉर्थ टाउन अपार्टमेंट
स्टीफेंशन रोड (बिन्नी मिल्स) पेरंबूर
चेन्नई -600012 (तमिलनाडु)
मो-9425083335

रामदरश मिश्र का होना

– हरिशंकर राढ़ी

जन्म – 27 जून 1964।
जन्मस्थान – आजमगढ़ (उ.प्र.)।
शिक्षा – एम.ए., बी.एड.।
रचनाएँ – तीन पुस्तकें प्रकाशित।
विशेष – अनुवाद में विशेष कार्य।

शताब्दी की देहरी पर खड़े वरिष्ठतम साहित्यकार प्रो. रामदरश मिश्र। बस, अभी परसों अचानक खयाल आया कि हमारे समय में रामदरश मिश्र का होना भी कितना जरूरी और आश्वस्तिप्रद है! यह बात मस्तिष्क में पहले क्यों नहीं आई? कुछ पल के लिए इस प्रश्न ने शून्य कर दिया। लेकिन, आदमी के मन में कभी-कभी कितनी अजीब-सी बातें आ जाती हैं न! भला साँस लेते समय कोई सोचता है कि वह साँस ले रहा है? वह कहाँ सोचता है कि वह जिस वायु को अपने फेफड़ों में भर रहा है, वह प्राणवायु है, ऑक्सीजन है। पता तो उसे तब चलता है, जब वह ऑक्सीजन के सिलिंडर खरीदता है। यहाँ तो नीम हैं, पीपल हैं, अशोक हैं, आम हैं, 'आम के पत्ते' हैं। प्राणवायु वहीं से चली आ रही है और हम अनजाने में अपने फेफड़ों में 'धीरे-धीरे' भरे जा रहे हैं, जिए जा रहे हैं। फिर मैंने रामदरश मिश्र जी के होने के बारे में क्यों सोचा? कहीं मुझ सहित बहुत से लोगों की साहित्यिक ऑक्सीजन इसी पीपल से तो नहीं आ रही! अभी परसों ही, चार जून को, उन्हीं के यहाँ, उन्हीं के हाथों, उन्हीं पर हमारे द्वारा संपादित पुस्तक 'समकालीन अभिव्यक्ति : रामदरश मिश्र एकाग्र' का लोकार्पण था। दो साल पहले हमने उन पर केन्द्रित 'समकालीन अभिव्यक्ति' का अंक निकाला था। वह कोरोना काल था, विवशताओं के चलते उसका लोकार्पण आभासी पटल पर हुआ था। अब वही अंक पुस्तकाकार रूप में आया है। उसी का लोकार्पण!

पुस्तक लोकार्पण से पहले हम सब बैठे मिश्र जी से बातें कर रहे थे। कुछ लोग अभी नहीं आए हैं, इसलिए बातों का अवसर निकल आया है। वैसे, मिश्र जी से बातों के अवसर सायास नहीं निकालने पड़ते। वे सायास वाले व्यक्ति ही नहीं हैं। बिलकुल प्राकृतिक हवा-पानी की तरह। हल्के-हल्के बहते रहते हैं, बीच में किसी प्रसंग को याद करके जोर से हँसते हैं। साथ में माता सरस्वती जी बैठी हों तो बीच-बीच में अपनी बेबाक टिप्पणियों का तड़का लगाती रहती हैं। बस, मिश्र जी के होने की बात दिमाग में यहीं बजी। अभी तो मिश्र जी एक बड़े हादसे से होकर निकले हैं। इस उम्र में उसे बड़ा हादसा ही कहा जाएगा। फरवरी में यह पुस्तक आई ही थी कि मिश्र जी एक सुबह फिसलकर गिर गए थे। इस आयु में गिरना! लेकिन तमाम डर और शंकाओं से मिश्र जी की जिजीविषा, सकारात्मकता और साहित्य जीत गए। जिसने किसी को कभी गिराया न हो, वह गिरा थोड़े ही रह जाएगा। देखते-देखते ही उनकी प्रसिद्ध ग़ज़ल की पंक्तियाँ याद आने लगीं–

किसी को गिराया न खुद को उछाला/कटा जिंदगी का सफर धीरे-धीरे।

बड़ा तिलिस्म है मिश्र जी का और उनकी इस ग़ज़ल का। चूहा दौड़ और खरगोश दौड़ के तमाम मठाश्रयी साहित्यकार उनकी 'धीरे-धीरे' से हार गए। वे आज भी चले जा रहे हैं, ठहरे भी हैं और अपने 'धीरे-धीरे बनाए घर' में सुकून से हैं। उस घर पर साहित्यिक दस्तकें होती रहती हैं, कमरे में कविताओं और गीतों की गूँज बरकरार रहती है। स्नेह और अपनत्व की निश्छल बारिश होती रहती है। जो भी चाहे, भीग सकता है। लेकिन चाहना शुद्ध मन से होता है। कितना स्निग्ध मन है उनका, बिलकुल उन्हीं की कविताओं और कहानियों की तरह।

ओम निश्चल जी भी आ गए। आखिरी प्रतीक्षा उन्हीं की थी। ज्यादा देर नहीं हुई है उन्हें भी। उनके आते ही मिश्र जी प्रसन्न हो जाते हैं। बड़ा सुखद संयोग बन पड़ा है, अब लोकार्पण हो जाए। अभी मिश्र जी को चोट से उबरे ज्यादा दिन नहीं हुए हैं। बहुत देर तक बैठ पाना उनके लिए सहज नहीं। न जाने कितनी पुस्तकों-पत्रिकाओं का लोकार्पण उनके इसी कमरे में, उन्हीं के सदाशयी हाथों से हुआ होगा। मुझे तो लगता है कि उनके हाथ या तो साहित्यिक लेखनी पकड़ने के लिए उठे होंगे, या फिर शुभाशीष में। न जाने कितने लोग होंगे, जिन्हें ये दोनों मिले होंगे। लेकिन पहले मेरा मन उनकी लेखनी से निःसृत साहित्य से बँधा, जो अनेक विधाओं में निर्झर की तरह झरता रहा। उनके

बारे में एक बड़ा कठिन-सा प्रश्न प्राय: खड़ा हो जाता है। यह कि मिश्र जी का कवि रूप बेहतर है या गद्यकार का? न जाने जीवन में ऐसे बेमानी प्रश्न कहाँ से सिर उठाए चले आते हैं? यह तो वही बात हुई कि आपकी बायीं आँख ज्यादा प्रिय है या दायीं? जब हमने मिश्र जी पर 'समकालीन अभिव्यक्ति' का एकाग्र अंक निकाला था, तब भी यह प्रश्न खड़ा हो गया था। यह बात अलग है कि उन पर लिखने वाले अधिकतर लेखकों ने उनके कविरूप को बेहतर माना था।

लेकिन मुझे पता नहीं क्यों यह अवधारणा बहुत हजम नहीं हुई। चलिए, कुछ देर को बहुमत के साथ हो लेता हूँ। उनके कविरूप बेहतर मान लेने में मुझे कोई गुरेज या संकोच नहीं है। नि:संदेह वे एक संवेदनशील, समय से जुड़े सरल कवि हैं। उनकी कविता में मानवता, प्रकृति, ग्राम्यांचल, समाज का अंतिम व्यक्ति मुखरित होता है। लेखकों ने यह भी तर्क दिया कि मिश्र जी को अब तक के समस्त बड़े सम्मान और पुरस्कार उनकी कविताओं पर मिले। काव्य-संग्रह 'आम के पत्ते' को व्यास सम्मान, 'आग की हँसी' को साहित्य अकादमी सम्मान, और 'मैं तो यहाँ हूँ' को सरस्वती सम्मान मिला। इन संग्रहों की कविताओं से गुजरने, उनका आस्वादन करने तथा उन पर लिखने का सौभाग्य मुझे भी मिला है। जीवन की छोटी-छोटी संवेदनाओं से स्पंदित ये कविताएँ अकविता के इस युग में भी कविता होने का विश्वास पैदा करती हैं। लेकिन, इस आधार पर मिश्र जी के गद्य साहित्य को कमतर मान लेना दुखदायी, असंतोषजनक होगा।

मुझे कवि का गद्य बहुत लुभाता है। वह गद्य चाहे कथा-साहित्य हो या निबंध; होता है बहुत मीठा और स्पंदनयुक्त। जयशंकर प्रसाद, हरिवंश राय 'बच्चन' एवं प्रो. रामदरश मिश्र का गद्यलोक कहीं से कम प्रभाव का नहीं है। संस्कृत साहित्य-शास्त्र में तो 'गद्य कवीनां निकषा वदन्ति' कहा ही गया है। यही नहीं, वहाँ तो गद्यकार, कथाकार, लेखक को भी कवि ही कहने परंपरा है। बाणभट्ट और दंडी की गणना कवि के रूप में की जाती है, जबकि इनकी ख्याति क्रमश: 'कादंबरी' और 'दशकुमार चरित' के आख्यान पर है। दंडी के पदलालित्य को अनुपम माना गया है। माना वह समय फंतासी कथाओं का था, किंतु आज भी गद्य की पठनीयता आधुनिक कविता से अधिक है। कुछ तो होगा जो इतने बड़े-बड़े आख्यानों को पढ़वा ले जा रहा है! आख्यान ही क्यों, निबंध भी कम मोहित नहीं करते, बशर्ते उनमें ज्ञान की गठरिया की बजाय संवेदना हो, प्रवाह हो, लालित्य हो और विषय से जुड़े रहने की शक्ति हो।

मिश्र जी के गद्य साहित्य की बात हो तो सबसे पहले उनके उपन्यास सामने आ खड़े होते हैं। 'पानी के प्राचीर' और 'जल टूटता हुआ' अपनी पृष्ठभूमि पर लिखी हुई जीवंत महागाथाएँ हैं। गोरखपुर जनपद में राप्ती और गोर्रा नदियों के कछार में स्थित मिश्र जी का गाँव इन नदियों के जलप्रलय का साक्षी रहा है। उसी गाँव में मिश्र जी का बचपन बीता, माध्यमिक शिक्षा तक मानसून की बाढ़ में उन्हीं नदियों में गले तक डूबकर अपने गाँव आना-जाना रहा। अभावों एवं असुविधाओं के उस त्रासदकाल की पीड़ा व परेशानी जिसने भुगती होगी, वह उस दर्द को जानेगा। मिश्र जी ने अपने उन्हीं अनुभवों को अनुभूतियों के साथ गूँथकर जो गाथा लिखी, वह उस काल को और दर्द को, वहाँ के सुख-दुख को बेहद मार्मिक व सकारात्मक मानसिकता के साथ प्रस्तुत करती है। यह बात अलग है कि उनके इन दो उपन्यासों को कुछ लोगों ने सायास एवं सोद्देश्य आंचलिक उपन्यास की श्रेणी में रखकर उन्हें सीमित करने का प्रयास किया। लेकिन, यह भी सत्य है कि जिस कृति को पाठक का प्यार मिल जाता है, जो उसे अपनी गाथा लगने लगती है, उसके विरुद्ध आलोचनाएँ और समीक्षाएँ कुछ नहीं कर पातीं।

इसके बाद तो मिश्र जी के उपन्यासों की जो आमद शुरू हुई, वह अपनी तमाम आलोचनाओं को दरकिनार करती हुई एक विस्तृत संसार बनाती गई। 'दूसरा घर' से चलकर हाल के वर्षों में लिखे गए आत्मकथात्मक उपन्यास 'एक था कलाकार' और 'एक बचपन यह भी' अपनी भाषा-शैली और कथानक की जीवंतता से पाठकों से बतियाते हुए लगते हैं। जहाँ 'एक था कलाकार' रक्त संबधों की सूक्ष्म संवेदना को स्पर्श करता है, वहीं 'एक बचपन यह भी' की नायिका अपने साधारण जीवन एवं आत्मविश्वास के दम पर नारीशक्ति का प्रतिनिधित्व करती है।

डॉ. रामदरश मिश्र जी आजीवन किसी वाद और झंडे के नीचे नहीं रहे। उनके साहित्य की विषयवस्तु आम आदमी रहा। वह उसके सुख में सुखी और दुख में दुखी होते रहे। उसकी पीड़ा और अधिकार को लेकर अपनी सशक्त लेखनी चलाते रहे। आमजन की बात करने वाले तमाम समकालीन लेखक किसी न किसी मठ-समुदाय से जुड़े रहे। पहले उनका एजेंडा निर्धारित होता, नीतियाँ निर्धारित होतीं और फिर उनमें से अधिकतर उन्हीं घोषणापत्रों के अनुसार अपना लेखन करते। कहना न होगा, इनमें से अधिकतर मठ वामपंथ से मान्यता प्राप्त थे, जिनकी नजर में सर्वहारा जन के कल्याण का ठेका सिर्फ उन्हें ही मिला था। यदि कोई उनसे लाइसेंस लिए बिना इस वर्जित क्षेत्र में घुसने का प्रयास करता तो उस पर हमला होना ही था। यह बात अलग जिज्ञासा की हो सकती है कि ऐसे लाइसेंसधारी लेखक स्वयं आमजन से कितना जुड़े रहे!

मिश्र जी की कहानियों का संसार कम बड़ा नहीं है। यह बड़ा ही नहीं, गहरा और गंभीर है, सोद्देश्य है। उनकी कहानियाँ जमीन पर

उगी कहानियाँ हैं, जिनमें मध्यवर्ग, निम्न मध्यवर्ग एवं दलित-मजदूर वर्ग केंद्र में हैं। वे समाज की विसंगतियों को बखूबी उकेरना जानते हैं। 'सर्पदंश', 'सड़क', 'माँ, सन्नाटा और बजता हुआ रेडियो' ऐसी कहानियाँ हैं, जो किसी भी संवेदनशील-न्यायप्रिय व्यक्ति या सत्ता को हिला देने के लिए पर्याप्त हैं। रामदरश मिश्र समाज के हर उस वर्ग की आवाज उठाने का प्रयास करते हैं, जो किसी भी प्रकार से दबा, कुचला और पीड़ित है। यदि उनकी कहानियों के थीम और कथ्य की बात की जाए तो वे हाशिये पर खड़े हर मनुष्य की बात करते हैं। वर्ण व्यवस्था एवं सामंती प्रथा का क्रूरतम चेहरा देखना हो तो मिश्र जी की कहानी 'सर्पदंश' को जरूर पढ़ना चाहिए। इस कहानी में विडंबना और सामंतवाद का जो भयानक रूप दिखता है, वह किसी भी समतावादी व्यक्ति को बेचैन कर जाएगा। कहानी के मुख्य पात्र गोकुल का सर्पदंश से बच जाना, किंतु सामंती प्रथा के प्रतीक प्रधान के हाथों मारा जाना अपने आप में एक तीक्ष्ण व्यंग्य है, जो चीख-चीखकर समता और मानवता का आह्वान करता है।

वे स्त्री-विमर्श के नाम पर पौराणिक या ऐतिहासिक चरित्रों का नाम लेकर भाषण नहीं झाड़ते, अपितु वतर्मान समाज की किसी पीड़ित औरत के दुख-दर्द को इतनी शिद्दत से उभारते हैं कि उनका अंदाजे बयाँ अपने आप में एक स्त्रीवादी विमर्श बन जाता है और पाठक के मन में परिवर्तन का एक संदेश छोड़ जाता है। मिश्र जी किसी अहल्या, सीता या द्रौपदी के वकील बनकर नहीं खड़े होते। वे उन महिलाओं के साथ खड़े दिखते हैं, जो अपने घरेलू कार्यों को निपटाते हुए पुरुषों के हिस्से का भी काम कर रही हैं। समाज चाहता है कि वह पुरुष की देहरी पर नाक रगड़े, उससे सहायता की भीख माँगे और उसी पर आश्रित रहे। इसके लिए उसे भले ही अपने तन का सौदा करना पड़े। मिश्र जी की नायिका प्रेम में है, तो प्रेम करेगी, लेकिन अपने प्रेमी पति के जुल्मों को एक हद तक ही सहेगी। उसका स्वाभिमान जागृत है और प्रथम वरीयता पर है।

वाणी और कर्म की एकरूपता मानव चरित्र की एक आदर्श स्थिति है, जीवन की सरलता है। इसके उलट कुछ है तो वह पाखंड कहलाएगा। मिश्र जी के साहित्य एवं निजी जीवन में यह समता स्पष्टत: परिलक्षित होती है। वे उन लोगों में नहीं हैं, जो मंचों से या अपने लेखन में स्त्रीवाद की प्रखर वकालत करते हैं, लड़ने-मरने को तैयार हैं, किंतु अपने निजी जीवन में स्त्री को कोई महत्त्व नहीं देते। महत्त्व देते हैं तो किसी महिला की माँसलता को, किसी नवोदिता कवयित्री के तीखे नैन-नक्श को। जब अपनी पत्नी की बात आती है तो उसे अपने घर की चारदीवारी में कैद छोड़कर स्वयं विमर्श या पर्यटन पर निकल लेते हैं। मिश्र जी के यहाँ ऐसा नहीं है। मैं जबसे उनके संपर्क में आया, हमेशा ही देखता रहा हूँ कि वे तमाम कार्यक्रमों में माता सरस्वती जी को साथ लिए रहते हैं। वय के इस वार्धक्य में भी वे साथ-साथ रहती हैं। अभी पिछले वर्ष 'सरस्वती सम्मान' के अर्पण समारोह में वे साहित्य अकादमी के सभागार में साथ आई थीं। इससे पहले दिल्ली के प्रगति मैदान में आयोजित शायद ही कोई विश्व पुस्तक मेला रहा हो, जिनमें मिश्र जी के साथ उनकी उपस्थिति न रही हो या किसी पुस्तक के लोकार्पण में वे प्रसन्नचित्त होकर सम्मिलित न रही हों।

मिश्र जी के आवास पर पहुँचते ही आँखें माता जी को तलाशने लगती हैं। वैसे तो वे मिश्र जी के साथ ही बैठी मिलती हैं, किंतु उम्र के नौ दशक पूरे कर लेने पर भी वे एक सफल गृहिणी की भाँति घर के कामों में लगी रहती हैं। जब वे वहाँ नहीं होती हैं तो मिश्र जी आवाज लगाते हैं- अरे सुनो, देखो कौन आया है! वे पूरी उत्कंठा से आती हैं और प्रसन्नता भर देती हैं, हँसते हुए आशीषों की झड़ी लगा देती हैं। ऐसा उस हर आगंतुक के साथ होता है जो प्राय: जाता रहता है, अनुराग से भरा हुआ जाता है। ऐसा हो नहीं सकता कि माता जी घर पर हों और वे स्वयं चाय-पानी न लाएँ। इस उम्र में उन्हें चाय-पानी लाते देखकर संकोच होता है। पहले और भी होता था, लेकिन उनका स्वभाव जान लेने के बाद अब मना नहीं किया जाता, बस प्रसाद मानकर ग्रहण कर लेने में ही सुख होता है। अभी हमारी इसी पुस्तक के लोकार्पण के अवसर पर उनके हाथ का बना विशिष्ट हलवा सभी लोग खाते ही रह गए।

चाय-पानी के बाद मिश्र जी माता जी को बुलाकर अपने साथ बिठा लेते हैं। अब शुरू होती हैं माता जी की साहित्यिक टिप्पणियाँ, जो एक-दो वाक्य में किसी रचना या रचनाकार को ठिकाने लगाने के लिए पर्याप्त होती हैं। अच्छा है तो अच्छा, बुरा है तो बुरा। माता जी बहुत बेबाक और निर्भीक हैं, मिश्र जी संकोची हैं। लेकिन माता जी कुछ भी कहें, उनकी साहित्यिक सूझ-बूझ और हास्य-प्रियता की प्रशंसा तो करनी ही पड़ेगी। मैं कई बार उनके यहाँ बैठे-बैठे सोचता और सीखता हूँ कि स्त्री विमर्श तो घर से ही शुरू होना चाहिए। स्त्री विमर्श सिगरेट की ठूँठों के बिना भी हो सकता है, और शायद बेहतर!

समान्यत: स्त्री विमर्श की बात हो, आधुनिक साहित्य में स्त्रियों पर केंद्रित साहित्य की बात हो या स्त्रीलोक में हुई प्रगति की, तो लोग बड़े या मध्यम शहरों की स्त्रियों की ओर मुखातिब होते हैं। कितनी महिलाएँ नौकरीपेशा हुईं, कितनी ऊँचे पदों पर पहुँचीं, कौन-कौन राजनीति और प्रशासन में बुलंदी के झंडे गाढ़ रहीं, यह उनका प्रगति का मानदंड होता है। टीवी-दूरदर्शन पर आने वाली महिलाएँ भी प्रगतिशीलता की प्रतीक हैं। फिल्मी नायिकाएँ तो खैर एकमात्र मानक बनी ही हैं। साहित्य जगत में अच्छा लेखन कर रहीं महिलाएँ

सम्मान की पात्र हैं ही, बड़े आलोचकों एवं संपादकों की गणेश परिक्रमा से स्थापित लेखिकाएँ भी इक्कीसवीं सदी की प्रतिमान हैं। इसमें आपत्ति वाली कोई विशेष बात नहीं है, किंतु डॉ. रामदरश मिश्र के साहित्य की कई नायिकाएँ अंतिमजन के समाज से आती हैं। वे नगरीय भी हैं, किंतु उनके ग्राम्यलोक में ऐसी अनेक नारियाँ हैं, जो सदियों से चले आ रहे पितृसत्तात्मक समाज, लिंग आधारित भेदभाव और शोषण के विरुद्ध खुली चुनौती हैं। ज्यादा नहीं, यदि मिश्र जी की एक कहानी 'एक औरत एक जिंदगी' की अकेली औरत भवानी का साक्षात्कार कर लिया जाए तो स्त्री विमर्श ही नहीं, नारीशक्ति का संपूर्ण दर्शन सामने आ जाता है। पुरुषवादी समाज में भवानी फावड़ा लेकर जमीन का सीना तोड़ती दिखती है, और वह भी डंके की चोट पर! नगरीय-उपनगरीय परिवेश की स्त्री विषयक कहानियों की बात करें तो 'आखिरी चिट्ठी', 'एक भटकी हुई मुलाकात', 'डर' आदि ऐसी ही कहानियाँ हैं, जो पढ़ने के बाद जेहन में देर तक गूँजती रहती हैं। किशोर मनोविज्ञान, एक विकलांग लड़की का मानसिक संत्रास एवं वर्णन की कुशलता देखनी हो तो 'सीमा' कहानी ही पर्याप्त है। इन कहानियों के नाम से अब तक मिश्र जी के कई स्वतंत्र संग्रह आ चुके हैं।

मिश्र जी के गद्यलोक की यात्रा इतनी जल्दी समाप्त होने वाली नहीं हैं। अभी तो इसमें कई पड़ाव हैं। उपन्यास और कहानी से आगे बढ़ते हैं तो आलोचना, निबंध, ललित निबंध, आत्मकथा, संस्मरण, यात्रा संस्मरण और डायरियाँ सामने पड़ती हैं। यदि आप रामदरश मिश्र जी के साहित्य से प्रेम करते हैं तो ये विधाएँ भी आपको ठहराएँगी। पिछले डेढ़ दशकों में मिश्र जी की शायद ही कोई ऐसी पुस्तक आई हो, जिससे गुजरने का सौभाग्य मुझे न मिला हो। उनकी अनेक पुस्तकों पर मैंने अपनी पाठकीय प्रतिक्रिया दी है, समीक्षाएँ लिखी हैं, अलग-अलग, दूर-सुदूर तक की पत्रिकाओं में वे समीक्षाएँ प्रकाशित हुई हैं। स्नेह की लालसा में हर महीने-दो महीने मिश्र जी के घर पहुँच जाता हूँ और वे अपनी कोई सद्यप्रकाशित पुस्तक, अपने हस्ताक्षर सहित सस्नेह भेंट कर देते हैं। हैरानी होती है, इस वय में भी वे पुस्तकों के प्रति, पुस्तकों के प्रकाशन के प्रति इतना अनुराग रखते हैं। पुस्तकें देते ही नहीं, कितनी बार देखा है कि एकदम से नवोदित लेखकों की पुस्तकें ससम्मान लेते भी हैं। उन्हें पढ़ते हैं और पढ़कर प्रतिक्रिया भी देते हैं। अब भला एक नवोदित लेखक को इससे अधिक क्या चाहिए?

मेरी दृष्टि में अब तक मिश्र जी के दो यात्रा संस्मरण आए हैं- 'घर से घर तक' और 'देश यात्रा'। वे स्वयं स्वीकारते हैं कि वे यात्राभीरु हैं। फिर भी जो यात्राएँ की हैं, उनमें साहित्यिक यात्राएँ अधिक हैं। अधिक नहीं हैं तो भी उन्होंने उसे साहित्यिक यात्रा बना दिया है। बात उनके निबंधों या ललित निबंधों की करें तो पिछले दशक में आए तीन संग्रहों ने मुझे बहुत प्रभावित किया है। 'बबूल और कैक्टस', 'बाहर-भीतर' तथा 'नया चौराहा' से मैं भलीभाँति गुजरा हूँ। इन संग्रहों के निबंधों में चिंतन, विमर्श, आलोचना, लालित्य और सकारात्मक सोच का अद्भुत गुंफन मिलता है। वे छोटी-छोटी बातों को जिस सूक्ष्मता से पकड़ते हैं, वही पाठक को वृहत्तर रूप से बाँध लेती हैं। 'मेरा कमरा' निबंध में वे कमरे से आत्मीयता का बोध तो कराते ही हैं, एक ऐसे सूक्ष्म अवयव को पकड़ते हैं जो उपभोक्ता उपेक्षित कर चुका होता है। वे कितना सत्य कहते हैं कि ग्राम्यांचलों में पुरुष का कोई अपना कमरा नहीं होता। उसके लिए कमरे की अवधारणा ही नहीं होती थी। मिश्र जी का मन उन सभी वस्तुओं एवं व्यक्तियों के प्रति स्नेह एवं धन्यवाद से भरा हुआ है, जो उनके आसपास हैं और उन्हें कितना भी छोटा सुख देते हों। अपने कमरे के प्रति वे आभारी हैं; चाकू, कलम, मेज जैसी वस्तुओं पर उन्होंने कविताएँ लिखीं हैं, इन सबका मानवीकरण किया है।

मिश्र जी का बचपन खाँटी ग्रामीण परिवेश में बीता है, इसलिए वे ऋतुओं की पदचाप सुनकर ही पहचान लेते हैं। वैसे तो वसंत उनकी प्रिय ऋतु है, किंतु अन्य ऋतुओं के वर्णन में कहीं से पक्षपात नहीं दिखता। उनकी यह वसंतप्रियता उनसे मिलने और उन्हें पढ़ने वालों को बखूबी पता है। फागुन, वसंत पंचमी, वसंत ऋतु पर उन्होंने खूब लिखा है, हाल के वर्षों तक लिखा है। 'बाहर वसंत आ गया है' वासंतीपन की इतनी अच्छी कविता है कि इसी शीर्षक से डॉ. सविता मिश्रा के संपादन में मिश्र जी की कविताओं का एक संग्रह ही आया। वसंत उन्हें बाहर भी दिखता है और भीतर भी। जनवरी, 2012 में उनकी लिखी कविता 'वसंत पंचमी' की अंतिम पंक्तियाँ देखें तो मन उजास से भर जाता है-

तो बाहर अभी पगध्वनि / भले न सुनाई दे रही हो
मेरे भीतर तो वसंत आ चुका है।

कोरोना काल में मिश्र जी की सुपुत्री प्रो. स्मिता मिश्रा ने साहित्यिक दृष्टि से एक अत्यंत उपयोगी काम किया था। उन दिनों उन्होंने मिश्र जी की लंबी साहित्यिक यात्रा के अनेक स्वनामधन्य सहयात्रियों के संस्मरण सुनकर लिखे और फेसबुक पर पोस्ट किए थे। 'सुरभित स्मृतियाँ' नाम से धारावाहिक के रूप में फेसबुक पर पोस्ट ये संस्मरण अब इसी नाम से पुस्तकाकार रूप में प्रकाशित होकर आए हैं। सबसे अच्छी बात है कि नाम के अनुरूप इस संस्मरण में केवल सुरभित स्मृतियाँ ही हैं, मिश्र जी ने कहीं भी किसी के विषय में कुछ भी कटु नहीं बोला है।

मिश्र जी स्वयं कहते हैं कि उम्र के दशवें दशक में अब बड़े वितान की रचनाएँ नहीं हो पातीं, हालाँकि इसी अवधि में छोटे ही सही, दो उपन्यास भी आए। अब वे कविताएँ, डायरियाँ और छोटे आकार की रचनाएँ देते हैं। लेकिन यह कम नहीं है कि वे न तो रुके हैं और न स्वयं को दुहरा रहे हैं। उनकी डायरियाँ निजी होकर भी साहित्यिक एवं सामाजिक परिवेश की झाँकी हैं। शीर्षक ही देख लेने से मिश्र जी की सकारात्मकता का परिचय मिल जाता है। अब उनकी एक डायरी का शीर्षक देखिए–'विश्वास जिंदा है'। जब गद्य में उनकी पुस्तकें अभी तक आ रही हैं तो उनका कवि पीछे कैसे रह जाएगा? ओम निश्चल के संपादन में उनकी कविताओं का एक संग्रह 'प्रतिनिधि कविताएँ' राजकमल प्रकाशन से आया है तो दूसरा इंडिया नेटबुक्स की प्रताप सहगल द्वारा प्रस्तावित शृंखला 'कवि के मन से' के अंतर्गत आया है। दोनों में ही उनकी चुनिंदा कविताएँ एक साथ हैं।

मिश्र जी ने व्यंग्य नहीं लिखे हैं। व्यंग्य अर्थात् स्वतंत्र व्यंग्य निबंध जिसे अब व्यंग्य विधा के रूप में स्वीकार कर लिया गया है। उनके साहित्य से गुजरते हुए मुझे कई बार व्यंग्य की गहरी उक्तियाँ और अभिव्यक्तियाँ मिलीं। हो सकता है मैंने अपने व्यंग्यकार होने के स्वभाव के कारण ऐसा नोटिस किया हो, बाकी लोगों ने इसे नजरअंदाज कर दिया हो। न जाने ऐसे कितने व्यंग्य वाक्य मिले जिसे मैंने स्वभावत: रेखांकित कर लिया था। उनका रचना संसार लोक से जुड़ा है, जमीन से जुड़ा है, इसलिए व्यंग्य आना ही था। और व्यापक परिपेक्ष्य में देखने पर लगा कि उनके साहित्य में व्यंग्य कम नहीं है, हालाँकि मेरे इस कथन पर सहजता से विश्वास कुछ लोग ही कर पाएँगे।

मिश्र जी ने निश्चित रूप से स्वतंत्र व्यंग्य लेखन नहीं किया है, किंतु उनकी रचनाओं में कई जगह व्यंग्य का घातक प्रहार मिलता है। उनका व्यंग्य न तो जान–बूझकर लिखा होता है और न तो शब्दों की हेराफेरी होता है। उसका उद्देश्य छिछला हास्य पैदा करके मनोरंजन करना भी नहीं होता। वस्तुत: एक संवेदनशील कवि होने के कारण मिश्र जी को पाखंड, विसंगतियों और चारित्रिक विरोधाभास से बहुत विचलित होते हैं। उनकी रचनाओं में सत्य के धरातल पर लोकजीवन के दंश उभरते हैं और वे बिना किसी रंग–रोगन के सहज भाव से उसे प्रस्तुत कर देते हैं। इस प्रकार के सहज उद्यम में परिस्थितिजन्य व्यंग्य और चारित्रिक व्यंग्य (irony of situation and irony of character) स्वयं उभर आते हैं।

साहित्यिक शैली और गुणों से प्रेरित होना अच्छा होता है, किंतु उनकी नकल मारना नहीं। साहित्यिक चरित्र के साथ–साथ मिश्र जी से यदि कुछ सीखने की लालसा हो तो उनकी सकारात्मकता जरूर सीखी जानी चाहिए। थोड़ा–सा और सीखना चाहें तो उनका 'घर' सीख लेना चाहिए। उनका घर ऐसा वितान है, जो एकांत होते हुए भी सबसे जुड़ा हुआ है। वह घर वही है जो सुकून देने वाला घर होता है, जिसके दरवाजे इतने खुले होते हैं कि बार–बार खोलने नहीं पड़ते। वह घर बहुत धीरे–धीरे बनता है, बनाना पड़ता है। यह घर वह घोंसला होता है, जो चिड़िया एक–एक तिनके से बनाती है; आजकल बाजार में बिकने वाला नकली घोंसला नहीं होता। उस घर में हम मिश्र जी के साथ बैठे हुए हैं। ओम निश्चल जी भी आ गए हैं। अब विलंब क्यों, 'समकालीन अभिव्यक्ति : रामदरश मिश्र एकाग्र' पुस्तक के लोकार्पण का कार्यक्रम शुरू कर देना चाहिए। ऐसी मिश्र जी की इच्छा है और कुछ हद तक शारीरिक विवशता है। माता जी भी आकर मिश्र जी के साथ आकर बैठ जाती हैं। डॉ. वेद मित्र शुक्ल जी संचालन का दायित्व सँभालते हैं। हम सभी मिश्र जी और माता जी के सान्निध्य में पुस्तक लोकार्पण का सुख लेते हैं। संक्षेप में पुस्तकों पर बोलने का क्रम चलता है। अपने वक्तव्य में वे कहते हैं कि उन्होंने कभी किसी से आग्रह नहीं किया कि उन पर लिखे, उन पर अपनी पत्रिका का एकाग्र अंक निकाले या उन पर कोई पुस्तक संपादित करे। सब कुछ लोगों ने स्वयं अपनी प्रीति के वश में होकर किया। उनके इस कथ्य में संदेह की गुंजाइश जरा–सी भी नहीं। हमने भी उन पर एकाग्र अंक स्वत: निकाला था। वे उपस्थित–अनुपस्थित सबका धन्यवाद ज्ञापित करते हैं। एक सुखद संध्या अवसान की ओर बढ़ती है।

मैं बैठा सोच रहा हूँ। मिश्र जी का होना प्रतीत होता है, मिश्र जी का होना मुखर होकर बोलता है। उनके सामने बैठना, उनको सुनना और उनसे बतियाना एक युग के सामने बैठने, सुनने और बतियाने के बराबर है। इस घर में कितनी साहित्यिक गोष्ठियाँ हुई होंगी, कितनी पुस्तकों का विमोचन हुआ होगा, कितने साक्षात्कार हुए होंगे, कितनी रचनाएँ बनी होंगी, कितनों ने आशीष और स्नेह पाया होगा, कितनों को माता जी के हाथ का हलवा मिला होगा, चाय मिली होगी तथा साथ में बेबाक स्नेह और टिप्पणियाँ। सब कुछ कितना अपना रहा होगा कि यह आभास ही नहीं हुआ कि मिश्र जी का होना कितना जरूरी है! साहित्य एवं संबंधों का यह अश्वत्थमूल कितना छायादार है, वही समझेगा जो इसकी छाया में बैठेगा। वाकई, मिश्र जी का होना एक बहुत बड़ा होना है।

बी–532 (दूसरा तल)
वसंतकुंज एन्क्लेव (बी–ब्लॉक)
नई दिल्ली – 110070
मो.– 9654030701

साधना की समूची सदी : रामदरश मिश्र

– मधु शुक्ला

जन्मस्थान – लालगंज, रायबरेली (उ.प्र.)
शिक्षा – एम.ए., बीएड.।
रचनाएँ – एक पुस्तक प्रकाशित।
सम्मान – म.प्र. साहित्य अकादमी द्वारा सम्मानित।

'बनाया है मैंने ये घर धीरे-धीरे, खुले मेरे ख्वाबों के पर धीरे-धीरे
किसी को गिराया न खुद को उठाया, कटा जिंदगी का सफर धीरे-धीरे
जहाँ आप पहुँचे छलाँगें लगाकर, वहाँ मैं भी पहुँचा मगर धीरे-धीरे।'

'चरैवेति-चरैवेति' के मूल मंत्र के साथ अपनी चुनी हुई राह पर मुक्त एवं निर्लिप्त भाव से संचरण करते हुए देश के मूर्धन्य साहित्यकार प्रो. रामदरश मिश्र आज उपलब्धियों और प्रतिष्ठा के ऐसे शिखर पर अवस्थित हैं, जहाँ लोग छलाँगें लगा कर नहीं पहुँच पाए।

जीवन और सृजन की एक लंबी यात्रा तय करते हुए डॉ. रामदरश मिश्र आगामी 15 अगस्त 2023 को अपने शुभ चरण उम्र के सौवें सोपान पर रखने जा रहे हैं, जिसका स्वागत पूरा हिन्दी जगत पूर्ण उत्साह और कृतकृत्य भाव से कर रहा है। साहित्य प्रेमियों के लिए ये निश्चित रूप से हर्ष और गर्व का विषय है।

आज हमारे बीच ऐसे बहुत कम रचनाकार शेष हैं, जो देश की गुलामी और आजादी दोनों के साक्षात दृष्टा रहे हों और स्वतंत्र भारत के भौगोलिक, राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, साहित्यिक और संस्कृतिक परिवर्तनों के दौर से गुजरे हो।

डॉ. रामदरश मिश्र के साहित्य से गुजरना परिवर्तन के उस पूरे युग से गुजरना है जो हिन्दी के पाठकों के लिए जिज्ञासा का विषय है। परंतु मिश्र जी के विराट व्यक्तित्व को शब्दों में बाँध पाना और उनके विपुल साहित्य को एक आलेख में समेट पाना तो असम्भव है, उसके लिए तो कई पुस्तकें भी कम पड़ेगी।

मिश्र जी ने आठ दशकों की सृजन यात्रा में 100 से अधिक अमूल्य कृतियों का सृजन किया है। उनकी सृजन यात्रा अनेक उतार-चढ़ावों और मोड़ों से होकर गुज़री है, जिस पर ये मात्र विहंगम दृष्टि डालने का प्रयास भर है।

ऐसे रचनाकार प्राय : कम होते हैं जो अपने लिखे हुए पर अक्षरस: खरे उतरते हो, परंतु डॉ. रामदरश मिश्र ऐसे विरले व्यक्तित्व हैं जिन्होंने अपनी कविता के शब्द-शब्द को जिया है, अक्षर-अक्षर को महसूसा है और उसे जीवन में अर्थस: उतारा है। वे सच्चे साहित्य साधक हैं। यही कारण है कि जब उन्हें के. के. बिड़ला फाउंडेशन द्वारा 2021 के 'सरस्वती सम्मान' प्रदान किये जाने की घोषणा हुई तो साहित्य प्रेमियों ने उसका दिल खोलकर स्वागत और समर्थन किया, साथ ही सम्मानों के प्रति उनका खोया विश्वास भी वापस लौट आया, क्योंकि ये उस प्रतिभा का सम्मान था जो सम्मानों की दौड़ में कभी शामिल ही नहीं थी।

मिश्र जी को देश का सर्वोच्च सरस्वती सम्मान उनके कविता संग्रह-'मैं तो यहाँ हूँ' (2015) के लिए प्रदान किया गया। जिसमें उनकी जीवन, जगत, एवं सामाजिक सरोकारों से जुड़ी हुई 74 कविताएँ दर्ज हैं।

मिश्र जी, लोक चेतना के कवि हैं, प्रकृति उनके काव्य का मुख्य तत्व है। वे आस्थावान हैं परन्तु रूढ़िवादी नहीं। वे ईश्वर को मंदिर की मूर्तियों में समाधिस्थ न मानकर चिर नवीन प्रकृति के बिखरे रंगों में देखते हैं। जहाँ वह उन्हें अपने चेतन रूप में पुकार रहा है, 'मैं तो यहाँ हूँ' –

ऊब कर मन्दिर से बाहर निकला/तो देखा
चारों ओर पुष्पित खेत खिलखिला रहे थे
चहचहाती चिड़ियों का महारास मचा था
हवाएँ खुशबू में नहा रहीं थीं
और जड़- चेतन की त्वचा पर/
स्पन्दन की कहानी लिख रही थी
प्रतीत हुआ जैसे चारों ओर /
एक आवाज गूँज रही है/ मैं तो यहाँ हूँ।'

15 अगस्त 1924 को गोरखपुर (उत्तर प्रदेश) जिले के कछार

अंचल के 'डूमरी' गाँव में जन्में रामदरश मिश्र की प्रारम्भिक शिक्षा गाँव के ही माध्यमिक विद्यालय में हुई, उच्च शिक्षा के लिए वे वाराणसी गये, जहाँ से उन्होंने हिंदी में एम. ए. एवं पी. एचडी. की उपाधि प्राप्त की। सन 1956 में उनकी नियुक्ति बड़ौदा (गुजरात) में प्राध्यापक के रूप में हुई, सन् 1958 में वे गुजरात विश्वविद्यालय से संबद्ध हो गये और आठ वर्ष तक गुजरात में रहने के पश्चात 1964 में दिल्ली विश्वविद्यालय में आ गये, जहाँ से 1990 से सेवा मुक्त होकर अपनी सृजन साधना में पूरी तल्लीनता से रत हो गये।

कविता के प्रति प्रबल अनुराग और आकर्षण उनमें बचपन से ही था, ये संस्कार उनके भीतर ईश्वर प्रदत्त था। चौथी-पाँचवी कक्षा से ही पाठ्य पुस्तकों की कविताएँ पढ़ते हुए उनके भीतर कविता लिखने की तीव्र इच्छा या आकुलता उठने लगती थी, छठवीं कक्षा में आते-आते उन्होंने कविता लिखना प्रारम्भ भी कर दिया था और मिडिल पास करते-करते वे कई कविताएँ लिख चुके थे।

बनारस आकर उनकी इच्छा को जैसे पंख मिल गये, उन्हें वहाँ कविता का परिवेश भी मिला और प्रेरणा भी, शंभुनाथ सिंह, ठाकुर प्रसाद सिंह, नामवर सिंह, बच्चन सिंह, त्रिलोचन जैसे कवि मित्रों का सान्निध्य मिला, तो आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी जैसे गुरुजनों का आशीर्वाद और प्रोत्साहन भी मिला, इस नये परिदृश्य में उनके सक्रिय लेखन की शुरुआत हुई, उनकी भाषा और शिल्प में नया निखार आया। 1960 के आसपास उन्होंने गद्य लिखना भी शुरू कर दिया था, उनका पहला उपन्यास 'पानी के प्राचीर', 1961 में प्रकाशित हो चुका था।

मिश्र जी के लिए कविता शौक नहीं जीवन का सपना था, उनके अंदर से उठती आत्मा की आवाज थी। कविता ने उन्हें कभी हताश या निराश नहीं होने दिया, वह एक सपने और शक्ति की तरह उनके भीतर मौजूद रही, जिसे लेकर वह बालक गाँव से निकला था। अपने उसी दौर के अनुभवों को उन्होंने 'उसके भीतर एक सपना था' कविता में बहुत मार्मिकता से व्यक्त किया है-

'कच्चे टूटे मकान में/ तमाम हक़ीक़तें फैली हुई थीं
कभी भूख-प्यास बनकर/ कभी तन का नंगापन बनकर
इसी के बीच उसका बचपन / चलता रहा नंगे पाँव
पाँवों में काँटे चुभे/ पत्थर टकराये
घोर शीत ने गलाया/ प्रचंड ग्रीष्म ने जलाया
लेकिन उसके भीतर/ सदा एक सपना पलता रहा
जिससे वह हक़ीक़तों में होकर भी
उनके पार /देखा करता था/
गाँव में शिक्षा की एक मंजिल थी/ उसका मन हमेशा
उसके पार कुछ देखा करता था /
कुछ स्पष्ट तो नहीं था/ पर था जरूर
कभी-कभी लगता था/ वो खो गया है
नंगी हक़ीक़तों के विराट विस्तार में
लेकिन तभी कोई गुनगुनाने लगता था
धीरे-धीरे ज्ञात हुआ/ वो कविता थी
ऐसे ही चलती रही/ उसकी जीवन यात्रा
गाँव के सहयात्री रुकते चले गये
कोई यहाँ रुका / कोई वहाँ रुका
लेकिन 'उसके भीतर एक सपना था'
जो उसे ठेलता गया/हक़ीक़त के भीतर
और वह यहाँ तक आ गया
आज लगता है कि/ कठोर हक़ीक़तें
तो गुम हो गई / लेकिन उसका सपना
हक़ीक़त बनकर व्याप्त है
यहाँ से वहाँ तक।'

आज मिश्र जी का वही सपना बृहद साहित्य के रूप में हमारे सामने है। नित नये रंगों में ढलता हुआ वह 'सपना' आज भी उनके साथ चल रहा है। और उम्र के इस पड़ाव में भी ठहरने की अनुमति नहीं देता।

निकला था सालों पहले
घर से गठरी लिये सफर की
अब भी कल के लिए
रात में नये-नये सपने बुनता हूँ।

हिन्दी साहित्य के सशक्त हस्ताक्षर डॉ. रामदरश मिश्र जी बहुआयामी प्रतिभा सम्पन्न रचनाकार हैं, उन्होंने गद्य और पद्य की प्राय: सभी विधाओं में लेखन किया है। आठ दशकों से अनवरत जारी उनकी सृजन यात्रा ने हिंदी को विपुल और श्रेष्ठ साहित्य से समृद्ध किया है। उनकी अब तक सौ से अधिक पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। जिनमें बत्तीस गीत एवं कविता संग्रह, पंद्रह उपन्यास, तीस लघु कथा संग्रह, साहित्यिक आलोचना की पंद्रह पुस्तकें, पाँच निबंध संग्रह, यात्रा वत्तांत, आत्मकथा, संचयन, साक्षात्कार, एवं संस्मरण आदि सम्मिलित हैं।

साथ ही मिश्र जी ने विभिन्न मंत्रालयों में हिंदी सलाहकार समितियों के रूप में भी काम किया है। उनके उत्कृष्ट अवदानों के लिए उन्हें सरस्वती सम्मान सहित अनेक सम्मानों से अलंकृत किया जा चुका है, जिसमें साहित्य अकादमी सम्मान, व्यास सम्मान, भारत-भारती सम्मान, एवं शलाका सम्मान प्रमुख हैं। उनके साहित्य पर अब तक 300 से अधिक शोध प्रबंध एवं अनेक आलोचनात्मक कृतियाँ प्रकशित हो चुकी हैं।

डॉ. रामदरश मिश्र की सृजन यात्रा समय के कई मोड़ों से गुजरी है, उन्होंने बदलाव के कई रंग देखे, परिवर्तन की कई आँधियाँ देखीं, कई उतार-चढ़ावों से गुजरे परंतु बिना किसी धारा में बहे, बिना किसी रंग में ढले वे अपनी राह चलते रहे, क्योंकि उनके स्वाभिमानी व्यक्तित्व को किसी झंडे या विचार के फंदे से बंधना स्वीकार नहीं था, प्रगतिशील स्वभाव के कारण वे सदैव नवीनता के आग्रही रहे और समय के साथ आये सहज परिवर्तन को स्वीकारते गए।

मिश्र जी जितने समर्थ कवि हैं, उतने ही सशक्त कथाकार और उपन्यासकार भी हैं, अत: ये तय करना बहुत मुश्किल होता है कि वे कवि बड़े हैं या कथाकार। उन्होंने जिस भी विधा को अपनाया उसके साथ बहुत दूर तक चले और पूरी तरह डूबे, परंतु उनकी मूल संवेदना गीतों से ही बँधी रही, क्योंकि उनके भीतर लोकजीवन के संस्कार, ग्राम्य परिवेश, प्रकृति का अनुपम सौंदर्य और माटी की वह खाँटी गंध है जो गीत की उर्वर जमीन तैयार करती है। उनके गीत अपनी रागात्मकता और भाव प्रवणता के कारण पाठक के हृदय में गहरी अनुगूँज छोड़ते हैं।

इसी धरातल का उनका एक भाव प्रवण गीत दृष्टव्य है-

बार-बार बाँसुरी बजाओ न पिया।
लहरों के पार से बुलाओ न पिया।
गाते हो तुम मेरा मन गमगमा रहा
लगता है जैसे कुछ प्राण में समा रहा
सपनों से मन को गुहराओ न पिया।

मिश्र जी ने अपनी काव्य यात्रा गीत विधा से प्रारम्भ की, और गीतों का सुंदर छतनार संसार रचा, परंतु जैसे-जैसे वे गद्य लेखन में प्रवृत्त होते गए, गीत रचना की गति मंद होती गई, कालांतर में समय के मिजाज के साथ वे नयी कविता के साथ जुड़ गये, जिसका प्रभाव उनके गीत सृजन पर पड़ा, परंतु गीतों से उनका लगाव कम नहीं हुआ, गीतों के साथ ही उन्होंने छन्द की दूसरी विधाओं-ग़ज़ल और मुक्तक को भी अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया, इस तरह वे मुक्त छन्द की धारा में बहते हुए भी छन्दो की लय से सदैव बँधे रहे।

वे स्वयं स्वीकारते हैं-'मैंने सभी विधाओं में लेखन लिया है, पर गीत और कविता को छोड़ कर नहीं, अपितु कविता के साथ-साथ।'

यद्यपि उनका गीतकार पक्ष अनदेखा ही रहा क्योंकि उन्हें प्राय: सभी सम्मान गद्य या कविता : (आग की हँसी, आम के पत्ते, मैं तो यहाँ हूँ) की पुस्तकों पर ही मिले हैं।

जबकि उन्होंने एक से एक भाव प्रवण, सम्प्रेषणीय और स्पृहणीय गीत हिन्दी जगत को दिये हैं। भावों की गहराईयों और दर्शन की ऊँचाइयों की अन्विति के साथ सहज-सरल शिल्प में बँधा एक गीत यहाँ प्रस्तुत है-

यह भी दिन बीत गया
पता नहीं जीवन का यह घड़ा
एक बूँद भरा कि एक बूँद रीत गया।
उठा कहीं, गिरा कहीं, पाया, कुछ खो दिया।
पता नहीं इन घड़ियों का हिया
आँसू बन ढलका या कल का बन गीत गया।
एक लहर और इसी धारा में बह गई
एक आस यूँ ही बंशी डाले रह गई
पता नहीं दोनों के मौन में
कौन कहाँ हार गया, कौन कहाँ जीत गया।

मिश्र जी का पहला गीत संग्रह 'पथ के गीत' 1951 में प्रकाशित हुआ, दूसरा संग्रह 'बैरंग बेनाम चिट्ठियाँ' 1952 में आया, जिसमें गीतों के साथ कविताएँ भी संग्रहित हैं। इसके अतिरिक्त 'पक गई है धूप, कंधे पर सूरज, दिन एक नदी बन गया, मेरे प्रिय गीत,' जुलूस कहाँ जा रहा है, आग कुछ बोलती नहीं, बारिश में भीगते बच्चे, ऐसे में जब कभी, संग्रहों में दर्ज होते रहे।

मिश्र जी के समग्र गीतों में-लोक जीवन के संस्कार उल्लास, त्यौहार, प्रेम, प्रकृति, जीवन के दु:ख दर्द, अभाव पीड़ा, और संघर्षों के बीच आशा और उम्मीद का स्वर सुनाई देता है। इन गीतों के रचनाकाल में लम्बा अन्तराल होने के कारण संवेदना और विचार के स्तर पर बदलाव दिखाई देता है। समय के साथ भावुकता की जगह कवि के गीतों में लोकोन्मुखता का पक्ष गहराता चला गया।

मिश्र जी के इन्हीं गीतों ने इन्हें प्रगतिशील कवियों की श्रेणी में पहुँचा दिया, उनके कुछ गीत नवगीत श्रेणी में भी दर्ज किये गये, पर वे कभी गीत-नवगीत के फेर में नहीं पड़े।

'पथ के गीत' में जहाँ उन्होंने अपने निजी अनुभवों, सम्वेदनाओं को समय और परिवेश में मौजूद संघर्ष, शोषण, विसंगतियों, चुनौतियों, आशा-आकांक्षाओं, प्रकृति और प्रेम को चित्रित किया है, वहीं 'बैरंग-बेनाम चिट्ठियाँ' के गीतों में उन्होंने यथार्थ से हुए साक्षात्कार को अपने जीवनानुभवों के साथ पूरी प्रासंगिकता से उजागर किया है, यहाँ पहुँच कर कवि का स्वर व्यष्टि से समष्टि में समाहित हो जाता है। प्रारंभिक गीतों में समकालीन

रचनाकारों का स्वाभाविक प्रभाव भी परिलक्षित हुआ है–'मैं आषाढ़ का पहला बादल मेरी राह न बाँधो पढ़ते हुए 'हम पक्षी उन्मुक्त गगन के' डॉ. शिव मंगल सिंह सुमन का गीत स्मरण हो आता है–

मैं आषाढ़ का पहला बादल, मेरी राह न बाँधों।
जन-जन के डर का कोलाहल पीकर मैं आता हूँ।
मधुर कल्पना सा फिर नभ में उड़ता लहराता हूँ।
फिर भी दूर नहीं मुझसे जीवन की पगडंडी
धरती के अधरों पर बनकर बूँद उतर आता हूँ।
मेरी प्यास गरल पी-पीकर सुधा जलद बनजाती
धुआँ-घटा पी हँसने वाला, मेरी राह न बाँधो।

रामदरश मिश्र जी ऐसे रचनाकारों में से हैं, जो अपने सृजन में सदैव भारतीय ग्राम चेतना के साथ जुड़े रहे हैं, ग्राम जीवन के प्रति उनका असाधारण आकर्षण रहा है, जिसका यथार्थ निरूपण उनके सम्पूर्ण साहित्य चाहे गीत और कविता हों या उपन्यास सभी में मिलता है।

मिश्र जी ने गाँव बहुत कम उम्र में छोड़ दिया था, पर उसकी स्मृतियों और अनुभवों की पोटली वे आज तक अपने साथ सहेजे हुए हैं। उनका मन ग्राम जीवन की सुखद स्मृतियों में बार-बार लौट आता है, रेती पर रचे हुए समय के चिन्हों को ढूँढ़ता हुआ–

रच रेती पर चित्र पवन से
चले गये वे दिन उन्मन से
कमल पत्र पर मरी मछलियाँ
रख कर चली गयी जल परियाँ
उतर रहे हैं गिद्ध गगन से।

मिश्र जी के गीतों में विषय वैविध्य होते हुए भी संवेदना के स्तर पर एक समानता, एवं उनमें भावों और विचारों की सुन्दर संयुक्ति दिखाई देती है। मिश्र जी मूलत: प्रकृति और लोक जीवन के चितेरे हैं, उनकी संवेदना गाँवों से जुड़ी है। प्रकृति के रूप, रंग, गंध, नाद और स्पर्श को उन्होंने बहुत बारीकी से देखा और परखा है, इसीलिए उनके पूरे सृजन में प्रकृति अपने पूरे रंग और उल्लास के साथ उतरी है। कभी बिम्ब प्रतीक बनकर तो कभी उद्दीपन और अवलंबन बनकर।

उनके गीतों में नदी, तट, कछार, बादल, बरखा, शरद, बसंत, फागुन, नीम महुआ, आम, सेमल, हरसिंगार, खेत, फसले, धान, पिपहरी, सारस, मोर, तितलियाँ, फूल और धूप-छाँव के तमाम रंग प्रकृति का महारास रचाते दिखाई देते हैं।

'पीली बेला में कछार की, सरसों का वन फूला है।' एवं तालों के पंक हँसी कास, शरद आई है। 'व' पके धान सी धूप झरी पतझर आया।' जैसे अनेकानेक गीतों के मोती उनके संग्रहों में टके हैं, जिसमें बसंत का रंग कुछ अधिक ही गाढ़ा चढ़ा हुआ है–'खींच कर घर से एक बहकी हवा फागुन की, बीच चौरस्ते मुझे भटका गई है।'

बसंत का बीतना और फागुन का रीतना उनके भीतर अवसाद और उदासी का सहज भाव भर जाता है । इन गीतों की सबसे सुंदर प्रतीतिया वहाँ दिखाई देती हैं, जहाँ वे अपनी रागात्मक भावानुभूतियों को प्रकृति के सुंदर प्रतीकों और बिम्बों के माध्यम से आंचलिक शब्दावली में गूँथ कर लोकधुनों में पिरोते हैं–

'रात- रात भर मोरा पिहँके, बैरिन नींद न आये।
बड़े भोर सारस केंकारे, नदियाँ तीर बुलाये।
काँपे नदी, कछार, हवाओं में भर हौले-हौले
जल पाखी सा उड़-उड़ कूके सन्नाटा थर्राये।'

मिश्र जी के गीतों में बिम्बों और प्रतीकों की सुंदर योजना दिखाई देती है, जो उनकी अद्भुत कल्पना शक्ति सूक्ष्म परख दृष्टि और शैल्पिक प्रतिभा का प्रत्यक्ष प्रमाण है। उन्होंने अपने गीतों में नये-नये बिम्बों का विधान रचा है।

हवा के कमरे में आने का सुंदर बिम्ब उपस्थित करता ये गीत–

खिड़की से एक हवा आयी,
पोर-पोर कमरे की काँप गई।
टँगी हुई तारीखें भीत पर,
पाँव फड़फड़ाती सी उड़ गई
आकृतियाँ चित्रों में वंदिनी,
हिली और कई मोड़ मुड़ गई
उलट गयी पर्दे को द्वार से,
खुला हुआ नंगापन ढाँप गई।

इसी तरह 'एक नीम मंजरी' के प्रतीक के माध्यम से प्रथम प्रणयानुभूति के उद्दीपनों को बहुत सूक्ष्मता से अभिव्यक्त किया है –

एक नीम मंजरी मेरे आँगन झरी
काँप उठे लोहे के द्वार
आज गगन मेरे द्वार तक झुक गया
झटका सा मेघ यहाँ रुक गया।
रग-रग में थर-थरी, सन्नाटा आज री!
रहा मुझे नाम से पुकार।

बिम्बों और प्रतीकों के साथ ही इन गीतों में शब्दों का बहुत सधा और सुंदर प्रयोग हुआ है। जिसके कारण इनकी अर्थ व्यंजना और सघन हुई है। भाषा पर मिश्र जी का एकाधिकार है।

मिश्र जी लिरिकल कवि हैं, उन्होंने अपने गीतों के विषय में लिखा है कि–'इसमें ग्राम जीवन की कहीं लय है, और कहीं लय और प्रवाह दोनों!' वे अनुभवों की मजबूत जमीन पर भाषा का नया मुहावरा और नये प्रतीक गढ़ते हैं, उनके ये गीत कथ्य और शिल्प की दृष्टि से विशेष महत्व रखते हैं।

अपनी रचनाओं में वैयक्तिक राग और प्रकृति के प्रति अनुराग को पिरोने वाले मिश्र जी के गीतों में सामाजिक सरोकार और मानवीयता का स्वर भी मुखरित होता रहा है। वे सतही यथार्थ की जगह अन्वेषी यथार्थ के सर्जक हैं, उनकी रचनाएँ समकालीन यथार्थ बोध से संपृक्त हैं, उनके गीतों में कवि दृष्टि का उन्मेष शिखर पर है। मिश्र जी ने गीत और कविता में अपनी सृजनात्मक प्रतिभा की प्रभावशाली अभिव्यक्ति के साथ–साथ ग़ज़ल में भी अपनी सार्थक उपस्थिति रेखांकित की है। उनके कई ग़ज़ल संग्रह प्रकाश में आ चुके हैं—

'बाजार को निकले हैं लोग', हँसी ओंठ पर आँखें नम हैं, तू ही बता जिंदगी, दूर घर नहीं हुआ बनाया है मैंने ये घर धीरे–धीरे। गीतों की अपेक्षा उनकी ग़ज़लों में यथार्थ बोध का स्वर अधिक मुखर हुआ है। सहज–सरल भाषा कहन की सादगी, एवं कथ्य की ताजगी से ये ग़ज़लें बहुत लोकप्रिय हुई हैं और प्राय: कोड की जाती हैं। 'बनाया है मैंने ये घर धीरे–धीरे' उनकी पहचान की ग़ज़ल बन गई है।

कुछ ग़ज़लों के शेर प्रस्तुत हैं–

एक नन्हा ख्वाब मेरा खो गया जाने कहाँ
गाँव देखा, शहर देखा, राजधानी देख ली।
फूल से बचपन के शिर देखा बुढ़ापे का पहाड़
आँसुओं की आँच में गलती जवानी देख ली।

बाजारवाद पर एक ग़ज़ल–

कल यहाँ था बाग, बिक कर कारखाना हो गया।
खेत था जो, अब शहर का आशियाना हो गया।
कल तलक तो घर–घरों में पैठ बतियाते रहे
हाट का अब तो घरों में आना जाना हो गया।

और इसका आखिरी शेर कि–

है अभावों से घिरा लेकिन कलम है हाथ में
जिंदगी जीने का सुंदर सा बहाना हो गया।

मिश्र जी की प्रवृत्ति मूलरूप से सृजनात्मक है, जिसके चलते उनकी लेखनी सदैव गतिशील रहती है, सृजन उनका स्वभाव है। वे कवि के साथ ही ख्यात उपन्यासकार कथाकार, निबंधकार आलोचक, आत्मकथा एवं संस्मरण लेखक हैं। उनके पास गद्य साहित्य की विशाल थाती है। उपन्यासकार के रूप में उन्होंने बड़ी प्रतिष्ठा अर्जित की है एवं हिंदी साहित्य को 15 उपन्यासों का अमूल्य उपहार दिया है, जिसमें आंचलिक और सामाजिक दोनों श्रेणियों के उपन्यास है।

फणीश्वरनाथ रेणु के 'मैला आँचल' के बाद देश में मिश्र जी ही एक मात्र ऐसे लेखक हैं, जिनकी ख्याति आंचलिक उपन्यासकार के रूप में अंकित है। उन्होंने अपने उपन्यासों के माध्यम से पानी की विकराल समस्या को उठाया है। उनके तीनों आंचलिक उपन्यास 'पानी के प्राचीर', 'जल टूटता हुआ', और 'सूखता हुआ तालाब' पानी के विषय को लेकर केंद्रित है।

इन उपन्यासों में गाँव के जीवन का यथार्थ चित्रण हुआ है, जिसमें दो नदियों के बीच कछार अंचल में फैले गाँव में बाढ़ और सूखे की विभीषिका से जूझते ग्रामीण जनों के दु:ख दर्द, अभाव, गरीबी, और त्रासदी के साथ उनसे जुड़ी अन्य समस्याओं को भी गहराई से उभारा है।

रामदरश मिश्र के उपन्यासों के संदर्भ में 'प्रकाश मनु' ने लिखते है–पानी में बहते–बहते उपन्यासों के समाप्त होने पर जब सतह पर आते हैं तो प्रतीत होता है कि–'पानी के प्राचीर, टूटता हुआ जल, और सूखता हुआ तालाब पढ़ रहे थे या किसी अंचल में घूमने निकल गए थे।'

मिश्र जी के अन्य उपन्यास–बीच का समय, अपने लोग, रात का सफ़र, आकाश की छत, बिना दरवाजे का मकान, दूसरा घर, थकी हुई सुबह आदि सामाजिक उपन्यासों की श्रेणी में आते हैं, आंचलिक उपन्यासों की तरह इनमें भी 'परिवेश' ही नायक की तरह जीवन के विविध आयामों को प्रदर्शित करते हुए आगे बढ़ता है, लेखक ऐतिहासिक घटनाओं का सहारा न लेकर, नवीन सन्दर्भों से जोड़कर कथा का सृजन करता है, जो कि कहीं न कही अंचल से जुड़ जाता है।

मिश्र जी के सृजन का मूल अभिप्राय मालवीय मूल्यों की

स्थापना रहा है जिसके लिए वे सदैव प्रतिबद्ध दिखाई देते हैं। शोषितों, पीड़ितों, दलितों और विशेष कर स्त्रियों के प्रति उनके मन में विशेष सहानुभूति और संवेदना रही है। वे स्वयं कहते हैं –'गाँव में मैंने स्त्रियों को बहुत पीड़ित होते देखा है, उनकी पीड़ा, उनका दर्द मुझे बहुत सालता रहा है, मैंने अपने परिवार में, और अपनी बड़ी बहन को ससुराल में सताये जाते देखा है, उसकी सारी पीड़ा और दर्द आज भी मेरे भीतर है। इसी तरह मेरा मन दलितों और पीड़ितों के प्रति सदा आकुल होता रहा।'

यद्यपि आज स्त्रियों की स्थिति में सुधार आया है, पर गाँवों में उनकी दशा कमोवेश वही है। गाँवों के साथ-साथ वे शहर की दोहरी जिम्मेदारी का बोझ उठाने वालीं आज की शहरी स्त्रियों के प्रति भी अपनी गहरी संवेदना व्यक्त करते हैं–

मुर्गा बोला कहीं शहर में,
उठो सुहागिन चार बज गये।
क्या सोना आखिरी पहर में
उठो सुहागिन चार बज गये।
चौका छोड़ जात पर जाना
इतना ही विश्राम तुम्हारा
घर के हर स्पन्दन में अंकित-सा
रहता है नाम तुम्हारा।
थोड़ा सो लेना तिजहर में
उठो सुहागिन चार बज गये।

मिश्र जी ने अपनी जीवन यात्रा के साथ साहित्य का लम्बा सफर तय किया है। अपने अदम्य साहस और जिजीविषा से राह के तमाम अवरोधों और प्रतिरोधों को पार करते हुए वे उस मुहाने तक आ पहुँचे हैं, जहाँ आते-आते कई नदियाँ सूख जाती हैं, पर उनकी संवेदना का अजस्त्र स्रोत आज भी जस का तस है, कविता संजीवनी की तरह आज भी उनके साथ चल रही है, जिसका उत्स उनके बचपन का वह गाँव और गाँव का वह बच्चा है जो आज भी उनके भीतर मौजूद है, स्मृतियों का वह गाँव उन्हें आज भी माँ की तरह पुकारता है।

वे गाँव के उन कष्टों और अभावों के प्रति कृतज्ञ हैं जिन्होंने उन्हें अनुभवों की अपार संपदा दी, जीने की शक्ति दी, दूसरे के दुखों को समझने की संवेदनात्मक दृष्टि और सर्जनात्मक उर्वरता दी। वे स्वयं कहते हैं–'मेरा कवि हमेशा महसूस करता रहा है कि अनुभव सबसे बड़ी ताकत होती है, कवि की विचार धारा एक विजन है, दृष्टि है, जो अनुभव को रचती है, बनाती नहीं, अनुभवों ने मुझे बहुत बल दिया है।'

मिश्र जी को लम्बी उम्र का वरदान सम्भवत: इसीलिए मिला है कि उन्होंने एक-एक पल को सहेजा, उसके मूल्य को समझा और समय के सहचर बनकर उसे अपनी मुट्ठियों से कभी छूटने नहीं दिया, उन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन साहित्य सृजन को समर्पित किया है।

कविता उनका कर्म भी है और धर्म भी। नित्य कुछ न कुछ लिखना और नया जोड़ना उनकी दिनचर्या में शुमार है। उम्र के चलते अनेक शारीरिक शिथिलताओं के बावजूद वे अपने अवसाद और उदासी के पलों को छोटी-छोटी कविताओं में दर्ज करते रहते हैं–

'पूछते हो, इन दिनों फ़ुरसत में क्या करता हूँ मैं
वक्त का अपने फटा दामन सिया करता हूँ मैं
व्याप जाती है घुटन जब जिंदगी की साँस में
अपनी कविताओं के पंखों से हवा देता हूँ मैं।'

सहज-सरल परंतु दृढ़ व्यक्तित्व के धनी मिश्र जी जितने बड़े साहित्यकार हैं उतने ही बड़े इंसान है। सहजता, साफ़गोई, आत्मीयता के साथ संतुष्टि उनके स्वभाव का मुख्य गुण है। वे अपने जीवन और सृजन से पूर्णतया संतुष्ट हैं।

और अपने सफर कुछ इस तरह याद करते हैं–

'एक लम्बा सफ़र था मेरे दोस्तों
राह चलती रही, मोड़ खाती हुई
साथ हो ली हवा आग बन के कभी
और कभी प्यार से महमहाती हुई
कंटकों ने किये चाक जब भी बसन
छा गये फूल बनकर वसन देह पर
थक के बैठा जब भी मौत के पास मैं
जिंदगी आ गयी गुनगुनाती हुई।'

शतक की देहरी पर खड़े इस युग पुरुष ने साहित्य साधना की पूरी सदी तय की है और अपने अमूल्य अवदानों से हिंदी साहित्य को उपकृत किया है। उनका जीवन और सृजन हम सभी के लिए प्रेरणा स्रोत है। वे पूर्ण स्वस्थ, प्रसन्न और चिरायु हो, उनकी छत्रछाया हिंदी के शीश पर सदैव बनी रहे, यही शुभकामना है।

6-साई पैलेस, साई हिल्स
कोलार रोड, भोपाल-462042 (म. प्र.)
मो.-9893104204

सर्जनात्मक समालोचक रामदरश मिश्र

– राहुल श्रीवास्तव

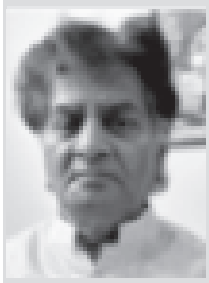

जन्म – 2 अक्टूबर 1952।
जन्मस्थान – वाराणसी (उ.प्र.)।
शिक्षा – एम.ए., पीएच.डी।
रचनाएँ – छः पुस्तकें प्रकाशित।
सम्मान – उ.प्र. हिंदी संस्थान द्वारा ईश्वरी प्रसाद सर्जना पुरस्कार।

साहित्य का सृजन भाषा के अपने विभिन्न कार्यों में एक महत्त्वपूर्ण कार्य है इसलिए साहित्य को सम्यक समझने के लिए भाषा की कार्य बहुलता और उसकी साहित्य निर्माणकारी छटा को समझना अति आवश्यक है। भाषा की सार्थकता लेखकीय संवेदना का अंग होती है। परंपरागत प्रवृत्तियों के साथ नकार की युगी प्रवृत्तियों और परिस्थितियों का आंतरिक संघर्ष चलता रहता है। डॉ. रामदरश मिश्र की मान्यता है कि भाषा की सार्थकता इस बात में है कि वह कवि की अपनी संवेदना के साथ कितनी हो सकी है। यह सच है कि युग मानव-संवेदना और कवि-संवेदना को बदलता है। इस बदली हुई संवेदना और इसे केंद्र में रखकर परंपरागत मानव-संवेदना की पहचान करना और उसकी अभिव्यक्ति करना कवि का कार्य होता है और इसी संदर्भ में हर युग की कविता की भाषा समष्टिगत रूप में परंपरागत भाषा से कुछ अलग ही ठहरती है, किंतु समष्टिगत रूप के बावजूद कवि के संदर्भ में भाषा एक वैशिष्ट पाती है। यह वैशिष्ट्य उस कवि की निजी दृष्टि, निजी संवेदना और अनुभव के कारण उत्पन्न होता है।

समालोचना साहित्य ही वह दीपशिखा है जिसके द्वारा अतीत के अँधेरे में छिपे महान साहित्यकार और उनका सत्य-शिव और सुन्दर; आनन्दमय) साहित्य हमारे सामने प्रकाशित होता है। वर्तमान साधक-साहित्यकार और उनका उपादेय जनमत के बीच में चमत्कृत होने की दिशा पाता है। और भविष्य के अज्ञात अजन्में युगान्तकारी संभावित साहित्यकार और उनका वैभवपूर्ण साहित्य जनसमाज की गोद में क्रीड़ा करने के लिए भ्रूण रूप लेने लगता है।

भाषा की सार्थकता पर विचार करने के लिए समूची संस्कृति के साथ उसके समग्र संबंध का विचार करना लाजिमी है। रचना के मूल व्यापार को अभिन्न रूप से स्वीकार करते हुए उसके भावों और जीवन-व्यक्तित्व से जोड़कर देखना होगा जो समीक्षक समालोचक इन दृष्टियों से किसी रचना के सृजन और कला-पक्ष पर अंतर्बाह्य दृष्टि से विचार करता है, या किसी निर्वैयत्तिक भाव को पढ़ने वाले तत्वों की स्थापना करते हुए निर्लेप रूप से विचार करता है, उसकी अभिव्यक्ति महत अस्तित्व रखती है। क्योंकि समालोचना द्वारा ही साहित्य के बाहरी-भीतरी, सूक्ष्म-स्थूल ज्ञान की उपलब्धि हो सकती है, उसके द्वारा कोई प्रतिभाएँ खोजी जा सकती हैं, दबी हुई प्रतिभाएँ उभारी जा सकती हैं और अंकुर प्रतिभाएँ सींची जा सकती हैं।

सुप्रसिद्ध कथाकार, कवि-गीतकार डॉ. रामदरश मिश्र ने एक दर्जन से अधिक काव्य संग्रह लिखे हैं-गीत, कविता, कहानी, उपन्यास, आदि विधाओं की प्रासंगिक चर्चा हुई है और मनीषी विद्वानों ने अपने-अपने ढंग से इनकी खूबियों को उद्घाटित किया है। लेकिन इनके आलोचन-पक्ष पर अभी तक उतनी गंभीरता से विचार नहीं किया गया और यदि कहीं कुछ किया भी गया होगा तो इन पंत्तियों के लेखक को उसकी विशेष जानकारी नहीं है। क्योंकि कोई गंभीर आलोचना ग्रंथ देखने में नहीं आया। खैर! आलोचना रचना के बारे में नहीं, रचना के साथ परस्पर मुखातिब हुए बिना कोई भी गंभीर समीक्षात्मक सृजन अपना अर्थ अभिप्राय नहीं रख सकता।

मिश्र जी की ओलाचना के सर्जनात्मक पक्ष पर विचार करने के लिए 'हिंदी समीक्षा स्वरूप और संदर्भ' (1974), जिसमें, द्विवेदी युग की समीक्षा, रामचन्द्र शुक्ल और उनकी परम्परा, स्वच्छन्दवादी समीक्षा, प्रगतिवादी समीक्षा, स्वच्छन्द समीक्षा, नई समीक्षा एवं गद्य-साहित्य और समीक्षा विशेष अर्थवान हैं। रामदरश मिश्र रचनावली खंड-14, (2000) और रचनावली का आलोचना खंड-13 प्रकाशन वर्ष (2000), विशेष पठनीय और गौरतलब हैं।

मिश्र जी की आलोचना तथाकथित मठाधीशी आलोचना से अलग आयाम लिए है। अपनी समीक्षा के संबंध में मिश्र जी की उक्ति है, 'मैं भले ही स्वत: प्रेरित होकर नहीं, बल्कि बाहरी दबाव से आलोचनाएँ लिखी हैं पर जब लिखा तो अपनी शक्ति भर उसमें उतरने का प्रयास किया।' (आलोचना, खण्ड 14: मेरी आलोचना-यात्रा।'

प्राय: अब तक जो आलोचनाएँ लिखी गई हैं, पश्चिमी ढंग-ढर्रे पर ही टिकी हैं। जैसा कि हिंदी की आधुनिक आलोचना पर पाश्चात्य मनोविश्लेषणवाद का भी गहरा प्रभाव है। ऐसे हिंदी आलोचकों से भारतीय आलोचनाशास्त्र के संस्कार भी उपेक्षित हैं, प्राय: उनमें मौलिकता का अभाव है।

नई आलोचना की तलाश करते हैं और सर्जनात्मक आलोचना पर दृष्टि डालते हैं और इसके मेरुदंड के रूप में डॉ. रामदरश मिश्र जिन्हें कथाकार कवि कहना अधिक समीचीन होगा, अपने समकालीन से पृथक 'प्लेटफार्म' पर प्रतिष्ठित दिखते हैं। उनकी समालोचना उस दर्जे की नहीं जो कृति की हत्या कर रही हो या बीमार मानसिकता से ग्रस्त हो। एक स्वस्थ और सही दृष्टिकोण लेकर डॉ. मिश्र अपनी बात कहते हैं जिसमें सिद्धांतों, प्रवृत्तियों और मौलिकता की एक गहरी सोच दिखती है। जिस नई आलोचना की तलाश आधुनिक परिवेश में की जा रही है और जिसकी अपेक्षा प्राय: सभी करते हैं वह इनमें विद्यमान है। इनकी आलोचना कहीं भी दुर्भावनापूर्ण नहीं लगती क्योंकि इनका सृजन सहज और साफ है। ये जिस सामाजिक बोध को लेकर अपने सृजन का ताना-बाना बुनते हैं, उसी नजरिए से ये अपने आलोचक-धर्म को भी निभाते हैं। जब कुछ समालोचक अपनी बात को अपने पूर्वाग्रह से ऐसी कर देते हैं कि उसके प्रभाव में किसी भी मूल रचना के प्रति सामान्य पाठक का भाव और दृष्टिकोण कुंठित हो जाता है। कुछ समालोचक ऐसी समालोचनाएँ भी लिखते हैं जिनमें अखबारी सूचनाओं का प्रहार मात्रा होता है। मिश्र जी की समालोचना इन परिवादों से पृथक पुष्ट परिवेश लिए हैं। सद्समालोचना और समालोचक का अस्तित्व स्थायी होता है। वे असंख्य पाठकों के नि:स्वार्थ निदेशकवत रहते हैं। ऐसी दशा में एक समालोचक और उसकी समालोचना मध्यस्त बनकर साहित्य की रस-सृष्टि में सहायक सिद्ध होती है। इसलिए समालोचक को अध्ययनशील-मननशील-सरस और विषय के सब तत्वों का गंभीर मौलिक चिंतक होना चाहिए, जैसे यहाँ है।

समाज की अन्य वस्तुओं की तरह साहित्य का मूल्यांकन भी उसी सामाजिक उपयोगिता के आधार पर करना अथवा स्वीकार कर लेना सृजन-धर्म है। आज जरूरत है हमें साहित्यिक और साहित्येतर लेखन में अंतर करते हुए उत्कृष्ट और साधारण साहित्य का भेद समझना। तभी हम साहित्य के आधारभूत सत्य को उद्घाटित कर सकते हैं। डॉ. रामदरश मिश्र नई आलोचना (न्यू क्रिटिसिज्म) की नींव रखते हैं और उस पर अपनी सर्जनात्मक आलोचना की मजबूत दीवार खड़ी करते हैं। चूँकि आलोचक साहित्य का प्रेरक होता है और भावी-पीढ़ी का दिशा-निर्देश करता है। इसलिए उसकी दृष्टि निष्पक्ष और साफ होनी चाहिए।

मिश्र जी में ऐसा गुण-वैशिष्ट्य विद्यमान है। वे समालोचक हैं। सद्समालोचना और समालोचकों का अस्तित्व स्थायी होता है। डॉ. रामदरश मिश्र ने अपनी रचनावली के खंड-14 में हिंदी उपन्यास: एक अंतरयात्रा, प्रेमचंद-पूर्व युग, प्रेमचंद युग, प्रेमचंदोत्तर युग, हिंदी कहानी अंतरंग पहचान के अंतर्गत प्रेमचंद और उनकी परंपरा, जयशंकर प्रसाद और उनकी परंपरा, मनोवैज्ञानिक कहानी, समाजवादी कहानी, स्वतंत्रा कहानी-धारा, नई कहानी, नई कहानी यथार्थ के विविध आयाम, साठोत्तरी कहानी तथा कुछ कहानीकार पर बड़ी गंभीरता से विश्लेषण किया है और सुहृद पाठकों के समक्ष चिंतन का एक नया आयाम प्रस्तुत किया है। उनमें प्रभावक गुण निहित है। बानगी के तौर पर कुछ खास टीपें-

मिश्र जी की समालोचना में देशकालीन परिस्थितियों की सूक्ष्म स्पंदनशीलता है। वे रचनाकार के जीवन वृत्त उसका सामाजिक धर्मिक दार्शनिक दृष्टिकोण और ऐतिहासिक वातावरण भी उसमें अशंत: अंकित करते हैं। अज्ञेय के बहुचर्चित उपन्यास 'शेखर एक जीवनी' जिसमें पानी का अवतरण पाठकों में हल्की उत्पन्न करता है, के बारे में उनका कथन है- शेखर एक जीवनी (दो भाग-1941-14) यह जीवनी के रूप में लिखा गया उपन्यास है। उपन्यास के प्रतिष्ठित शिल्प से कुछ अलग है। इसका वस्तुगठन भी प्रचलित वस्तु-गठन से भिन्न प्रकार का है और जीवन के महत्त्वपूर्ण माने गये समयों और संदर्भों के स्थान पर इसमें दैनिक जीवन की सामान्य सी दिखने वाली बातों का सूक्ष्म आकलन और अंकन मिलता है। एक ऐसे व्यक्ति की 'जीवनी' है, 'जो अपनी अनुभूतियों और जिज्ञासाओं के प्रति बेहद ईमानदार है।

मिश्र जी के आलोचना में शब्दों की कर्कशता नहीं, एक सादगी-सौम्यता है। ये कहीं नकारात्मक रवैया अख्तियार नहीं करते। पंडित हजारी प्रसाद द्विवेदी कृत 'बाणभट्ट की आत्मकथा' की अनेक समीक्षाएँ हुई हैं लेकिन रामदरश मिश्र का विश्लेषण

अपने ढंग का है, उनकी आलोचना दृष्टि सर्जनात्मक प्रविधि की है। 'बाणभट्ट की आत्मकथा' ऐतिहासिक उपन्यास के दायित्व को निबाहने पूर्णत: समर्थ हैं। ऊपरी दृष्टि से देखने पर इस उपन्यास में आधुनिक कालीन चेतना नहीं दिखेगी। किंतु गहरी दृष्टि इस चेतना को खोज पाने में धोखा नहीं खा सकती। द्विवेदी जी ने इतिहास में प्राप्त हर्षकालीन स्थूल आँकड़ों को आधार न बनाकर तत्कालीन साहित्यों में चित्रित सत्यों को आधार बनाया है। इन बिखरे हुए सत्यों को गूँथ कर लेखक ने बहुत सशक्त और सुन्दर वातावरण तैयार किया है!

बाण का चरित्र-निर्माण एक ऐसे पात्र का निर्माण है जो किसी भी तथाकथित नियम में नहीं बँधता। किंतु द्विवेदी जी ने इस पात्र को, प्राप्त सत्यों की रक्षा करते हुए भी नवीन रूपरेखाओं से एक ऐसा व्यक्तित्व प्रदान किया जो अपनी निरांडम्बरता और मानवीयता से हर युग को प्रभावित कर सकता है। मैला आँचल' फणीश्वरनाथ रेणु का बहु चर्चित उपन्यास है। इसमें ग्राम संस्कृति की विवृत्ति है तथा तत्कालीन मनोवृत्तियों का चलचित्र है। उपन्यास में सर्वत्र पात्रों का जटिल जीवन, मानवीय रोचकता मुखर है-लगता है, जैसे पाठक साक्षात खड़े हुए लोगों का जीवन-नाटक देख रहा है। डॉ. मिश्र ने रेणु के 'मैला आँचल' उपन्यास पर भी अपना गंभीर विवेचन इस प्रकार प्रस्तुत किया है।

हमारा देश बहुभाषी और विविध संस्कृतियों का देश है किंतु इस विविधता में एकता ही यहाँ की विशिष्टता है। लोक-संस्कृति के क्षेत्रा, विस्तार अत्यन्त व्यापक हैं। इसमें उसके जीवन-दर्शन, विश्वासों आस्थाओं, रहन-सहन, प्राचीन परम्पराओं का समावेश रहता है और लोक-साहित्य में लोक-जीवन का सहज-सरल सुन्दर एवं निष्कप रूप प्रतिबिम्बित होता है। लोक-संस्कृति और साहित्य पर प्रकाश डालते हुए मिश्र जी लिखते हैं-संस्कृति का एक पहलू लोक-संस्कृति है। संस्कृति की परिधि में आधुनिक बोध सम्पन्न शिक्षित समाज की संस्कृति भी आती है और क्रमागत मान्यताओं, विश्वासों और मूल्य-चेतना से जुड़े हुए अनपढ़ या कम पढ़े-लिखे देहाती अंचल के लोगों की संस्कृति भी आती है। लोक से अभिप्राय मनुष्य-समाज के उस वर्ग से है जो अभिजात्य संस्कार, शास्त्रीयता और पांडित्य की चेतना और पांडित्य के अहंकार से शून्य है और जो एक परंपरा के प्रवाह में जीवित है। इसी लोक की संस्कृति का नाम लोक-संस्कृति है। लोक-संस्कृति अपेक्षाकृत अधिक स्थिर, परंपरावादी और सामूहिक होती है।

उपन्यास हो, कहानी हो, निबंध हो-या आलोचना, डॉ. मिश्र की अपनी दृष्टि बड़ी साफ है, उसके सभी पक्षों पर ये बड़ी बारीकी से विचार करते हैं कविता का प्रामाणिक प्रभावी और मौलिक कथ्य अनुभूति, अनुभव यानी अंतरपरक होता है। यही कथ्य अपना प्रबल प्रभाव छोड़ता है। कविता का यही कथ्य सामाजिक के लिए 'सब्जेक्टिविटी' का समूचापन होता है। मिश्र जी के शब्दों में, 'विचार और अनुभूति की साझेदारी कविता में हमेशा से रही है किंतु जितनी प्रत्यक्ष साझेदारी आज की कविता में दिखायी पड़ती है, संभवत: उतनी कभी नहीं रही। इसीलिए कुछ कवियों और आलोचकों ने आज की कविता के वैशिष्ट्य को सूचित करने के लिए उसे 'विचार कविता' नाम दिया है। यह नाम सही है या गलत इस विवाद में पड़े बिना मैं यह कह सकता हूँ कि आज की कविता पर विचार का दबाव ज्यादा है।

पंडित बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' की कविता पर भी उनके विचारों में एक नयापन है। वे कहते हैं, 'नवीन' मूलत: छायावादी (रूमानी) कवि हैं। उनमें छायावाद की ही प्रवृत्तियाँ अपनी विविध छायाओं के साथ स्पंदित हैं। छायावादी कविता में कवि के व्यक्तित्व की सघन छाया है और नवीन का व्यक्तित्व मूलत: रूमानी है। उनका स्वच्छंद व्यक्तित्व किसी भी तट से आब (न होकर सबको छूता हुआ बहता रहता है। राजनीति भी उनकी भावुकता और मस्ती को आक्रान्त न कर उससे प्रभावित होती है। इसीलिए नवीन की राजनीतिक कविताएँ, राजनीतिक दल से आब) न होकर उनकी भावुकता के ही प्रति समर्पित दीखती हैं। एक सहज भावुक मन में देश-प्रेम तथा देश की हीन अवस्था और विद्रोह की जो प्रतिक्रिया जग सकती है, नवीन में जगी।

कविता के कथ्य-कथन-संचार सम्प्रेष्ण (content-craft-communction) की अपनी अलग सी एक पहचान होती है। 'नई कविता' और 'नवगीत' के सृजनात्मक के दोनों सीमान्तों -जो अस्तित्व में बिल्कुल अलग है। डॉ. मिश्र ने विचार किया है। स्वांतत्र्योत्तर हिंदी कविता में वह सहज संवेदन नहीं, जिसके न होने से कविता आम आदमी के काम की काफी कम हो जाती है।' गेय कविता ही एक प्रकार का गीत है किंतु श्रेष्ठ गीत कविता कामिनी का श्रीमुख होता है। यह आदिम भाव का प्रभावशाली रागमय रूप है, यह व्यक्तिनिष्ठ नहीं होता क्योंकि उसमें आत्मनिष्ठता ही नहीं, वस्तुनिष्ठता (भी) होती है। रामदरश मिश्र गीत के भी सर्वाधिक सशक्त हस्ताक्षर हैं। उनके गीत बड़े उम्दा किस्म के हैं। मैंने उन्हें पढ़ा ही नहीं, स्वयं सस्वर पाठ करते हुए सुना है। वे गीत के लिए गीतात्मक संवेदना को प्रधान मानते हैं। गीत के बारे में उसकी आलोचकीय दृष्टि देखिए-

'जब हृदय किसी सौन्दर्य या अनुभूति या भाव-सत्य के साथ तन्मय होकर अपनी सम्पूर्ण आत्मीयता से उसे अभिव्यक्ति देता है तब गीत बनता है। स्पष्ट है कि गीत की भूमि कवि की अत्यन्त निजी भूमि होती है। गीत मन को भोगी हुई एक अत्यन्त तीव्र निजी स्थिति है। इस स्थिति की सघनता इसकी आकार-लघुता में ही है, स्फीति में नहीं। अर्थात् यह स्थिति सघन रूप में थोड़ी ही देर रह सकती है। इसलिए गीत अत्यन्त प्रभावकारी तभी होते हैं जब आकार में छोटे होते हैं और तब एक ही मूल संवेदना या सौन्दर्य से अनुस्यूत होने के कारण समग्र गीत एक तीव्र प्रभाव से अन्वित हो उठता है। गीत की यही प्रकृति है और इस प्रकृति में ही यह गौरवशाली और सार्थक है।' इधर जो गीत सामने आ रहे हैं, जिन्हें कुछ लोग मात्रा गीत कहते हैं और कुछ लोग उन्हें पिछले गीत से अलग करने के लिए 'नवगीत' की संज्ञा दे रहे हैं उनमें से कुछ निश्चय ही अच्छे और ताजा हैं, उनमें नयी गीतात्मक संवदेना को नयी कविता के ही समान नये बिम्बों के द्वारा व्यंजित किया गया है।

छायावादी कवियों की कविता और गीतों पर टिप्पणी करते हुए मिश्र जी लिखते हैं, 'निराला जी, छायावादी काव्य-परम्परा में उच्चकोटि का सृजन तो करते ही रहे, साथ ही साथ लोक जीवन के प्रति अधिकाधिक उन्मुख होकर 'कुकुरमुत्ता, अणिमा, बेला, नये पत्ते' जैसी कविता पुस्तकें लिखीं। 'तुलसीदास, कुकुरमुत्ता, अणिमा, बेला, नये पत्ते, अर्चना' और 'आराधना' इस बीच की इनकी ये सात कृतियाँ हैं। 'तुलसीदास (1938) एक प्रबंध काव्य है। कवि तुलसीदास इसके नायक हैं। इसमें तुलसीदास एक संस्कृति नेता के रूप में प्रस्तुत किये गये हैं। वे भारत की सामाजिक और सांस्कृतिक दासता से पीड़ित होकर देश के उद्धार का संकल्प लेते हैं। 'कुकुरमुत्ता' (1942) एक रूपक काव्य है जिसमें गुलाब और कुकुरमुत्ता के माध्यम से शोषक अभिजातवर्ग और स्वावलंबी, श्रमशील तथा उपेक्षित जनसामान्य के जीवन सम्बन्धों को दिखाया गया है।

छायावादी गीतों के बारे में बड़े बेबाक ढंग से अपना मत व्यक्त करते हुए लिखते हैं-'छायावाद जिस व्यक्तिवादी चेतना के उन्मेष से स्पंदित है वह उन्मेष अपने मूल में समाज विरोधी नहीं है। वह विरोधी है सामंती जड़ सामूहिकता का। अपने अनुभव, अपनी दृष्टि, अपना चिंतन, अपनी कल्पना खोकर व्यक्ति जो समूह बनाते हैं उसकी सार्थकता कहाँ है? वह किस रूप में जीवंत कहा जा सकता है। सड़ी-गली रूढ़िबद्ध वर्णाश्रम व्यवस्था में जकड़े हुए मूल्यों और स्थिर संबंधों में फँसे हुए व्यक्तियों का समाज किस काम का? पूँजीवादी और छायावादी व्यक्ति स्वातंत्र्य व्यक्तियों के अपने अनुभवों, चिंतन, कल्पना आदि को महत्त्व देता है और समाज का निषेध न करके एक ऐसे समाज की कल्पना करता है जो स्वतंत्रा और जीवंत व्यक्तियों द्वारा बना हो। यह व्यक्ति-स्वातंत्र्य, यह व्यक्ति-चेतना का उन्मेष निश्चय ही एक प्रगतिशील चेतना है जो पुरानी व्यवस्था से टकराती एक नयी व्यवस्था के भीतर से फूट रहा है।

राष्ट्रीयता हो या सामाजिक यथार्थ का सवाल हो, डॉ. रामदरश मिश्र की आलोचकीय दृष्टि रागात्मक जीवनबोध से जुड़ी है। वे मानते हैं कि उत्कृष्ट कृतियों को साधारण लोगों के लिए बुद्धि गम्य होनी चाहिए। समीक्षा सर्जनात्मक साहित्य की सहचरी नहीं, उसका स्वतंत्र अस्तित्व है। कहा जा सकता है कि समालोचना साहित्य सृष्टि की आत्मावगति है। इस अवगति में आत्म विश्लेषण एवं आत्म मूल्यांकन-दोनों का सुषमित समावेश रहता है। 'आलोचना-क्रिया साहित्य-सृष्टि को क्रमशः उच्चतर धरातलों पर पहुँचाने का अथवा उसके ऊपर पहुँचाने का साधन है।'

डॉ. रामदरश मिश्र की आलोचना-प्रवृत्ति का विवेचन करते हुए हम उसके प्रतिपादन पक्ष पर विचार करेंगे और सिर्फ कोटेशनों से लेख का पेट भरना मुनासिब नहीं समझता। जिस प्रकार डॉ. बड़थ्वाल का 'निर्गुण स्कूल ऑफ हिंदी पोएट्री' अपने विषय का महत्त्वपूर्ण ग्रंथ था। डॉ. दीनदयाल गुप्त का अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय तथा बिपिन बिहारी त्रिदेव का 'चंद्र बरदारी' और उनका काव्य' विशिष्ट है, माता प्रसाद गुप्त का 'तुलसीदास', नगेंद्र का 'रीति-काव्य की भूमिका' तथा 'देव और उनकी कविता', उल्लेखनीय और स्थायी थाती है उसी प्रकार 'आधुनिक साहित्य विकास' पर डॉ. लक्ष्मीसागर का आधुनिक हिंदी साहित्य का विकास' डॉ. कृष्णलाल का 'हिंदी साहित्य विकास' (1900-25) और डॉ. केसरी नारायण शुक्ल का 'आधुनिक काव्य-धारा' उल्लेख्य है। सिद्धांत क्षेत्रा में डॉ. भगीरथ मिश्र का हिंदी काव्यशास्त्र का इतिहास श्री बलदेव उपाध्याय 'भारतीय साहित्य शास्त्रा और भारतीय की भूमिका विशेष महत्त्वपूर्ण है। डॉ. भगवत स्वरूप मिश्र ने 'हिंदी आलोचना उद्भव और विकास' हिंदी समीक्षा का प्रामाणिक इतिहास उपस्थित किया है। उसी महत्त्वपूर्ण श्रृंखला में लिखकर डॉ. रामदरश मिश्र ने हिंदी समीक्षा स्वरूप और संदर्भ' ग्रंथ रचकर हिंदी समालोचना के क्षेत्रा में एक प्रतिमान स्थापित किया है। हिंदी समीक्षा पर यह एक तरह का अपना दस्तावेजी महत्त्व कायम करता है। यदि डॉ. मिश्र अन्य आलोचनाएँ न लिखकर सिर्फ यही ग्रंथ रचते तो भी

प्रेमचंद के 'गोदान' विष्णुप्रभाकर के 'आवारा मसीहा की जीवनी' की भाँति हिन्दी समालोचना के क्षेत्र में निस्संदेह अपनी पुख्ता पहचान कायम करते हैं। उन्होंने अपनी आलोचना का व्यक्तिगत मानदण्ड स्थापित न कर निरपेक्ष मानदण्ड बनाया है।

डॉ. मिश्र की सर्जनात्मक आलोचना व्यावहारिक या कथात्मक आलोचना की पद्धति अख्तियार करती है। कोरे सिद्धांतवाद रूढ़िवाद से मुत्तफ है, पर पूरी तरह स्वच्छन्दतावाद को भी स्वीकार नहीं करती। वह सीमित व्यापक संदर्भ में कृतिकार, उसके कृतित्व का मूल्यांकन और नियमन करती है। सर्जक-कर्म का संयमन उनकी आलोचना की मुख्य विशेषता है। उसमें साधारणता में असाधारणता है। भारतेंदु के नाटकों की खूबी को उद्घाटित करते हुए लिखा है-भारतेंदु ने नाटक प्राचीन भेद उपभेदों की व्याख्या के साथ-साथ नवीन तत्वों की ओर ध्यान आकर्षित किया तथा नवीनता नाक-भौं सिकोड़ने वालों की तरह उनकी पहचान कर उनके औचित्य का समर्थन किया। इसके लिए नवीनता का समावेश तथा प्राचीनता का सर्वथा त्याग हीनवृत्ति का परिचायक है। इसका समावेश इसलिए आवश्यक होता है कि रुचि, संस्कार और रीति-नीति बदला करते हैं। नये युग के सहृदयों को आनन्द देने के लिए उनकी रुचि के अनुकूल ग्रहण करना किंतु नया युग अपनी परम्परा अनेक मूलभूत तत्त्वों को किसी न किसी रूप ग्रहण किए रहता है। अतएव उनका बहिष्कार नवयुग की कृतियों को बना देता है। साहित्य समाज की जीवित स्थितियों का साक्षी है। वह अतीत का दीपक होता है, वर्तमान का सजीव चित्र (भी) और भविष्य का निर्माता भी है। इन गुणों के कारण विश्व-साहित्य और उसके सर्जक अमरता सिद्ध हैं। साहित्य के इन महान गुण-धर्म को दोष रहित रखना-समालोचन-कर्म की पूर्ति है। यह कार्य रचना के सूक्ष्म अध्ययन, सम्यक विवेचन, गुण-दोष के निरपेक्ष आकलन और श्रेष्ठ संबंधी मूल्यांकन द्वारा ही संभव है।

इसी प्रकार स्वच्छंदवादी समीक्षा के संबंध में भी उनका नजरिया बड़ा साफ और ज्ञानवर्धक है। छायावाद हिंदी स्वच्छतावाद का गौरवशाली प्रतिनिधि है। यद्यपि यह पश्चिमी उपज है किंतु इसकी बनावट यूरोपीय रोमानी आंदोलन से अलग है। उसकी चेतना और अनुभूति के बारे में मिश्र जी लिखते हैं-'छायावाद नवीन चेतना का एक साहित्यिक आन्दोलन था किन्तु समालोचकों ने छायावाद के साथ न्याय नहीं किया। आचार्य शुक्ल जैसे गम्भीर समालोचक ने भी छायावाद को मात्र शैली का आन्दोलन माना। यदि कोई इसका अपना विषय हो सकता है तो वह था रहस्यवाद।

हिंदी आलोचना में आज आवश्यकता इस प्रकृति की आलोचना की है क्योंकि वैश्वीकरण, उदारीकरण, उपभोक्ता संस्कृति और बाजारवाद के इस दौर में जब आज हर चीज को बाजार से जोड़कर देखा जा रहा है तो साहित्य में आधुनिक आलोचना पर समीक्षा-दृष्टि भी सापफ अर्थात् तल्खीपन से हटकर होनी चाहिए। अधिकतर चर्चित-अचर्चित आलोचक एक विचारधारा लेकर चलते हैं और उसी के दायरे में उसका नकेल खींचते हैं। कुछ आलोचनाएँ प्रचारात्मक प्रकृति की होती हैं, कुछ इसी सोच से लिखी-लिखवाई जाती हैं। बाजार में हर वस्तु की तरह आज आलोचनाएँ भी बिकाऊ किस्म की बन गई हैं। कुछ जायकेदार और कुछ रसहीन अटपटी। ऐसे में असली परख और मूल्यांकन पर साहित्य-जगत में सवाल उठ रहा है। मगर मिश्र जी इस परिवाद से परे अपना निष्पक्ष दृष्टिकोण रखते हैं। यही कारण है कि उनकी आलोचना सर्जनात्मक आलोचना की कोटि में एक श्रेष्ठ मिसाल हैं।

प्रगतिशील विचारधारा पर उनका विश्लेषण देखिए-'प्रगतिवादी समीक्षा की प्रमुख माँग यही है कि रचना में सामाजिक यथार्थ की अभिव्यक्ति हो। स्पष्ट है कि सामाजिक यथार्थ में पुरानी शक्तियों में अत्याचार और कुरूपताएँ तथा उनसे युद्ध करती नवीन शक्तियों के दुख-दर्द, सामूहिक विश्वास और संघर्ष तथा भविष्य के प्रति अडिग आस्था ये सभी बातें मिली जुली हैं।

आलोचना की दृष्टि जब एकांगी वादों-प्रवादों की धूल छँट जाती है और इतिहास का परिप्रेक्ष्य ओझल हो जाता है तो आलोचक के अविवेक से पीड़ित साहित्यकार भी आलोचना की उपयोगिता को संदेह से देखने लगता है। दुर्भाग्य यह कि आज आलोचना कई खेमों, वादों, गुटों, अखाड़ा गिरोहों में बँटी विकृत सी हो गई है। किंतु यह सर्वाधिक सुखद है कि डॉ. रामदरश मिश्र ऐसे किसी धड़े में नहीं, न किसी वाद से प्रतिबद्ध हैं। अपनी स्वतंत्रता और सहज प्रकृति से सृजनरत हैं। उनका सर्जनात्मक आलोचक सक्रिय है सार्थक समालोचन के लिए। ये बात मैं दावे से कह सकता हूँ कि उनकी समालोचना साहित्य के सत्य शिव सुन्दर की सांगोपांग व्याख्या करती हुई रचना की गुणवत्ता को उद्घाटित करती है। जैसाकि मुझे उक्त संदर्भित तीनों पुस्तकों से गुजरते हुए महसूस हुआ। प्रगतिवाद पर एक विचार-दृष्टिपरक है-प्रगतिवादी विचारधरा मार्क्सवाद की एक रूप है। आश्चर्य नहीं है कि हमारे यहाँ कुछ मार्सिस्टी स्कूल हैं जहाँ युवा

रचनाकारों को प्रशिक्षण देकर अपना अनुयायी और औहदेदार बनाया जाता है। ये उनके लेखन और वाचिक आलोचना का बखान कर महान बताते हुए दूसरों को भ्रमित करते हैं। मार्क्सवाद का जायजा लेते हुए वे आगे लिखते हैं–'मार्क्सवाद जीवन के सर्वांगीण प्रश्नों को लेकर चलने वाला दर्शन है। रायडवाद की पहुँच अन्तर्मन की सीमा तक ही है। अपने–अपने क्षेत्रा में किसे कितनी सफलता मिली है यह सवाल मैं नहीं उठाता। किन्तु इतना संकेत अवश्य कर देना चाहता हूँ कि रायड की सीमाओं को स्वयं उनके समकालीन शिष्यों एडलर और युंग ने पहचाना था और उनका विस्तार करने के लिए कुछ भिन्न ढंग की स्थापनाएँ की थीं।

मिश्र जी ने कविता और स्वच्छंद भावधारा और भाषा पर भी अपनी सीधी विवेचना की है। भले ही भाषा जब कविता की भाषा (यानी काव्य–भाषा) होने की होती, बनती है तब पहला क्रांतिकारी कदम यह उठाती है कि वह कठोर व्याकरण व्यवस्था के कारण भाषिक विकास के विरुद्ध पैदा हुए कुछ व्यवधानों को दूर करती है। शायद इसीलिए कहा गया है, कवि भाषा के निर्माता होते हैं। हर बड़े कवि की कविता संवेदना काव्य–भाषा के सहज विकास के एक सूक्ष्म सिलसिले के साथ जुड़ी होती है। 'नई समीक्षा' के सम्बंध में डॉ. मिश्र का यह कथन वाकई विशेष ध्यातव्य है।

'वास्तव में हिन्दी की नई समीक्षा के व्यक्तित्व को जिन चिन्तन–आयामों द्वारा पहचाना जा सकता है उनमें भाषागत चिन्तन को रेखांकित करना पड़ेगा। ऐसा नहीं है कि भाषा पर पहले विचार नहीं हुआ था। अपने–अपने ढंग से भाषा की महत्ता को सभी आचार्यों और साहित्य–चिन्तकों ने स्वीकार किया है किन्तु इस समूचे चिन्तन का निष्कर्ष यही रहा है कि काव्य में प्रमुख तत्त्व है भाव। भाषा उसे अभिव्यक्त करने का साधन मात्रा है अर्थात् यह मान लिया जाता रहा है कि भाव यानी कथ्य का एक निश्चित स्वरूप है और उसे ही अभिव्यक्त करने के लिए शिल्प (जिसका प्रधान तत्त्व भाषा है) का प्रयोग करना होता है। शास्त्रीय परिपाटी में तो भाषा (और शिल्प भाव) का एक साधनाजन्य स्वरूप निश्चित कर लिया जाता रहा है जिसके क्रम में किसी भी कथ्य की तस्वीर मढ़ दी जाती रही है। यहाँ भाषा और भाव दोनों ही से जैसे जुड़ अवस्था में दिखाई पड़ते हैं। उनकी सर्जनात्मक आलोचना की मौलिकता एवं सारस्वत प्रतिभा की क्षमता से रचित विश्लेषण उनके भाव–विश्लेषण एवं शिल्प प्रयोग के आधार पर किया जा सकता है। उनकी सर्जनात्मक आलोचना की अधिकता एवं प्रयोग के आधार प्रतिक्रिया यहाँ पहले से ही विद्यमान है। मिश्र जी रचना में भाषा की महत्ता को रेखांकित करते हुए लिखते हैं–'कविता में तो स्वच्छन्द भाव–धारा के साथ भाषा का स्वरूप बदलता रहा है जो यह सूचित करता रहा है कि भाव भाषा के लिए जितना अनिवार्य है उतनी ही भाषा भाव के लिए। किंतु चिंतन के स्तर पर भाषा की समान या अत्यांकित महत्ता को स्वीकार किया गया। आधुनिक काल में ही वास्तव में काव्य–संदर्भ में भाव भाषा से अलग नहीं है, भाषा के बिना उसका कोई मूर्त स्वरूप होता ही नहीं। यह भाषा कवि द्वारा केवल गृहीत नहीं होती, बल्कि सर्जित भी होती है। कवि सामान्य भाषा को लेकर भी उसे पुन: सर्जित करता है जिससे वह केवल सामान्य अर्थ में जड़ीभूत रह कर भी अनेक सूक्ष्म छायाएँ उभारती हैं। भाषा स्वयं अनेक सूक्ष्म छायाओं से युक्त संवेदना बन जाती है। अर्थात् वही काव्य है। आज पश्चिम में भाषा को ही कविता मान लिया गया है। कविता की भाषा में मूलत: वे शब्द कथ्य–वाहक सम्प्रेष्ण के साधरर्णीकृत होने में विशेष भूमिका निभाते हैं जिसकी और डॉ. मिश्र ने संकेत किया है। उनकी आलोचना की भाषा में एक सहजता है, सादगी है उनके जीवन की तरह। वे कहीं पांडित्य प्रदर्शन नहीं करते। यही कारण है कि उनकी भाषा नाद–सौंदर्य सूचक (प्रीगर्स ऑफ साउण्ड) के प्रयोग से बड़ी व्यवस्थित व्यवधान रहित लगती है।

संभवत: ऐसी समीक्षा और उनके विश्लेषण विधान को देखकर डॉ. नगेंद्र के उस कथन को कि, आलोचक दो नंबर का रचनाकार होता है, विश्वास नहीं होता और कहा जा सकता है कि आलोचना अपनी सर्जनात्मकता के कारण मौलिक लेखन की कोटि की होती है, और डॉ. रामदरश मिश्र की आलोचनाएँ यह साफ सिद्ध भी करती हैं। मिश्र जी की आलोचना में पुरानी समीक्षा की परंपरा–पद्धति की पकड़ है तो नई आलोचना की नवीनता की सूक्ष्म दृष्टि भी है। पुरानी समीक्षा की परम्परित पद्धत्तियाँ भी मिश्र जी की सादगी और विचारों के सौहार्द का गहरा संस्पर्श पाकर मौलिकपन से महक उठी हैं। निश्चय ही ऐसी समीक्षाएँ–समालोचनाएँ कालजयी कोटि की होती हैं और भविष्य के लिए नए समीक्षकों को दृष्टि–दिशा देती हैं। यही संरचनात्मक (सर्जनात्मक) पद्धति डॉ. रामदरश मिश्र को देश के महान आलोचकों की परम्परा में एक प्रेरक समालोचक के रूप में निर्विवाद प्रतिष्ठित करती है।

'साहित्य कुटीर, साइट–2/44
विकासपुरी, नई दिल्ली–110018
मो.–9289440642

रामदरश मिश्र के परवर्ती उपन्यास

– वेद मित्र शुक्ल

जन्म – 2 नवंबर 1980।
शिक्षा – एम.फिल., पीएच.डी., जे.एन.यू.।
रचनाएँ – आठ पुस्तकें प्रकाशित, कतिपय सम्पादित।
सम्मान – उ.प्र. भाषा संस्थान से गोपालदास नीरज स्मृति सम्मान सहित अनेक सम्मानों से सम्मानित।

वरिष्ठ साहित्यकार रामदरश मिश्र ने साहित्य की एक से अधिक विधाओं में अपना महत्त्वपूर्ण रचनात्मक योगदान किया है। साथ ही, यह भी उल्लेखनीय है कि उनके साहित्य–संसार में मात्र एक या दो कृतियाँ ही किसी एक विधा में नहीं, बल्कि जिस भी विधा में मिश्र जी ने लिखा उसमें सतत् सक्रिय रहे। यह एक अलग बात है कि आलोचकीय सीमाओं के कारण आलोचकों द्वारा मिश्र जी के साहित्य से जुड़ी शुरू में लोकप्रिय हुई प्रवृत्तियों और कुछ कृतियों के आगे के उनके साहित्यिक अवदान पर अधिक अध्ययन प्रस्तुत न किया जा सका। परंतु, इसके बाद भी मिश्र जी आलोचकों के मुखापेक्षी न होकर अपने पाठकों और परिवेश के लिए रचते रहे हैं। इसके परिणामस्वरूप ही उनके उत्कृष्ट माने जाने उपन्यासों–विशेषतया पानी के प्राचीर, जल टूटता हुआ, अपने लोग, दूसरा घर के बाद भी कई उपन्यास प्रकाशित हुए हैं जो उपन्यास–साहित्य को उनकी महत्त्वपूर्ण देन हैं। इस संदर्भ के साथ प्रस्तुत आलेख में रामदरश मिश्र जी के तीन परवर्ती उपन्यासों–बचपन भास्कर का (2010), एक बचपन यह भी (2017), एक था कलाकार (2018)–की चर्चा करने का प्रयास किया गया है। इन तीनों उपन्यासों का प्रस्तुत पाठ बहुत हद तक इनको किशोर केंद्रित उपन्यास के रूप में पढ़ने को प्रेरित करता है। मिश्र जी के पूर्व के उपन्यासों में भी अनेक ऐसे प्रसंग आए हैं जो किशोर मनोविज्ञान और उनके जीवन को कुछ चरित्रों के माध्यम से बड़ी सुंदरता से व्याख्यायित करते हैं। परंतु, ये तीन परवर्ती औपन्यासिक कृतियाँ पूर्ण रूप से किशोर–उपन्यास के तौर पर पढ़े जा सकते हैं।

इस दृष्टि से उनके परवर्ती उपन्यासों में पहले उपन्यास की बात करें तो बचपन भास्कर का ही ध्यान में आता है। बचपन भास्कर का उपन्यासकार रामदरश मिश्र द्वारा वर्ष 2010 में रचित और साहित्य भारती (दिल्ली) से प्रकाशित उपन्यास बचपन भास्कर का उनकी 'नन्ही–मुन्नी पौत्री कुहू को' समर्पित है। उपन्यास के केन्द्र में 85 वर्ष के हो चुके कवि भास्कर शर्मा के बचपन की कहानी है। मिश्र जी के परवर्ती लघु उपन्यासों की कड़ी में यह उनकी महत्त्वपूर्ण कृति है। बाल और किशोर मन से देखे और समझे गये ही नहीं, बल्कि जिये गये आंचलिक जीवन की रसमयी कथा इस कृति के महत्व को मुख्य रूप से बढ़ाती है। इस उपन्यास को लिखे जाने के पीछे के उद्देश्य को समझना बालसाहित्य के विमर्श को सरलता से समझने का भी अच्छा माध्यम सिद्ध होता है। उपन्यास के प्रारम्भ में ही कुछ इस तरह से पढ़ने को मिलता है–'भास्कर जी सोचते हैं कि लिख ही जायें अपने बचपन की कहानी। उस दिन उनके बाल साहित्य के एक मर्मज्ञ मित्र ने कितने आग्रह से कहा था कि वे बच्चों के लिए अपने बचपन की कहानी लिख जायें। बच्चों को जानना चाहिए कि नामी–गिरामी लोगों को अपनी मंजिल तक पहुँचने के लिए कितना संघर्ष करना पड़ा है, कितनी समस्याओं से जूझना पड़ा है, समस्याओं से कैसे जूझे हैं? बच्चों के सामने भूत–प्रेत, जादू–टोना, चूहा–बिल्ली और परियों की काल्पनिक कहानियाँ प्रस्तुत करने से अच्छा है उन संवेदनाओं और समस्याओं को प्रस्तुत करना जिनसे वे गुजरते हैं और कुछ सीख सकते हैं। भास्कर जी को मित्र का सुझाव पसंद आया। उन्होंने वादा किया कि जरूर लिखेंगे। ठीक है कल से यही करेंगे। लेकिन लिखेंगे तो बच्चों के लिए ही क्यों, उन सबके लिए भी जो उनके बचपन को जानना चाहेंगे। **(पृ. 7)**'

उपन्यास से पहले उपरोक्त पाठ बालसाहित्य में भी किशोरसाहित्य

के रूप में वर्गीकृत किये जाने वाले साहित्य के लिए कुछ आवश्यक बिंदुओं पर बड़ी सहजता से प्रकाश डालता है। पहला बिंदु यह कि खुद के बचपन या बच्चों से जुड़े संस्मरण मुख्यधारा की लेखन करने वाले लेखकों का एक ऐसा दायित्व है जो बालसाहित्य में महत्त्वपूर्ण योगदान सिद्ध होता है। दूसरी बात यह कि बच्चे अपने से बड़ों की जीवनकथाएँ सुनकर प्रेरित होते हैं। उपरोक्त पाठ इस बात की ओर भी स्पष्ट रूप से संकेत करता है कि बालसाहित्य मात्र 'बच्चों के सामने भूत-प्रेत, जादू-टोना, चूहा-बिल्ली और परियों की काल्पनिक कहानियाँ प्रस्तुत करने' के बजाए 'उन संवेदनाओं और समस्याओं को प्रस्तुत करने का कार्य करना चाहिए 'जिनसे वे गुजरते हैं और कुछ सीख सकते हैं।' इन सबके साथ यह बिंदु भी उपन्यासकार रेखांकित करता है कि बालसाहित्य केवल बच्चों के लिए नहीं, अपितु बड़ों द्वारा भी पड़ा जाने वाला साहित्य है। उपन्यास की शुरुआत में सहजता और रचनात्मकता के साथ गुँथी हुई उपन्यासकार की बालसाहित्य से जुड़ी ये उद्घोषणाएँ ही संभवत: उनके अन्य दो किशोर उपन्यासों एक बचपन यह भी (2017) एवं एक था कलाकार (2018) के पीछे के मूल निर्धारक तत्व प्रतीत होते हैं।

इसी क्रम में दूसरे उपन्यास की बात करें तो नारी-सशक्तिकरण पर अनुपम किशोर उपन्यास एक बचपन यह भी मिश्र जी द्वारा 2017 में इन्द्रप्रस्थ प्रकाशन (दिल्ली) से प्रकाशित एक बचपन यह भी लघु उपन्यास है। जैसा कि उपन्यास के शीर्षक से भान होता है, यह बालमन और उसके परिवेश पर केन्द्रित है। उपन्यास के केन्द्र में चेतना नाम की एक किशोरी है। स्वतंत्रता आन्दोलन व उसके प्राप्त होने के समय में एक अंचल विशेष के परिवेश में अपने साहस, उमंग एवं उत्साह से खिलखिलाती चेतना का किशोरावस्था उपन्यास को विविध रंगों से भर देता है। बालसाहित्य की दृष्टि से इसे एक ऐसा अनूठा किशोर उपन्यास माना जा सकता है। इसके माध्यम से नारी सशक्तिकरण से जुड़े विषयों को ताकत मिलती है।

उपन्यास की कहानी चेतना के जन्म से शुरू होती है। इस हेतु पहले तीन अध्याय उस समय के सामाजिक परिवेश को समझने के लिहाज से चेतना के माता-पिता सुमित्रा और वीरेश्वर जी के विवाह, उसके ननिहाल एवं दादा रामबहादुर जी से जुड़ी घटनाओं को अपने में समेटे है। सुमित्रा जी जब विवाह के छ: वर्षों के बाद तक माँ नहीं बन पाती हैं तो किस प्रकार से एक नारी के जीवन में सामाजिक बुराईयों के कारण मुसीबतें विकराल रूप धारण करती हैं। इसका एक मार्मिक दृश्य देखने को मिलता है। चेतना के जन्म के समय पुरुषप्रधान समाज का एक और असंवेदनशील एवं नकारात्मक चरित्र चेतना के दादा रामबहादुर जी के माध्यम से दृश्यमान होता है : 'क्या आया है लड़का या लड़की रामबहादुर जी ने नर्स से पूछा।' लक्ष्मी आई है नर्स ने हँसकर कहा। रामबहादुर जी का मुँह उतर गया। बोले-'इतने प्रतीक्षा के बाद संतान आई तो वह भी लड़की **(पृ. 27)**।'

इसी कड़ी में कुछ और बेटी विरोधी रूढ़िवादी सामाजिक तत्वों की ओर भाषागत संक्षिप्तता और रोचकता के साथ संकेत किया गया है। वहीं दूसरी तरफ पुत्री चेतना के पिता वीरेश्वर जी की बेटी के प्रति सकारात्मक दृष्टि कहानी को आगे बढ़ाती है। यह दृश्य पठनीय है-'वीरेश्वर जी का मन प्रसन्न हो आया। बादलों में भी हल्की गर्जन हो रही थी। मोर पिहँक रहे थे सुमित्रा की छोटी बहन भी कई दिन से आई हुई थी। वह मन-ही-मन सोहर गुनगुना रही थी। / सुबह हुई। मोहल्ले की पिछड़े वर्ग की औरतें जुट आईं।... सब मिलकर सोहर गाने लगीं। वीरेश्वर ने उस दिन छुट्टी ले ली और दुकान से मिठाईयाँ खरीद लाए, सबको खिलाने लगे। / रामबहादुर जी से नहीं रहा गया। वे वीरेश्वर जी को डाँटकर बोले-'तुम तो ऐसा खुश हो रहे हो जैसे कन्या नहीं पुत्र जन्मा हो।' /क्या फर्क पड़ता है बाबू जी, संतान तो संतान है चाहे लड़का हो चाहे लड़की। एक छोटा-सा प्रीतिभोज भी दिया। पास-पड़ोस के पिछड़े वर्ग के लोगों ने इस छोटे-से समारोह में मन से भाग लिया, गाया-बजाया भी लेकिन वीरेश्वर से जुड़े नगर के बड़े लोगों को आश्चर्य हुआ कि यह आदमी लड़की पैदा होने पर इतना खुश है और वही उत्सव मना रहा है जो पुत्र पैदा होने पर मनाया जाता है **(पृ. 27-28)**।'

धीरे-धीरे बड़ी हो रही चेतना के परिवेश में उसको पैंट-शर्ट आदि पहनने की स्वतंत्रता, वीरेश्वर जी द्वारा उसे सभा-सोसायटी में ले जाना, छोटी जाति के कहे जाने वाले बच्चों के साथ खेलने-कूदने में कोई रोक-टोक न होना आदि ऐसे कितने ही प्रसंग समाहित हैं, जो 'बेटी बचाओ, बेटी पढ़ाओ' जैसे अभियानों की एक व्यवहारिक दीप्ति को सहजता के साथ जीवंत कर देते

हैं।

चेतना के माध्यम से कई मूल्य भी दीप्त हो उठते हैं। उदाहरणत: गाँव और नगरीय जीवन शैली के बीच की खाई से बच्चों में उत्पन्न हीन भावना के प्रति यह प्रसंग उल्लेखनीय है–'अरे तुम पढ़–लिखकर देहाती गीत गाओगी?' तू देहात की होकर देहात के गीतों का महत्व नहीं समझती। गोरखपुर मेरे घर बादल नाम के एक कवि आते हैं, वे खूब गँवई गीत सुनाते हैं। मैंने उनसे एक दिन पूछा–'चाचा आप इतना पढ़–लिखकर भी गँवई गीत गाते और सुनाते हैं।' वे मुस्कुराए। बोले–'बेटा, गँवई गीतों में गाँव की जिंदगी है और गाँव देश की जिंदगी है।/ 'वाह री चेतना सखी, तू तो बड़ी ज्ञानी निकली **(पृ. 31)**।'

इनके अतिरिक्त स्वतंत्रता आंदोलन में चेतना की बालसुलभ निर्भीकता; चेतना के विद्यार्थी जीवन व खेलकूद से जुड़े प्रसंग; पंगुली नानी नामक विधवा महिला के वीरता की कहानी; साहसी बुंदेलखंडी माँ–बेटी द्वारा महिला रेल बोगी में लुटेरों की पिटाई; बेटी के हाथ पीले करने में जल्दबादी से बचना; आदि प्रसंग भी मूल्यबोध कराने में सफल रहे हैं।

हास्य–व्यंग्य और करुणा के मेल से बने विविध प्रसंग भी इस उपन्यास में पढ़े जा सकते हैं। पहलवान चाचा के डर से विद्यालय के मुंशी जी का हेडमास्टर की मेज के नीचे छिप जाना; लोक में व्याप्त ज्योतिष शास्त्र की बच्चों द्वारा ही बालसुलभ विवेचना; बुढ़वा और बरम बाबा की रोचक कहानी; गाँधी जी की हत्या के बाद परिवार द्वारा उपवास रखे जाने पर चेतना का रुख और उसका परिणाम; अंजाने में चेतना और प्रसून की माँ द्वारा भाँग का सेवन कर लेना; आदि हैं।

इन सबसे बढ़कर समाज में बालिकाओं व महिलाओं की दशा देखकर एक बालिका के मन में चलने वाले उहापोह भी इस किशोर उपन्यास की विशेषता है। इस संदर्भ में दो प्रसंग बानगी के तौर पर पठनीय हैं। पहला चेतना के बचपन के समय का है। जब एक बालिका का मन सुंदरता की प्रतिमूर्ति दुलहिन को देखता है तो किस प्रकार से पुरुषप्रधान समाज को परखने का प्रयास करता है? वह कुछ इस प्रकार से है–'दुलहिन होना भी कितना अच्छा है, कितना बुरा है। गाँव की कुछ दुलहिनों की दुर्दशा देखकर वह कभी–कभी तय कर लेती है कि वह शादी नहीं करेगी। लेकिन बुढ़िया माई ने तो कहा है कि मुझे अच्छा पति मिलेगा। उसके पड़ोस वाले घर में रोज एक औरत की मार–पिटाई होती है। इच्छा होती है उसके घर जाकर पति या ससुर या सास (जो भी मार रहा हो) के सिर पर ईंट मार दूँ। कभी–कभी माँ से कहती–'माँ यह क्या है?' माँ कहती है तेरे मामा जैसा भाई हो तो बात बने।.../इसलिए मैं तुझसे कहती हूँ कि लड़कों वाली चाल छोड़कर लड़कियों वाला गुन–ढंग सीख ले। चेतना झल्लाकर कहती है–'माँ तू ये क्या रट लगाए रहती है। यदि शादी की और किसी ने मेरे साथ बदतमीजी की तो मजा चखा दूँगी **(पृ. 35–36)**।'

दूसरा प्रसंग जब वह बड़ी हो गई है। उसके माता–पिता विवाह के विषय में भी सोचने लगे हैं। ऐसे समय में एक घटना घटित होती है। उससे उम्र में थोड़ी बड़ी सहेली कामिनी जिसकी पूर्व में शादी हो चुकी है। वह ससुराल से प्रताड़ित होकर अपने घर आ जाती है। चेतना उससे मिलने जाती है। कामिनी चेतना से मिलकर प्रसन्न तो होती है, पर, ससुराल से पाये दुख–दर्द के कारण 'उसकी मुस्कुराहट में इतना दर्द था कि दिल हिल गया। चेतना ने देखा कि कामिनी में अब प्राण नहीं रह गया है, बस निर्बल शरीर रह गया है। आखिर कामिनी चली गई **(पृ. 60–61)**।'

ऐसे समय में जब घर पर चेतना को अपने विवाह के विषय में बातचीत सुनाई पड़ती है तो वह भड़क उठती है–'मैं शादी नहीं करूँगी। ससुराल जाकर कामिनी मर गई, आप लोग चाहते हैं कि मैं भी मर जाऊँ। ससुराल के लोग बहुत जालिम होते हैं। मैं तो यहाँ आप लोगों के पास रहूँगी, पढ़ूँगी, लिखूँगी, नौकरी करूँगी। अगर आप लोगों के लिए मैं भार लगूँगी तो अलग रहकर नौकरी करूँगी **(पृ. 61)**।'

अंतिम के चार अध्यायों में उपन्यास की कहानी जीवन के दूसरे चरण अर्थात् चेतना का एक अच्छे घर के नेक युवक प्रसून के साथ विवाह होने के साथ सुखद विराम लेती है। जैसा आनंद बचपन की समझ के अनुसार गुड़िया और गुड्डे के विवाह से बालमन को होता है। किशोरमन में विवाह देखने–सुनने का भी एक अलग आनंद होता है। एक किशोर पाठक के मन को चेतना और नेक युवक प्रसून के साथ विवाह वर्णन को पढ़ना किशोरसुलभ सुख प्रदान करने वाला है।

यह किशोर उपन्यास किशोरियों के मनोविज्ञान को समझने में

कितना सफल रहा है? इस बाबत मिश्र जी की यह आत्मस्वीकृति कि उपन्यास की अधिकतम घटनाएँ उनकी पत्नी के बचपन के अनुभवों पर आधारित हैं, गौरतलब है। इसी प्रकार की रचना-प्रक्रिया के अर्न्तगत उनका पूर्व में बचपन भास्कर का के नाम से एक और किशोर उपन्यास प्रकाशित हो चुका है। जो एक आत्मकथ्यात्मक उपन्यास माना जा सकता है। भारतीय बालसाहित्य में आंचलिक किशोर उपन्यास और उसमें भी अत्यंत साहित्यिक तरीके से नारी सशक्तिकरण के विषय पर लिखे गए कृतियों का विषय उठता है तो एक बचपन यह भी की चर्चा के बिना विषय को अधूरा माना जाना चाहिए।

तीसरा उपन्यास है एक था कलाकार। वर्ष 2018 में मिश्र जी का एक और लघु उपन्यास एक था कलाकार अमन प्रकाशन (कानपुर) से प्रकाशित हुआ। यह मनुष्यता के फ्रेम में जीवन के अनेक रंग समोए है। थर्ड पर्सन के माध्यम से कही गयी उपन्यास की कथा शिवनाथ जी के दिवंगत बेटे देवेश की कहानी है। बचपन, किशोरावस्था, युवावस्था और फिर अधेड़ होते-होते जीवन के चौराहों से जिस प्रकार से होकर गुजरना होता है उसका एक दस्तावेज यह उपन्यास है। निश्चित रूप से कोई भी कथा साहित्य कल्पना और सामाजिक परिवेश का रचनात्मक ताना-बाना होता है, लेकिन उपन्यास का पाठक वास्तविक पात्रों और घटनाओं से भी रूबरू होने का संकेत पा जाता है जब उपन्यास के बिल्कुल प्रारम्भ में ही उपन्यासकार द्वारा यह घोषित कर दिया जाता है कि यह कृति 'प्रिय पुत्र हेमंत की स्मृति में जो न होकर भी हमारे भीतर और आस-पास व्याप्त है।' इस संकेत के बावजूद उपन्यास एक वृहद संस्मरण सरीखा या आत्मकथा का रूप लेता नहीं प्रतीत होता है। बरक्स इनके तत्व इस कृति में यों घुल-मिल गए हैं कि उपन्यास आद्योपांत पाठक के मन से जुड़ा रहता है। आत्मीयता के साथ लिखी गई ऐसी चुनौतीपूर्ण परंतु सफल कृति लम्बी साधना वाले एक वरिष्ठ कलमकार द्वारा ही संभव है।

उपन्यास के चरित्र शिवनाथ जी की पीड़ा से उपजी अनुभतियों के माध्यम से देश और समाज में हताशा और अवसाद से गुजर रहे स्वाभिमानी युवा आम नागरिकों और विशेष रूप से कला-साहित्य आदि क्षेत्रों से जुड़ें बेरोजगार लोगों के दर्द का मार्मिक चित्रण इस कृति में सहजता से देखा जा सकता है। अभिनेता देवेश की मृत्यु से पहले की स्तिथि कुछ इस प्रकार उसके पिता द्वारा बयां की जाती है-'वह काफी दिनों से होम्योपैथी की दवा पर चल रहा था। लीवर में समस्या उत्पन्न हो गई थी। मदिरा का सेवन उसने खूब किया था न इसलिए। इन दिनों उसके पास कोई काम-धाम भी नहीं था। अपने कमरे में ही अकेले बैठा खुद से ही ताश खेलता था या टी.वी. देखता था। मुझसे ही थोड़े-थोड़े पैसे माँग कर दवा लाया करता था **(पृ. 8)**।'

इससे भी अधिक पाठक के लिए करुण दृश्य तब उपस्थित होता है जब स्वाभिमानी देवेश के मृत्यु की चर्चा घर में शुरू होती है-'देवेश ऊपर अकेले में मौत से जूझता रहा। कोई आवाज नहीं दी। वे दोपहर के बाद घंटों मौत से हाथापाई करते रहे थे। यदि वे नीचे आ गए होते और हम लोगों को उनकी परेशानी मालूम हो गई होती तो तुरंत नर्सिंग होम में दाखिल कर दिया होता। उम्मीद थी कि ये बच गए होते किन्तु वे बहुत जिद्दी थे। जिद के साथ ही जीवन जीते रहे और खोते-पाते रहे बल्कि खोते ज्यादा रहे। जितना उन्होंने किया उससे बहुत ज्यादा अच्छा कर सकते थे, किन्तु उनकी जिद ने उन्हें बहुत मारा। उनकी जिद को उनका स्वाभिमान भी कहा जा सकता है **(पृ. 9)**।'

इन पंक्तियों को पढ़ने के बाद पाठक-हृदय सरलता से अनुमान लगा सकता है कि लेखक की लेखनी किस प्रकार से ऐसा लिखते समय भावविह्वल हुई होगी। प्रारम्भ की ये पंक्तियाँ कलाकार देवेश के पूरे जीवन और मृत्यु को कुछ ही शब्दों में पिरो देने में यों तो पर्याप्त हैं, किन्तु देवेश से स्वयं की भावभूमि को जुड़ा पाकर पाठक के मन में उसके बारे में और जानने की जो कसक पैदा होती है उसी का विस्तार यह उपन्यास है।

गुरुतम मानवीय संवेदनाओं को भी सहजता के साथ शब्दों में उतार लाने में सिद्धहस्त और कालजयी रचनाओं के रचनाकार मिश्र जी की लेखनी से इस उपन्यास में खास तौर से एक कलाकार के बचपन और किशोरावस्था की मस्तियाँ, युवावस्था की सफलताएँ-असफलताएँ और उससे भी बढ़ कर थियेटर करने वालों की भीतरी दुनिया का सच लिखा गया है।

देवेश के बचपन का वर्णन अति मनोहारी है। कई स्थानों पर पिता का अपने पुत्र से प्रेम देखते ही बनता है। व्यवसायगत कारणों से संयुक्त परिवार का आनंद नहीं मिल पाता है। इसी को अभिव्यक्ति देती शिवनाथ जी की यह अनुभूति पठनीय है,

'कुछ देर में बच्चे की आवाज आई तो घर में खुशी की लहर दौड़ गई। हाँ देवेश पैदा हो गया था। वहाँ कोई सोहर गाने वाला नहीं था। हाँ जब यह खबर शिव जी के ससुराल पहुँची होगी तो वहाँ अवश्य सोहर गूँजा होगा **(पृ. 11)**।'

अन्य प्रसंगों की चर्चा करें तो देवेश के बीमार पड़ने पर डाक्टर को किन्ही कारणों से फीस न दे पाने पर डॉक्टर द्वारा किया गया सदाचार, बेटे देवेश को राजनीतिक व सामाजिक संस्कारों से परिचित करवाना, बेटे के साथ चौरीचौरा जैसे स्थानों का सहज पर्यटन सुख, आदि प्रमुख हैं। इसके साथ ही यों तो देवेश कई स्थानों पर किशोरावस्था की मस्तियों, खेल-कूद में लिप्त सा प्रतीत होता है, पर उनमें भी किस प्रकार से मूल्य छिपे हैं देखा जा सकता है। बार-बार प्रचलित सामाजिक मान्यताओं एवं अन्याय के खिलाफ देवेश आवाज उठाता है। एक अधेड़ व्यक्ति को जो अपने घर के बाहर खाट पर सो रहा होता है उसको खाट सहित मित्रों के साथ उठा कर तालाब में छोड़ आना देवेश के लिए मस्ती नहीं बल्कि उस अधेड़ को दंड देने का तरीका है। असल में, अधेड़ व्यक्ति अपने से छोटे लोगों को बहुत सताता है जो देवेश सहन नहीं कर पाता है। इसी प्रकार एक धनी परिवार के कुत्ते के काटने से जब किसी आम व्यक्ति की मृत्यु हो जाती है तो कोई भी जाँच के दौरान उस परिवार के विरोध में नहीं खड़ा होता है, तब देवेश जोश में आकर कहता है-'माँ इन्हें चुप रहने दीजिए। मैं इस अन्याय के खिलाफ चुप नहीं रहूँगा। मैं साइन कर देता हूँ **(पृ. 42)**।'

यह उपन्यास अनेक प्रकार से थियेटर से जुड़े किशोरों के लिए महत्त्वपूर्ण है। किस प्रकार के उतार-चढ़ाव एक कलाकार के जीवन में आते हैं यह इस उपन्यास को पढ़ कर समझा जा सकता है। कौन कब कलाकार की हिम्मत और प्रतिभा को देख कर मदद को आगे आ जाए कहना मुश्किल होता है? इस कारण से बिना किसी हताशा के 'शो मस्ट गो ऑन' के फार्मूले पर चलना होता है। देवेश पर एक अन्य व्यक्ति की टिप्पणी यहाँ पठनीय है-'देवेश किसी भी हाल में जीने वाला कलाकार था। ना कभी किसी की चाटुकारिता की और न ही कभी किसी की तुनक मिजाजी को पसंद किया, 'शो मस्ट गो ऑन' के फार्मूले पर चलने वाला वह इंसान, क्या हो गया उसे इतनी सी आयु में। वह तो जिंदगी को जिंदगी की तरह जीने के आदी थे। यह उनके नाम के आगे था, थे, थी की क्रिया मुझे मर्माहत करती जा रही है। देवेश के अब नहीं रहने पर मुझे बार-बार यह पंक्तियाँ याद आ रही हैं-'सैकड़ों हजारों वसंत पर, पतझड़ का एक पल भारीहै **(पृ. 89)**।'

उपन्यास का अंत कुछ इस प्रकार से होता है-कुछ दिन बाद देवेश खुश-खुश आया और बोला-'पापा मुझे फिल्म वाले ने मुंबई बुलाया है। मैंने उससे कहा है कि आठ जून को तो मैं अपने साले की बेटी की शादी में गोरखपुर जा रहा हूँ। वहाँ से मैं दस जून को लौटूँगा। बारह की सुबह की गाड़ी से मुंबई के लिए रवाना हो जाऊँगा।' 'बहुत खुशी की बात है बेटे। लेकिन किसी को क्या पता था कि वह गोरखपुर से लौटकर मुंबई की यात्रा पर नहीं अनंत यात्रा पर निकल जाएगा **(पृ. 111)**।'

उल्लेखनीय है कि उपन्यास के केंद्र में दर्द है। जीवन की सुखमयी त्रिज्याएँ कितना भी परिधि का विस्तार कर लें दर्द रह-रह कर उभरता रहता है। उपन्यास में अनेक ऐसे प्रसंग है जिनमें हास्य, व्यंग्य, वात्सल्य, यथार्थ आदि कितने ही रंग देखे जा सकते हैं, पर वे सब एक प्रकार के दर्द से उपजे हैं। लेखक की यह गहन अनुभूति जिस प्रकार सहजता से पाठक को संप्रेषित होती है वही उपन्यास की मुख्य उपलब्धि है।

रामदरश मिश्र के तीनों परवर्ती उपन्यास-बचपन भास्कर का (2010), एक बचपन यह भी (2017), एक था कलाकार (2018) न केवल उपन्यास लेखन के प्रति उनके गहरे लगाव की पुष्टि करते हैं, बल्कि मिश्र जी की सर्जना क्षमता और सतत साहित्यिक सक्रियता को भी दर्शाते हैं। कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि मिश्र जी द्वारा हिन्दी उपन्यासों में जो महत्त्वपूर्ण योगदान किया गया है उसे उनके बड़े उपन्यासों के साथ-साथ बाद में लिखे गए लघु उपन्यासों को भी समग्रता के साथ पढ़ते हुए ही सच्चे अर्थों में समझा जा सकता है।

345, पॉकेट 16, आदर्श अपार्टमेंट्स,
सेक्टर 3, द्वारका, नई दिल्ली - 110078
मो.- 9953458727

रामदरश मिश्र के काव्य में पर्यावरणीय-दृष्टि

– कुमार मंगलम रणवीर

जन्मस्थान – विक्रम (पटना)।

शिक्षा – परास्नातक।

रचनाएँ – दो पुस्तकें प्रकाशित।

सम्मान – गुरुकुल ज्ञान आश्रम पटना द्वारा नवांकुर मेधा सम्मान।

रामदरश मिश्र ने बहुविधाओं में हाथ आजमाते हुये, साहित्यनुरागियों के समक्ष अपना जीवन-रस निचोड़ साहित्य को नये आयाम तक पहुँचाया। जहाँ मुझ जैसे मध्यवर्गीय आदमी बड़ी सहजता से खुद को उनकी रचनाओं से जोड़ पाता है। उनके काव्य में लोक-संस्कृति एवं पर्यावरण को पर्याप्त फलने-फूलने का सुअवसर प्राप्त हुआ। पर्यावरण, संस्कृति का आधार स्तम्भ है। पर्यावरण में फेरबदल होने पर संस्कृति पर बहुत प्रभाव पड़ता है। दर्जनों आलेखों के अवलोकन के उपरांत यह ज्ञात हुआ कि रामदरश मिश्र जी का ग्राम्य-संस्कृति से गहरा जुड़ाव रहा है। आज जब पर्यावरणीय संकट से पूरा देश जूझ रहा है, तब मुझे रामदरश मिश्र जी के काव्य में पर्यावरणीय-दृष्टि पर लिखना-पढ़ना प्रभावित एवं रोमांचित कर रहा है। पर्यावरण के प्रति संवेदनशील एवं सजग रहने वाले रचनाकारों में इनका नाम लेते हुए मैं गौरवान्वित महसूस कर रहा हूँ।

गाँव व लोक की सोंधी खुशबू का प्रसार करते हुए मिश्र जी ने समय के साथ तादात्म्य बिठाकर वर्तमान वातावरण के परिदृश्य को काव्य में रखा ही नहीं, अपितु जनमानस को प्राकृतिक असंतुलन के बढ़ते खतरे को लेकर आगाह भी किया। रामदरश मिश्र के कई काव्य शीर्षक पर्यावरण के घटकों के नाम पर दिये गये हैं;-कंधे पर सूरज, वसन्त, बाहर तो वसंत आ गया, नदी बहती है, चिड़िया, जंगल, आग, पेड़, चैत आया है, धूप, नीम-मंजरी, आदि। चिड़िया नामक एक छोटी-सी कविता में पर्यावरणीय दृष्टि अभिव्यक्त हुआ है। प्राकृतिक संतुलन को बनाये रखने के लिये छोटे-बड़े प्राकृतिक चरों की महत्ता को प्रतिपादित किया है। आधुनिक मनुष्य स्वार्थ की गठरी को लादे पर्यावरण को अपने वश में रखना चाहता है, जिसके फलस्वरूप पर्यावरण के उथल-पुथल में उसकी महत्त्वपूर्ण भूमिका परिलक्षित होती है –

'चिड़िया उड़ती हुई कहीं से आयी / बहुत देर तक इधर-उधर भटकती हुई
अपना घोंसला खोजती रही / फिर थककर एक जली हुई डाल पर
बैठ गई और सोचने लगी / आज जंगल में कोई आदमी आया था क्या?'

रामदरश मिश्र की कविता 'आम की पत्ते' में यह जगजाहिर हुआ है कि किस प्रकार आने वाली पीढ़ी अपने धरोहर पर्यावरण और संस्कृति को पहचान पाने में असक्षम होती जा रही है। यह चिंता और चिंतन का विषय है। भारतीय संस्कृति में वन और वनस्पति का बहुत अधिक महत्व रहा है। हमारी संस्कृति में प्रकृति हमेशा से पूजनीय रही है। हजारी प्रसाद द्विवेदी ने अपने निबंध 'कुटज' में लिखा है-'यह धरती मेरी माता है और मैं इसका पुत्र हूँ। इसीलिए मैं सदैव इसका सम्मान करता हूँ और मेरी धरती माता के प्रति नतमस्तक हूँ।'

'मैं सोचने लगा / अब हमारी सांस्कृतिक वस्तुएँ
वस्तुएँ न रह कर / जड़ धार्मिक प्रतीक बन गई हैं
जो हमारे पूजा-पाठ में तो है
किन्तु हमारी पहचान से गायब हो रही है।'

रामदरश मिश्र के काव्य संसार में मानव एवं मानवेतर प्राणियों के बीच प्रकृति का साहचर्य आमतौर पर दिखता है। इन्होंने अपने प्रकृति परक कविताओं में प्रकृति के नाना प्रकार के स्वरूपों का चित्रण बारीकी से किया है। दीपावली में पटाखे से उत्पन्न धुएँ और शोर से हरसिंगार को आहत होते देख अपनी व्यथा के साथ व्यापारी को सम्बोधित करते हुए कविता लिखते हैं; –

'मुझे नहीं चाहिए तुम्हारी उलूक वाहिनी लक्ष्मी
लेकिन मेरे हरसिंगार को तो आहत मत करो
मेरा हरसिंगार शरद है
और शरद जीवन है उन सबका जो प्यार करते हैं।'

रामदरश मिश्र ने पर्यावरण के बदलते स्वरूप को केवल देखा ही नहीं है, अपितु उसके परिवर्तन के पीछे की कारकों की जाँच-पड़ताल भी की है। पर्यावरण पर मुख्यत: गँवई समाज टिका है।

उनकी रोजी-रोटी, रहन-सहन, कार्य-व्यवहार आदि सीधा पर्यावरण पर निर्भर करता है। दूसरी तरफ पूँजीवादी मानसिकता से भरे लोग विकास के नाम पर पर्यावरणीय घटकों का लगातार दोहन कर रहे हैं। वह इस गलतफहमी में जी रहे हैं कि धन-बाहुबल के बलबूते उनके लिये सबकुछ सम्भव है। मनुष्य द्वारा बदलते पर्यावरणीय परिदृश्य को देखकर मिश्र जी अपनी लंबी कविता 'समय-देवता' में पाठकों को नई दृष्टि प्रदान करते हैं, जिससे वे पर्यावरण के प्रति सजग हो पुराने थोथे विचारों को उतार फेंक सकें। कोरोना-काल ने हमें प्रकृति और पर्यावरण के प्रति सजग होने का संदेश दिया है। उसने स्वार्थी मनुष्यों को अपनी ताकत से वाकिफ कराया है। प्रकृति को स्वच्छ और निर्मल बनाने के लिए मुहिम छेड़ना होगा। हम देखते हैं कि हमारा सभ्य समाज प्रकृति से कटता जा रहा है। हमें प्रकृति के साथ खड़े होकर, समस्त जीवों के जीवन को बरकरार रखना होगा। पर्यावरण को विकार ग्रस्त करने का साफ अर्थ है – जीवधारियों के प्राण संकट में डालना।

'गीत गाने के लिए तैयार / कोयलों के पंख तोड़े हैं
और खलिहानों में जाने के लिए
दुलहिन-सी सँवरती फसलों की अस्मत लूटी है तुम्हारी
महामारियों ने गरीब बस्तियों को कीड़ों की तरह मारा है
हवेलियों के चारों ओर तो तुम स्वयं खड़े रहे हो
कीटनाशक छाँटते हुए / इंजेक्शन देते हुए।'

रामदरश मिश्र 'नीम-मंजरी' कविता में प्राकृतिक संपदा और उनकी ताकत से हम पाठकों को अवगत कराया है। उन्होंने स्पष्ट किया है कि प्राकृतिक असंतुलन से उपजे विकट परिस्थितियों में हम विकल हो बारिश की उस एक बूँद को अपनी ओर खींच लेना चाहते हैं। उस एक बूँद में मानो समुद्र अट गया हो। बारिश की फुहार हमारे जीवन लय के रूप में उभरी है। अपनी 'फूल' कविता में कृत्रिम फूल का जिक्र किया है, जिसके पीछे आधुनिक लोग भागे जा रहे हैं। आलसपन में आकर वह स्वाभाविक सुख एवं आनंद से दूर हो खोखलेपन को वास्तविक समझने की भूल कर रहे हैं। वसंत और फागुन मिश्र जी की प्रिय ऋतुएँ हैं। डॉ. सविता मिश्र द्वारा सम्पादित रामदरश मिश्र की प्रकृतिपरक कविताओं की पुस्तक का तो शीर्षक ही है-बाहर तो वसंत आ गया है। इस पुस्तक में विहंगम एवं मनुहारी प्राकृतिक दृश्य देखने को मिलते हैं। प्रकृति यहाँ रूमानियत, उल्लास, दर्द, उदासी, चिंता एवं चिंतन रूपों में उपस्थित है। आज का लोभी-निष्ठुर मनुष्य विकास की सीढ़ियाँ चढ़ने के क्रम में प्रकृति के साथ तादात्म्य बैठाना भूल गया। उसकी करतूत प्रकृति के स्वरूप को लगातार प्रभावित करती रही।

'बादल' कविता में पर्यावरणीय-दृष्टि साफतौर पर दिखती है;-

'कहाँ हैं वे बादल? /पूछते हैं लोगों से लोग/
मौसम के आने और न आने के बीच का आकाश/
लटका है धरती पर पसीना पोंछता हुआ।'

रामदरश मिश्र का कवि स्वरूप विपरीत समय और परिस्थितियों के साथ भी वसन्त को अपनी ओर खींचना चाहता है;-

धन्य हो वसंत/कि थाने और जेलखाने ने भी/
अपने आगे फूल उगा लिए।'

जून के महीने में पटना शहर में रहते हुये, 'हीट-वेब' का जब मैंने सामना किया, तब तपिश की तबाही खींचकर मुझे उनकी कविता 'लकड़हारा' की ओर ले गई। सचमुच! पर्यावरण के प्रति कवि की चिंता जायज है।

'वह कुल्हाड़ी से काटता है पेड़ / उसे पता नहीं कि वह पेड़ नहीं
धीरे-धीरे अपना घर काट रहा है।'

रामदरश मिश्र जी महानगर में रहते हुए भी अपने भीतर गाँव, धूल, खेत, माटी, जंगल, पक्षी आदि को सहेजकर थाती समझ रखे हुए हैं। वह गाँव यानी प्रकृति-सुषमा के वक्ष-स्थल की महत्ता को भली-भाँति समझते हैं। तभी तो समय-समय पर वे अपने अंदर बसे गाँव में झाँकते हैं।

'लेकिन मेरे भीतर तो गाँव बसा है / उसका क्या करूँ?

कई बार रामदरश मिश्र की कविताओं में प्रकृति मनुष्य के सहचर रूप में उपस्थित होती है, सुख-दु:ख-संघर्ष में साथ खड़ा होता है। हम आदि-काल से देखते आये हैं कि काव्य और प्रकृति का अन्तर्सम्बन्ध बहुत गहरा है, प्रकृति की गोद में रहकर वह फलता-फूलता है।

'बदलियाँ घिरतीं, हवाएँ काँपती, रोता अँधेरा
लोग गिरते, टूटते हैं, खोजते-फिरते बसेरा
किन्तु रह-रहकर सफ़र में, गीत गा पड़ता उजाला
यह कला का लोक, इसमें सूर्य ढलता ही नहीं है!'

रामदरश जी की कवि-दृष्टि पैनी व परख-शैली बेजोड़ है। जीवन के बढ़ते क्रम में विभिन्न वादों व विचारों के टीम-टॉम से जुड़े बिना रचना प्रक्रिया में रमे रहे। उनके अंदर का साहित्य साधक अपनी साधना से पाठकों को मानो अपने वश में कर रोम-रोम झंकृत कर देता है। पर्यावरणीय-दृष्टि से उनका काव्य बेहद प्रभावशाली है। आज जब पर्यावरण का क्षरण एक वैश्विक चिंता का रूप ले चुका है, ऐसे में रामदरश मिश्र का साहित्य अत्यंत प्रासंगिक हो उठता है।

वार्ड नं.-8, ग्राम-नगहर,पो-बिक्रम,
जिला- पटना, -801104 (बिहार)
मो.-9113140005

रामदरश मिश्र की गजलें : सरकंडे की कलम से रचती सुनहरी इबारत

– रविशंकर सिंह

जन्म – 18 फरवरी 1997।
शिक्षा – स्नातकोत्तर।
रचनाएँ – पत्र-पत्रिकाओं में रचनाएँ प्रकाशित।

गोरखपुर उत्तर प्रदेश में 15 अगस्त, 1924 को जन्मे रामदरश मिश्र का कृतित्व लगभग सौ से ज्यादा कृतियों में विस्तृत है। रामदरश मिश्र को देखकर लगता है, हम गाँधी के विचारों को देख रहे हैं, किसी बड़े लेखक से मिल रहे हैं, एक ऊर्जस्वी मनुष्य से बात कर रहे हैं। जिसका खुद का जीवन गाँधीवादी है, समाजवादी और प्रगतिशील मूल्यों से पटा हुआ है। सरलता उनके व्यक्तित्व की कुंजी है। वे जीवन जीने की कला से पूरी तरह भरे हुए हैं उनकी मुस्कराहट उनके भीतर के जीवन्त रचनाकार को दर्शाती है। लेखकों के लिए वे एक नजीर प्रस्तुत करते हैं। यह समय लेखन में एक ऐसा समय है जिसमें सभी लेखक अपनी-अपनी प्रशंसा करते रहना चाहते हैं। ऐसे में रामदरश मिश्र जी का व्यक्तित्व हमें एक अलग ही ऊर्जा से भर देता है।

हिंदी साहित्य का यह सौभाग्य है कि उसकी महफिल में रामदरश मिश्र जैसे श्रेष्ठ साहित्यकार मौजूद हैं जो न केवल अपनी सतत् सर्जना के साथ रचना में सक्रिय हैं बल्कि सभा समारोहों में भी आते-जाते रहते हैं। और हिन्दी की तमाम विधाओं में लिखते पढ़ते रहते हैं। उम्र के इस पड़ाव में भी उनकी कलम उतनी ही पैनी है जितनी प्रारंभिक वर्षों में थी। जिसका प्रमाण हमें उनकी यह कविता देती है –

हमारे हाथ में सोने की नहीं
सरकंडे की कलम है।
सरकंडे की कलम
खूबसूरत नहीं, सही लिखती है
वह विरोध के मंच लिखती है
प्रशस्ति-पत्र नहीं लिखती है
हम कठघरे में खड़े हैं, खड़े रहेंगे
और कठघरे में खड़े हर उठे हुए हाथ को
अपने हाथ में ले लेंगे

राजा कौरव हों या पांडव—
हम तो सदा वनवास ही झेलेंगे।

हिन्दी साहित्य में रामदरस मिश्र जी की उपस्थिति आसमान में ध्रुव तारे सी है जो अपने स्थान से कहीं हटे बिना ही समूचे संसार को मार्ग दिखाने का काम करता है। वही कार्य रामदरश मिश्र जी भी अपनी लेखनी से करते हैं और करें भी क्यों न आखिर वे हिन्दी के एक अन्य शिरोमणि हजारी प्रसाद द्विवेदी के शिष्य जो ठहरे।

अपनी लेखनी से रामदरश मिश्र जी ने कविता, कहानी, उपन्यास, गीत, आदि को ही नहीं पोषित किया बल्कि हिन्दी ग़ज़लों पर भी खूब लेखनी चलाई है। उनकी सबसे प्रसिद्ध ग़ज़ल के अशआर याद आते हैं जिसमें वे कहते हैं –

बनाया है मैंने ये घर धीरे-धीरे।।
खुले मेरे ख्वाबों के पर धीरे-धीरे।।
किसी को गिराया न खुद को उछाला,
कटा जिन्दगी का सफर धीरे-धीरे।।
जहाँ आप पहुँचे छलाँगें लगा कर
वहाँ मैं भी पहुँचा मगर धीरे-धीरे।।
पहाड़ों की कोई चुनौती नहीं थी
उठाता गया यूँ ही सर धीरे-धीरे।।
मिला क्या न मुझको, ऐ दुनिया तुम्हारी
मुहब्बत मिली है अगर धीरे-धीरे।।

रामदरश मिश्र की ग़ज़लें गीतात्मक हैं। अधिकांश में एक ही विषय का प्रवाह देखने को मिलता है। यानी गजल का हर एक शेर अलग न होकर आपस में गुँथा हुआ सा जान पड़ता है। स्वयं उन्हीं के शब्दों को इस बात के लिए प्रमाण माना जा सकता है अपने पहले गजल संग्रह 'बाजार को निकले हैं लोग' की भूमिका, जिसे उन्होंने नाम दिया है 'ये ग़ज़लें' में वे कहते हैं 'मेरी शुरू की गजलें गीत प्रवृत्ति की हैं, यानी उनमें एक ही विषय या एक ही सम्वेदना की अन्विति है।' यह तो हुई प्रमाण की बात और अब गवाह के तौर पर उनकी कुछ ग़ज़लों के

कुछ शेर प्रस्तुत हैं –

वे जा रहे तो कहीं रास्ता रुका होगा।।
वे उठ रहे हैं तो कोई कहीं झुका होगा।।

मेरा नसीब खींच लाया मुझे थाने में
खुदा के पास भी जाता में कभी यूँ तो नहीं?

ग़ज़ल लेखन कि एक जरूरी बात है 'बहर।' बहर छोटी और बड़ी दोनों प्रकार की हो सकती हैं कुछ लोग मझोली बहर की ग़ज़लें भी लिखते हैं। और रामदरश मिश्र जी की ग़ज़लों में तो ये तीनों ही प्रकार की बहर वाली ग़ज़लें मिल जाती हैं।

बड़ी बहर–
तेरे ख्वाब में रहा बेखबर, मेरी मुफ़लिसी ने जगा दिया
भटकी थी मौज कि तीर से उसे आँधियों ने लगा दिया . . .

छोटी बहर–
क्या अजीब मैं, क्या करता हूँ
बूँद-बूँद से घट भरता हूँ. . .

मझौली बहर–
उदास धूप है, बस्ती मरी-मरी सी है
सुबह-सुबह सी नहीं, मौन थरथरी सी है . . .

चलो यहाँ से चलें, पर ज़रा रुको, लगता
रही पुकार नयी कोई मंजरी सी है

विषय की बात करें तो रामदरश मिश्र की ग़ज़लों में अनेक विषय जिनमें परिवार, दाम्पत्य प्रेम, राजनीतिक हालात, और सामान्य से सामान्य जनमानस की भी बात की गई है। उनकी गजलों में ऐसे पात्र भी जगह पाते हैं जो कभी गजल का हिस्सा नहीं हुए थे। प्रेमचंद की कहानी और उपन्यासों में जिस प्रकार के पात्र की बात होती है उसी नगण्य माने जाने वाले पात्रों का जिक्र, उनकी पीड़ा, उनका सन्त्रास रामदरश मिश्र जी की गजलों में भी देखा जा सकता है –

आज धरती पर झुका आकाश तो अच्छा लगा
सिर किये ऊँचा खड़ी है घास तो अच्छा लगा . . .

दोस्तों की दाद तो मिलती ही रहती है सदा
आज दुश्मन ने कहा-शाबाश तो अच्छा लगा

इस ग़ज़ल में जहाँ एक ओर जिन्दगी के कटु अनुभव हैं तो दूसरी ओर सामान्य से विशेष की ओर बढ़ते हुए प्रतिमान भी विद्यमान हैं।

प्रकृति रामदरश मिश्र जी की सहगामिनी की भाँति उनकी हर विधा में उनके साथ रही है। प्रकृति का सजीव और मुखरित चित्रण जो उनकी कविताओं में, ग़ज़लों में, कहानी–उपन्यास में मिलता है वह सहजता से कहीं देखने को नहीं मिलती।

गया हो खुशनुमा माहौल इस जलते शहर का क्यों
अजी बस कुछ नहीं, देहात में ओला पड़ा होगा।।

बारिश प्राणी मात्र के अस्तित्व के लिए बेहद जरूरी है। इसकी पहचान मिश्र जी ने अनेक बार अपनी ग़ज़लों में की है। बारिश किस तरह हमें प्रभावित करती है उसी को बयान करती बारिश पर उनके द्वारा लिखी एक ग़ज़ल देखिए –

पानी बरसा धुआँधार फिर बादल आये रे
धन्य धरा का हुआ प्यार, फिर बादल आये रे . . .

वन, पर्वत, मैदान सभी गीतों में नहा रहे
आ हम भी छेड़ें मल्हार फिर बादल आये रे

जिन्दगी जीना और जीवन की वास्तविकताओं को बयाँ कर पाना कोई सहज काम नहीं है किन्तु मिश्र जी अपने ठोस जीवनानुभव के कारण कितनी ही सहजता से जीवन का मर्म समझा जाते हैं। वे जीवन को बहुत क्लिष्ट दर्शनों में नहीं उलझते। जाहिर है उन्हें यों ही नहीं सहजता का साक्षात् रूप कहा जाता है। वे इसे अत्यंत सहजता से अपनी जीवन और रचना यात्रा को समेटते हैं –

किसी को गिराया न खुद को उछाला
कटा जिंदगी का सफर धीरे-धीरे

कुछ अपनी कही आपकी कुछ उसकी कही है
पर इसके लिए यातना क्या-क्या न सही है

भटका कहाँ कहाँ न अमन-चैन के लिए
थक-थक के मगर घर की वही राह गही है ।।

एक अन्य शेर देखें–

दूर तक फैली कफन-सी है हकीकत जिन्दगी की
ख्वाब भी आता मरा-सा, वक्त को क्या हो गया है?

मिश्र जी का प्रेम समाज से कटा हुआ मात्र प्रेमी प्रेमिका का एकांतिक प्रेम नहीं रहा है बल्कि उनके प्रेम का मुख्य स्वर गार्हस्थिक दायित्वों के मध्य से उपजा है। वैवाहिक प्रेम पर उनकी लेखनी खूब चली है। अपनी धर्म पत्नी सरस्वती मिश्र को प्रिया के रूप में, पत्नी के रूप में और घर के दायित्वों को सँभालती एक सशक्त स्त्री के रूप में मिश्र जी ने अनेकानेक कविताओं, ग़ज़लों और कथा साहित्य में उकेरा है। इसी वैवाहिक या गार्हस्थिक प्रेम की ग़ज़ल का एक–देखिए–

सुख के दुख के पथ पर जीवन छोड़ता हुआ पदचाप गया
तुम साथ रहीं, हँसते–हँसते इतना लम्बा पथ नाप गया . . .

इस विषम सफ़र की आँधी में हम चले हाथ में हाथ दिये
चलते–चलते हम थके नहीं आखिर रस्ता ही हाँफ गया

रामदरश मिश्र गाँव की मिट्टी से जुड़े हुए साहित्यकार हैं और यह गाँव उनकी ग़ज़लों में भी दिखाई देता है जहाँ वे कहते हैं–

जमी खेत की साथ लेकर चला था
उगा उसमें कोई शहर धीरे–धीरे।।

गाँव और शहर के बीच का द्वंद उनकी ग़ज़लों में भी दिखाई देता है। जहाँ वे शहर में रहते हैं पर गाँव सदा ही उनकी यादों में बसा रहता है।

सजा–धजा खामोश मरमरी भवन मुझे बंजर लगता है।
अस्त–व्यस्त रोता–हँसता–सा यह कच्चा घर, घर लगता है।

पथ में बैठा, उठा, चल पड़ा, मिले और बिछड़े हमराही
चलना था चाहे–अनचाहे, जीवन एक सफ़र लगता है

कवि का दायित्व है कि वह कभी निराश न हो उसे हर किसी को आशा और उम्मीद देनी होती है यही उम्मीद उसे खुद से भी करनी होती है वह निराश नहीं हो सकता है। इसी आशावादिता का एक उदाहरण यह गजल है –

वह न आया किन्तु उसकी याद घर आयी तो है
साथ कोई हो न हो, अपनी ये तनहाई तो है

आये हैं तो जायेंगे ही इस जहाँ से एक दिन
जिन्दगी खुश है कि अपनी बात कह पायी तो है

रामदरश मिश्र जी की गजलों में एक ओर तो गाँधी का समाजवाद झाँकता है तो दूसरी ओर राजनीति का यथार्थवाद भी। यानी वे गाँधीवादी भी हैं और यथार्थवादी भी।

हो गये रहबर से राजा आप फिर होना ही था
हमको सिंहासन वही फिर आपका ढोना ही था . . .

आपकी रहमत की दो बूँदें न मिल पायीं हमें
अपने अश्कों से ही अपने ज़ख्म को धोना ही था

कबीर ने अपने समय में तमाम धार्मिक बुराइयों पर प्रहार किया था। वर्तमान में ये बुराइयाँ धर्म के ठेकेदारों और नेताओं द्वारा फैलाई जा रही हैं। साथ ही यह विरोध आतंकवादियों के कारण भी उत्पन्न होता है। इसी पर रामदरश मिश्र की यह ग़ज़ल देखिए–

फिर खुदा के नाम पर फूटे शहर शैतान के
नयन भर आये व्यथा से राम के, रहमान के

हो रहे हैं लोग वे तुमसे मुसल्सल शर्मसार
बाद में कुछ भी हों, जो पहले हैं हिन्दुस्तान के।।

ग़ज़लों पर अक्सर यह आक्षेप लगाया जाता है कि यह अरबी और फारसी की विधा है इसका हिन्दी में प्रयोग उस बेहतरी से नहीं हो सकता जी बेहतरी से यह अरबी–फारसी में लिखी जा सकती है। इस आक्षेप को दूर करने का काम अनेक हिन्दी गजलकारों ने किया है। दुष्यंत कुमार उन गजलकारों में प्रमुख कहे जा सकते हैं परन्तु फिर भी उनकी गजलें अरबी, फारसी के शब्दों से मुक्त नहीं हो पाती है। किन्तु जब हम रामदरश मिश्र जी की गजलें देखते हैं तो ये गजलें अरबी, फारसी के प्रभाव से पूरी तरह मुक्त दिखाई देती हैं।

शरद की भोर है कि याद तेरी आई है
युगों से मन में जमी रात थरथराई है . . .

किरण से कह दो कोई, हाय यों नहीं झाँके
इस अँधेरे कुएँ की काँपती तनहाई है

उक्त गजल में अरबी, फारसी के शब्द एकदम नगण्य हैं। इस लिए इसे हिन्दी की एक समृद्ध और सशक्त गजल कहना कोई अतिशयोक्ति न होगी और रामदरश मिश्र को हिन्दी का एक श्रेष्ठ गजलकार मानने में भी कोई आपत्ति नहीं हो सकती।

बी– 126 शीश महल इन्क्लेव प्रेम नगर,
3 किरारी सुलेमान नगर, दिल्ली 110086
मो.–8851607721

ग़ज़ल के अप्रतिम संसार में रामदरश मिश्र

– नीलम चतुर्वेदी

जन्म – 4 सितंबर 1956।
शिक्षा – बी.एस.सी., एम.ए.,
रचनाएँ – तीन पुस्तकें प्रकाशित।

आज की सर्वाधिक लोकप्रिय विधा हिंदी ग़ज़ल का इतिहास ख़ासा दिलचस्प रहा है। अरबी–फ़ारसी की काव्य विधा ग़ज़ल उर्दू के रास्ते हिंदी में आयी। ग़ज़ल की लोकप्रियता के मूल में उसकी संक्षिप्तता, प्रभावोत्पादकता और सांकेतिकता प्रमुख रहे हैं। रोमानी भाव और निजी पीड़ा की टीस जन्म से उसके साथी रहे। सामाजिक ढाँचे में बदलाव के साथ ग़ज़ल की कहानी भी बदली। सामंती महफ़िलों से जनता की चौपाल में दाख़िल हुई। आम आदमी के सुख–दु:ख की हिस्सेदार हुई।

बीसवीं शती के दूसरे दशक में सनेही मण्डल के कवियों ने हिंदी ग़ज़ल को नए तेवर दिए। छायावादी प्रसाद और निराला, प्रयोगवादी कवियों शमशेर बहादुर सिंह–त्रिलोचन शास्त्री से होते हुए ग़ज़ल जब नयी कविता के सशक्त कवि दुष्यंत कुमार तक पहुँची तो उसे मिली अभिव्यक्ति की बेजोड़ ऊँचाई, सम्वेदना की अप्रतिम गहराई। अनुभूति और अभिव्यक्ति के सारे पैमाने लाँघकर वह सीधे जनता के दिल में उतर गई। दुष्यंत कुमार ने हिंदी ग़ज़ल को कविता का इतना विराट आकाश दिया कि बड़े–बड़े नाम उससे जुड़े। जो काम एक समय भारतेन्दु ने हिंदी की मान–रक्षा के लिए किया, वैसा ही लीक तोड़ने का काम दुष्यंत कुमार ने किया। पिछले दो दशक में ग़ज़ल को ऐसी लोकप्रियता मिली कि दूसरी काव्य–विधाएँ अस्त होती नज़र आयीं। हर कवि ग़ज़लगोई की ओर झुका। ऐसे माहौल में रामदरश मिश्र जैसे सिद्ध रचनाकार ने भी ग़ज़लगोई में प्रयोग किए और सफल हुए।

रामदरश मिश्र की ग़ज़लों का संसार :–'साहित्य अकादमी' और 'सरस्वती' सम्मानों से सम्मानित हिंदी साहित्य संसार के बहुआयामी वरिष्ठ रचनाकार डॉ. रामदरश मिश्र का कृतित्व सौ से ज़्यादा कृतियों में विन्यस्त है। कविताएँ रामदरश जी की रचनात्मकता का पुराना ठीहा हैं तो ग़ज़लें उनके कृतित्व का नया विस्तार। अब तक उनके कई ग़ज़ल संग्रह आ चुके हैं। 'बाज़ार को निकले हैं लोग' उनका पहला संग्रह था। ग़ज़ल की दुनिया में उनका पहला क़दम। धीरे–धीरे ग़ज़ल उनकी काव्यात्मक अभिव्यक्ति का एक नया विस्तार साबित हुई। आज वे एक सफल ग़ज़लकार गिने जाते हैं। उनकी एक ग़ज़ल इतनी पसंद की गई कि वह उनकी पहचान बन गई–

बनाया है मैंने ये घर धीरे–धीरे।
खुले मेरे ख्वाबों के पर धीरे–धीरे।

'हँसी ओंठ पर आँखें नम हैं', '51 ग़ज़लें' और 'तू ही बता दे ज़िन्दगी' संग्रहों के प्रकाशन के साथ–साथ वे ग़ज़ल में पहचाने जाने लगे। यहाँ यह जिक्र करना भी ज़रूरी है कि पिछले दो दशकों में हिंदी ग़ज़लों की लोकप्रियता के आगे दूसरी काव्य विधाएँ हाशिए पर आ गई हैं। तिरासी ग़ज़लों के संग्रह 'सपना सदा पलता रहा' में डॉ. रामदरश मिश्र की ग़ज़लगोई के विविध आयाम सामने आए। 'दूर घर नहीं हुआ' उनका छठा ग़ज़ल संग्रह है जिसमें बड़ी आत्मीय छुअन वाली ग़ज़लें हैं–

चाहे जहाँ रहा मैं, दूर घर नहीं हुआ
होने को तो हो जाता जुदा, पर नहीं हुआ।

(ग़ज़ल में सादाबयानी)

हिंदी साहित्य का यह सौभाग्य है कि उसकी महफ़िल में रामदरश मिश्र जैसे वयोवृद्ध और श्रेष्ठ रचनाकार मौजूद हैं जो दो सदियों के तमाम बदलावों के गवाह हैं। उनके लेखकीय व्यक्तित्व का हिस्सा हैं–सदियों का संताप, आह्लाद, रोज़ बनती–बिगड़ती दुनिया के अनुभव और इस सबके बीच मानवीय मूल्यों को बचाए रखने की जद्दोजहद–

दुनिया की बेशुमार दौलतें लिए हुए
रोटी को परेशान सी इक्कीसवीं सदी।
सुखों से वे सुखों की प्यास बुझाने निकले
नदी में रेत की गोया कि नहाने निकले।

आज अभिव्यक्ति के माध्यमों के सिकुड़ते जाते युग में कविता की सचाई आज भी असंदिग्ध बनी हुई है। रामदरश जी की ग़ज़लों में एक सादाबयानी है। वह उर्दू ग़ज़लों की रवायत का अनुसरण नहीं करतीं तो भी उनमें कथ्य की सफ़ाई है। एक ग़ज़ल में वे लिखते हैं–'एक नन्हा ख्वाब मेरा खो गया जाने कहाँ/गाँव देखा, शहर देखा, राजधानी देख ली। फूल से बचपन के सिर देखा बुढ़ापे का पहाड़/ आँसुओं की आँच में गलती जवानी देख ली'। वे मार्क्सवादी भले न हों पर प्रगतिशीलता उनमें कूट–कूट कर भरी है। वह गहरी मनुष्यता से परिचालित हैं–

हम मिटाते रहे समय के निशान
तुमने यादों भरी सदी दी है।

(ग़ज़ल के बदलते संदर्भ)

ग़ज़ल इधर रोमान का रास्ता तज कर जीवन की दुश्वारियों से रू–ब–रू हुई है। वह सत्तावानों की कारगुज़ारियों पर काँटे की तरह चुभती है। तभी रामदरश जी एक ग़ज़ल में कहते हैं–'जी हाँ, जी हाँ, वहाँ एक चौपाल थी/ देखिए अब वहाँ कारख़ाना हुआ।' जब सियासत के अहेरी गाँवों में सफ़ेदपोश बन कर दाख़िल होते हैं तो जनता के भीतर से क्या भय उठता है, रामदरश जी एक ग़ज़ल में इसे यों कहते हैं–

दादा जी इन दिनों गाँव में कुछ शरीफ़ जन आए हैं
न जाने क्यों इन्हें देख कर लोग बहुत घबराए हैं।

उनकी ग़ज़लों में प्रेम, प्रकृति, शहर, गाँव, मनुष्य, घर–परिवार एवं निजी अनुभवों की तमाम यात्राएँ शामिल हैं। सामाजिक राजनीतिक जीवन की विडम्बनाएँ भी, धार्मिकता के स्याह चेहरे भी। पर आम आदमी के पक्ष में उनकी आवाज़ में करुणा नज़र आती है। इन ग़ज़लों में उनका अपना जीवन भी छनकर आता है–

महलों के आँगन में घुट जाता है दम मेरा
मुझको अपने घर का कोना अच्छा लगता है।
बस गया हूँ दोस्तो, दिल्ली शहर के बीच यों तो
घर मेरा अब भी वही हाँ वही, गोरखपुर ज़िला है।
जाइए चढ़ जाइए, रुकिए नहीं
दिल नहीं, वह दर्द की मीनार है।

आधुनिकता और भूमंडलीकरण ने भले ही बहुत कुछ बदला है, पर मनुष्य का चरित्र और उसका मन नहीं बदला। ऊँच–नीच की खाइयाँ नहीं समाप्त हुईं। इस प्रसंग में रामदरश जी अपना पक्ष बहुत स्पष्टता से सामने रखते हैं–

आइए कुछ नहीं सुनें–बोलें
हम भी बौने बुतों के संग हो लें।
यादें मिली हैं कल की, मिले ख़्वाब हैं कल के
उसके नसीब में फ़क़त आज नहीं है।
बंद भीतर से सभी दरवाज़े
लोग बाहर से कहाँ तक खोलें।

डॉ. रामदरश मिश्र की रचनाओं की परिधि बड़ी है, चिन्ताओं के छोर व्यापक हैं।

मिट्टी से नाता :– जीवन के आठ दशक लिखने–पढ़ने में गुज़ार देने के बावजूद यह रामदरश मिश्र ही हैं जो अपनी मिट्टी से अपना नाता नहीं तोड़ते। पहचान वही गोरखपुर ज़िला। उम्र हो गई उनको लिखते–पढ़ते। हर साल कुछ नई किताबें। कुछ नए मसौदे। राइटिंग पैड पर कुछ न कुछ लिखते रहना उनकी आदत में शुमार है। फेक्कर होकर अस्पताल के बेड से भी अपनी ताज़ी लाइनें ऑनलाइन साझा कीं–

फूल हों या काँटे, हमने आपस में बाँटे
यात्रा के हर मोड़ पर
हमने एक–दूसरे का इंतज़ार किया है
हाँ, हमने प्यार किया है!

वे बोलते हैं तो लगता है साहित्य की एक सदी बोल रही है। कभी अपने संस्मरणों को उन्होंने 'सहचर है समय' नाम दिया था। सच ही है। वे समय के सहचर हैं। विगत और इस सदी के कंधों पर हाथ रख कर साथ–साथ चलते हुए। उनकी ग़ज़लों से गुज़रते हुए –

लगता है कि जीवन के सभी रस इनमें समाहित हैं–

था गाँव में तो देखता था शहर का सपना
लगा पुकारने सा गाँव जब शहर आया।
मेरी अज़ीज़ ज़िंदगी मुझे दे अब आराम
मुझे दिए थे काम जो-जो वे मैं कर आया।

ग़ज़लों में उनके मन की बहुत सी बातें हैं-

मुहब्बत मिली तो गया भीग उसमें
उदासीनता को भी हँस-हँस के झेला।

हर स्थिति में वे ग़रीबों, मज़लूमों, बूढ़ों, स्त्रियों, दलित पात्रों की तकलीफ़ को शब्द देते दिखते हैं। गाँव से उनका नाता सघन है। उनकी सम्वेदनाएँ गाँव के यथार्थ से जुड़ी हैं। वे ग्रामीण भारत को नहीं बिसराते-

जोड़ता बचपन को था पशु-पक्षियों की पीर से
आज नानी और दादी का फ़साना है कहाँ?
चूल्हों में है बुझी हुई जलती है जिगर में
कैसी अजीब आग मिली ज़िंदगी भर को!
आऊँगा जाऊँगा इक दिन ले खुशी
वक्त है कहता रहा, आता नहीं।
मनुज-मनुज के बीच धर्म भीत है तो तोड़ दे
अगर है ये गुनाह तो गुनाह बार-बार कर।

(ग़ज़ल के साथ यायावरी)

समय के बदलते मिजाज़ को रामदरश जी ने एक चुनौती के रूप में स्वीकार किया और खूब डूबकर लिखा। एक नज़र उनके ग़ज़ल संग्रहों के शीर्षकों पर डाली जाए तो उनकी दृष्टि और सृष्टि की मौलिकता को रेखांकित किया जा सकता है। गहरी मानवीय सम्वेदना, शब्दों की सादगी, जीवन के मामूली से लगते प्रसंगों में सार्थकता पकड़ती उनकी दृष्टि-

आया था जिस गुफ़ा से निकलकर उसी में क्यों
पूछो तो आज लौट के जाता है आदमी।
हम हैं तुम हो, तुम हो हम हैं
छोटे-छोटे सुख क्या कम हैं!

रामदरश जी की ग़ज़लों के विषय बहुरंगी हैं। जीवन के कार्य-व्यापार से जुड़ी छोटी-बड़ी अनुभव यात्रा के कुछ बहुत चुभते हुए प्रसंगों को ग़ज़लों में जगह दी है -

व्याप जाती है घुटन जब ज़िन्दगी की साँस में
अपनी कविताओं के पंखों से हवा करता हूँ मैं।
यों तो बहानों ने सच को काला कर डाला पर
जीने का कोई भी बहाना अच्छा लगता है!

रामदरश जी को रिटायर हुए तीस साल से ऊपर हुए। फ़ुर्सत ही फ़ुर्सत। फ़ुर्सतिया समय के रचनात्मक उपभोग पर क्या खूब लिखा है-

पूछते वे इन दिनों फ़ुरसत में क्या करता हूँ मैं
वक्त का अपने फटा दामन सिया करता हूँ मैं।

रामदरश मिश्र की ग़ज़लों का संसार ख़ासा भरा-पूरा हो चुका है। लगभग 400 ग़ज़लों की खूबी यह है कि जो पढ़ता है, उसमें अपनी बात पाता है। इस मायने में उनकी ग़ज़ल-यात्रा ग़ज़ल के मूल प्रवाह की सहयात्री कही जा सकती है-

आज प्यासी खड़ी इमारत है
कल यहीं था कोई कुआँ यारो!
हम हैं तुम हो, तुम हो हम हैं
छोटे-छोटे सुख क्या कम हैं!

ग़ज़ल कितनी भी अच्छी हो, उसका क़द मनुष्यता से ऊँचा नहीं हो सकता, हाँ, रामदरश जी की ग़ज़लें आदमी को मनुष्य होने का सलीक़ा देती दिखाई देती हैं। वक्त को बहुत नज़दीक से बहुत लम्बे समय तक देखने के बावजूद रामदरश जी अपनी सादगी से उसके झंझावातों के प्रहार झेलते आए हैं। जीवन जीने की उनकी यह अदा स्पृहणीय है!

ज़िन्दगी भर ज़िन्दगी उसने भी जी, उसने भी जी
साथ तू किसके रही, तू ही बता ऐ ज़िन्दगी?
वो है चाहता मैं रहूँ न रहूँ पर
रहे जगमगाता ज़माने में मेला!

एम-49, बी-अदानी समसारा सेक्टर-60,
गुड़गाँव-122001 (हरियाणा)
मो.-7042151049

आजादी से मोहभंग का दस्तावेज-जल टूटता हुआ

– ज्योति कुमारी

जन्म – 26 नवंबर 1997।
जन्मस्थान – गया (बिहार)।
शिक्षा – एम.ए.।
रचनाएँ – पत्र-पत्रिकाओं में रचनाएँ प्रकाशित।

रामदरश मिश्र द्वारा लिखा गया 'जल टूटता हुआ' एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण उपन्यास है। जिसका प्रकाशन वर्ष सन-1969 है। इसकी कथा पानी के प्राचीर का ही अगला भाग है लेकिन भौगोलिक परिस्थिति समान होने के बाद भी दोनों के समय में अंतर है। यह उपन्यास सामाजिक, ऐतिहासिक एवं राजनीतिक दृष्टिकोण से समृद्ध नजर आता है। इस उपन्यास में आजादी से मोहभंग की स्थिति को प्रमुखता से उभारा गया है। आजादी से पूर्व जो बुनियादी समस्याएँ आम जनता के बीच थी, वह आजादी के बाद भी बनी रही। भूख-बेरोजगारी-बेकारी यह तीन समस्या आम जनजीवन पर समूचे उपन्यास एवं तत्कालीन समय पर हावी रहा। वह किसी जात का हो, किसी धर्म का हो, किसी वर्ग का हो पर उन सभी की समस्या एक जैसे ही थी।

'नंगे सिर आना असभ्यता है और टोपी तो देश की इज्जत है।'

सुग्गन मास्टर आजादी के उपरांत देश एवं गाँव-समाज के वातावरण और परिस्थिति से वाकिफ तो थे, पर आजादी के गौरव को भी भूल पाना उनके लिये मुश्किल था। वह जानते थे सभी बच्चे टोपी पहन कर आने में असक्षम होंगे फिर भी खोखले इज्जत से खुद को ढके रखने में गौरवान्वित महसूस कराता था। आजादी मृगतृष्णा साबित हुई, आम जनमानस को एहसास था उन्हें आजादी के नाम पर छला गया। आजादी के बाद भी जमींदारों और पूँजीपतियों की नजर में यह लोग उपेक्षित बने हुए थे। संविधान में भारत के सभी नागरिकों को समान अधिकार दिया गया था लेकिन शोषक वर्ग अपने आप को इन लोगों से श्रेष्ठ समझते थे। इसलिए आजादी के बाद पिछड़ों के राजनीतिक भागीदारी की बात उठी तो यह तथाकथित संभ्रांत लोग भड़क उठे। ये लोग नहीं चाहते थे कि कल तक उनकी खेतों में मजदूरी करने वाले लोग किसी भी मामले में उनकी बराबरी करें। लेकिन आजादी के बाद परिस्थितियाँ धीरे-धीरे बदलने लगी थी। वंचितों के मन में जमींदारों और पूँजीपतियों के प्रति असंतोष का भाव जाग गया था। कल तक जो किसान जमींदारों के सामने सिर नहीं उठाते थे, आज वही अपने या किसी और पर अत्याचार होने पर जमींदार को नफरत भरी नजरों से देखने लगे थे। उसके इस बदले हुए अंदाज में अत्याचार और अन्याय के खिलाफ बड़े विद्रोह की भावना छिपी हुई थी। जमींदारों और पूँजीपतियों को भी अब इस परिवर्तन का अभाव हो रहा था। लेकिन फिर वह सामंतवाद के रास्ते रेत को पकड़ने की कोशिश कर रहे थे लेकिन अब सामंतवाद को बचाना बड़ा मुश्किल काम था। जनता सोचती थी आजादी के बाद महीप सिंह जैसे जालिम जमींदारों को सजा मिलेगी पर हुआ इसके विपरीत ऐसे लोगों को सजा के जगह पर राजनीतिक शक्ति प्राप्त हो गई। शोषण एक बार फिर सामंतवाद के नाश के बाद भी अपना अस्तित्व बचाने में सफल रहा। उसने राजनीति, धर्म और व्यवसाय में अपनी पैठ बना ली है।

'बाबू महीप सिंह कांग्रेस के मेंबर हो गए, नेताओं की निगाह में कांग्रेस के प्रिय व्यक्ति।'

ग्रामीण जीवन जैसे अंधकार में समा गया हो। बुनियादी चीजें भी मुहैया कराने में भारत सरकार असक्षम दिखी। कुछ गाँव तक पहुँचा भी तो बिचौलियों ने लूट-खसोट कर डकार तक न ली। पढ़े-लिखे लोग उस समय की सरकार की तुलना अंग्रेजी हुकूमत से करने लगे। फिर दिलासा मन को देते रहे, बोलने की आजादी तो यहाँ है। सुधरने में अभी वक्त लगेगा।

'इतने साल हो गए आजादी मिले हुए। यह अभागी जिंदगी टस से मस नहीं हुई है।' सुग्गन मास्टर का यह छोटा सा कथन आजादी के खोखलेपन को प्रकट करने के लिए काफी है। ग्रामीण परिवेश में जातियता चरम पे थी, किन्तु सभी की समस्या कमोबेश एक जैसी थी।

'इस इलाके में बाभन, हरिजन, मध्यवर्ग, निम्नवर्ग सभी भूख और गरीबी की चक्की में बुरी तरह पिस रहे हैं।' कई बार सुग्गन मास्टर के मानसिक अंतर्द्वंद्व से उपजे विचारों से पता लगता था कि किस विषम परिस्थिति के बीच आदमी जीवन जीने को विवश है। एक तरफ अभाव से जूझता तो दूसरी तरफ सामाजिक दबाव और बेटी के विवाह को लेकर आस-पड़ोस में कानाफूसी।

'कितने सुखी हैं पौधे जो अपने करीब मौत के हाहाकार को सुनकर भी इतनी निश्चित हँसी हँस लेते हैं!'

प्रत्येक बरसात में गाँववाले बाढ़ को पानी से त्रस्त दिखे, किन्तु सरकार द्वारा उसके बचाव के लिये कोई कार्य धरातल पे उतारा नहीं गया। काफी मशक्कत झेलने के बाद पंचायत बुलाकर उससे बचाव हेतु सर्व सम्मति से फैसला लिया गया। आजादी बाद सरकार द्वारा जो कार्य क्रियान्वित हुआ, वह शहर तक ही सिमटा रहा, सुदूर गाँव में लंबे वादों की अनुगूँज ही सुनाई दी।

'फैसला हुआ कि बाँध बँधना चाहिए। प्रत्येक घर से एक-एक आदमी, एक सप्ताह तक बाँध में मिट्टी डाले।'

रोजी-रोटी के लिये देश की एक-तिहाई आबादी पापड़ बेल रही थी। दो शाम की रोटी जुटाना मुश्किल था। घर के मुखिया को कभी-कभार बिन खाये सोना पड़ता था। बच्चे बाजार में बने मिठाइयों को देख ललचते थे। गाँव ने बड़ी कोशिश की, बारिश की पानी से बाढ़ न आये, पर उफनती नदी हमेशा फसलों को लील जाती और बेसहारा किसान तमाम कोशिशों के बावजूद भी अपने फसलों को डूबने से नहीं बचा पाता। फसलों के साथ किसान का भावनात्मक लगाव होता है, वह इस उपन्यास में बार-बार जगजाहिर हुआ है। निम्न मध्यवर्गीय समाज बेरोजगारी के कारण गरीबी से जूझ रहे थे। बिचौलियों का सामना करना भी मामूली बात नहीं। ऊपर से भूख जिसका उपाय किये बिना, जीना ही सम्भव नहीं। आज की तरह उस समय भी बीए-एमए डिग्री लेकर भी युवा बेरोजगारी के थपेड़े सह रहे थे।

'हड्डे मिठाइयों का रस ले रहे हैं,
बच्चे उन्हें देखते हैं और जीभ चटखार लेते हैं।'
'उफनती हुई फसलें देखते-देखते डूब गईं
जैसे किसी बाप के सामने उसका लड़का मार डाला जाए!'

आजादी के उपरांत ग्रामीण इलाकों में समस्याएँ ज्यों की त्यों बनी रहीं। मूलभूत बुनियादी सुविधाएँ भी आमजनों को उपलब्ध नहीं हो पाईं। बस अंग्रेजी हुकूमत के झंडे को हटाकर तिरंगा लहरा दिया गया। देश में आजादी का जश्न मनाया गया। सुदूर गाँव के लोग ख्याली पुलाव पकाने में रमे रहे कि सुराज आने के बाद देश का तस्वीर बदल जायेगी। किन्तु न गरीबी मिटी, न दैनिक जीवन की तमाम समस्याएँ। भोजन, मकान, चिकित्सा यह तीन मूल सुविधा भी आमजनों को सरकार मुहैया न करा सकी। सरकार की कुछ योजनाएँ गाँव तक पहुँचती तो उसे बीच में बिचौलियों द्वारा लूट-खसोट कर के चंपत कर लिया जाता। सबसे बड़ी बात इस उपन्यास में देखा गया कि आम जनता विकट समस्यओं में घिरकर नरकीय जीवन जीने में इस कदर अभ्यस्त हो जाते हैं कि उन्हें दु:ख-पीड़ा का तनिक भान नहीं रहता।

'ऐसे-ऐसे घाव तो देहात में लगते रहते हैं डॉक्टर साहब, सबके लिए डॉक्टर कहाँ रखे हुए हैं और मैंने तो अब भी डॉक्टर की आवश्यकता महसूस नहीं की थी।' गोरखपुर के जिस कस्बे का चित्रण उपन्यास में हुआ है, वहाँ बाढ़ मुख्य समस्या थी। वहाँ के किसान आजाद भारत में भी उपेक्षित थे। हर साल बाढ़ के पानी में फसल का डूब जाना उनकी नियति थी। सरकार योजनाएँ लाकर उनकी समस्याएँ दूर की जा सकती थी किन्तु सुदूर गाँव में अभी तक सरकार बुनियादी चीजें मुहैया नहीं कर पाई थी।

'बाढ़ ही बाढ़! किसी साल भी फसल बच पाती।'

गरीबी का विद्रूप चित्र उपन्यास में उभरा है। अभाव के दिनों में इंसान के अंदर मानसिक हलचल जोरों पर होती है। वह बार-बार अंतर्द्वंद्व बीच घिरा रहकर जीवन में आये विषम समय से लड़ता है। कर्जे की बोझ से मानो कभी उबर ही नहीं पाता है। गाँव-परिवार-समाज में बहू-बेटियों की दयनीय दशा है। पिता के लिये बेटी की ब्याह तो मांगलिक कार्य के बजाय समस्या हो चुकी है।

'गरीबी सबसे बड़ा अपमान है, वह तेज, विद्या, बुद्धि सबकुछ छीन लेती है।'

इस उपन्यास में ग्रामीण संस्कृति की महत्ता को उभारा गया है। जब सरकार द्वारा यहाँ के लोग उपेक्षित थे, तब ग्रामीण संस्कृति की देन है कि लोग बाढ़ की समस्या से निजात पाने हेतु पंचायत बुलाकर बाँध बाँधने का भरसक प्रयास किया। यह प्रयास उनके अदम्य साहस का प्रतीक है। भले काल के प्रवाह में बाँध टिक न सका। बाढ़ की समस्या पूरे गाँव के लिये समान रूप से थी, इसलिए उस समस्या से लड़ने के लिये सभी लोग एकजुट भी थे। भले ही और बातों में एक-दूसरे से असहमत थे, किन्तु बाढ़ जैसे तबाही से साथ-साथ दो-दो हाथ करते रहे।

'बाँध जगह-जगह दरक रहे हैं और जल टूट रहा है, टूट रहा है।'

रामदरश मिश्र को आजादी से मोहभंग की तो पहचान थी। पर उन्हें इस बात का अंदाजा था, शिक्षा सूरज की पहली किरण है जो गाँव की घन तिमिर को हर लेगा। गाँव की मिट्टी में मेधा की कमी कभी नहीं रही, बस कुछ लोग बूढ़े पीपल की तरह होने चाहिये जो युवाओं को विपरीत परिस्थिति में प्रेरित करते रहे। सतीश का भाई चंद्रकांत शहर से कलक्टर बनकर लौटा, यह इस बात का द्योतक है कि अब सहजता से गाँव का चंद्रकांत बनकर वहाँ की समस्याओं को सहजता के साथ लोकतंत्र के समक्ष उभार पायेगा। जिससे गाँव तक बुनियादी सुविधाएँ समुचित रूप से पहुँच पाएँगी।

'इस गाँव के लिये हमेशा चंद्रकांत ही बना रहेगा, जिस दिन गाँव में वह कलक्टर बनकर लौटेगा, मैं समझूँगा मेरा भाई मुझसे छिन गया।'

'जल टूटता हुआ' उपन्यास को साहित्य के साथ ऐतिहासिक दस्तावेज के रूप में भी देखना चाहिये, ऐसा मेरा अंतर्मन कहता है।

ग्राम-रैली, पो-बेलागंज,
जिला-गया-804403 (बिहार)
मो.-9931742842

समकालीन दौर और रामदरश मिश्र की कहानी कला

- विपिन कुमार वी

जन्मस्थान - कोल्लम (केरल)।
शिक्षा - एम.ए., एम.फिल., पीएच.डी.।
रचनाएँ - एक पुस्तक प्रकाशित।

समय, समाज और बदलाव को साथ लेकर अग्रसर रहता है। समाज की समस्याओं की पुष्टि साहित्य प्रत्येक युग में करता रहता है। परिस्थितियों के मुताबिक साहित्यकार समाज की परख करता हुआ रचना को गतिशीलता प्रदान करता रहता है। ऐसे अनेक रचनाकार हैं जिन्होंने न केवल अपने समय और परिवेश को समझते हुए रचनाएँ गढ़ीं बल्कि वे रचनाएँ समकालीन सामूहिक दौर का जीता-जागता सबूत भी बनकर हमारे सामने उपस्थित हैं। मूर्धन्य साहित्यकार रामदरश मिश्र जी की रचनात्मक कला खासतौर पर कहानी कला आज के समकालीन दौर में भी जीवित एवं प्रामाणिक साबित होती है। सन् 1951 में पहला काव्य संग्रह 'पथ के गीत' का प्रकाशन हुआ। तब से निरंतर रचनाक्रम में सक्रिय हैं। 'आग की हँसी' के लिए 2015 का साहित्य अकादमी सम्मान मिश्र जी की बड़ी उपलब्धि है। कविता, उपन्यास, कहानी, ललित निबंध, आत्मकथा, आलोचना, यात्रावृत्तांत डायरी, समीक्षा, संस्मरण, आदि सभी विधाओं में अपने लेखन की सशक्त छाप मिश्र जी ने छोड़ी है। देश काल और उससे जुड़े वातावरण को मिश्र जी ने बड़ी बारीकी के साथ अपनी विधाओं में अंकित किया है।

कविता, गीत, गज़ल, कहानी, उपन्यास, निबंध, समीक्षा, आत्मवृत्त, शोध, यात्रावृत्त आदि अनेक विधाओं पर उन्होंने कलम चलाई है। उन सब में सकारात्मक मूल्यों के प्रति आस्था के साथ 'देसीपन' का उभार देखा जा सकता है। जिसे 'लोक संवेदना' का नाम भी दिया गया है। इस 'देसीपन' के चलते मिश्र जी मुखौटों और आरोपित मुद्राओं वाले व्यक्तियों के साथ सहज नहीं हो पाते, जबकि उनसे मिलने वाले ज़्यादातर व्यक्तियों को उनका अकृत्रिम 'देसीपन' भा जाता है।' **(ले.वेदप्रकाश अभिताभ, रामदरश मिश्र)** दयावती मोदी कवि शेखर सम्मान, शलाका सम्मान, महापंडित राहुल सांकृत्यायन सम्मान, व्यास सम्मान सहित कई पुरस्कार एवं सम्मान से उन्हें नवाज़ा गया है।

रामदरश मिश्र जी की कहानियाँ न केवल समाज की जनता की अनेक समस्याओं का बयान करती हैं बल्कि समकालीन, आधुनिक समाज में भी वही समस्याएँ और परिस्थितियाँ किस रूप में व्याप्त होती जा रही हैं इस यथार्थ की ओर भी संकेत करती हैं। 'सड़क, विदूषक' और 'साढ़ेसाती' मिश्र जी की ऐसी प्रमुख कहानियाँ हैं जिसमें अंकित सच्चाई, संवेदना और सामाजिक परिस्थितियाँ आज भी हमारे इर्द-गिर्द घूमती-मँडराती दिखाई देती हैं। आज के ज़माने में आदर्शवाद, गाँधीवादी विचारधारा यह सब नई पीढ़ी और राजनीतिक क्षेत्र के लिए बहुत ही मामूली या साधारण सी बात बन कर रह गई है। ऐसे आदर्शों का मूल्य विघटन होता नज़र आता है। मिश्र जी की 'सड़क' कहानी के पात्र सेवानिवृत्त मास्टर चंद्रभान पांडे गाँधीवादी विचारधारा से प्रभावित हैं और आदर्शवाद उनकी रगों में कूट-कूट कर भरा है।

गाँव की कच्ची सड़क पक्की सड़क का रूप लेने की तैयारी में थी जिसका श्रेय एम. एल. ए जंगबहादुर यादव जैसे राजनीतिज्ञ अपने हिस्से करने की जतन में लगे थे। गाँव में आने वाले इस विकास को देखते हुए पांडे जी का पुत्र रमेश सड़क के किनारे चाय की दुकान खोलता है और पांडे जी को उस पर बिठाता है। घर की तीव्र आर्थिक तंगी के बावजूद भी पांडे जी का मन अपनी उच्च जाति और आदर्शवाद के रहते दुकान पर बैठने का बिल्कुल नहीं होता। इस जटिल अर्थाभाव में भी पांडे जी खादीवस्त्र का इस्तेमाल ही करते थे। उनके पास एक खादी की धोती थी जो अब पुरानी होकर धीरे-धीरे फटती जा रही थी किंतु अपने आदर्शवाद की तरह ही उसे भी त्यागने में असमर्थ थे। अपने शिष्य और गाँव के एम. एल. ए जंगबहादुर यादव के हाथों अपनी ही दुकान पर अपमानित होने पर उनके आदर्शवादी मूल्यों को ठेस पहुँचती है। एक खादी पांडे जी ने पहन रखी थी तो एक खादी नेता जंगबहादुर ने पर यहाँ सोचने की बात यह है कि राजनीतिज्ञ इस खादी की आड़ में आदर्शवाद और गाँधीवादी

मूल्यों की कितनी कद्र करते हैं। यही हालात आज समकालीन समाज में व्याप्त हैं। पांडे जी की धोती का धीरे-धीरे फटना से मिश्र जी गाँधीवादी विचारधारा और आदर्शवादी मूल्यों की गिरावट की ओर संकेत करते हैं। रमेश पिता से कहता है- 'छोड़िए, खादी-वादी पिताजी। मिल की धोती मज़बूत और सस्ती होती है वह इस तरह जगह-बेजगह धोखा नहीं देती।' **(ले. रामदरश मिश्र, एक वह, 'सड़क', पृ. 12)** जनता का विश्वास राजनीति से उठता दिखाई देता है, खादी कलंकित होती नज़र आती है।

पांडे जी फटी धोती के सहारे अपनी इज्जत बचाने का प्रयास करते हैं किंतु खादी की आड़ में जंगबहादुर यादव जैसे राजनीतिक नेता का बर्ताव देख वे अपने भीतर के द्वंद को मिटाते हुए सोचते हैं-'कि रमेश के बच्चे फटे-पुराने नेकर पहने उसके सामने से स्कूल चले गए। उन्हें एक चोट-सी लगी- क्या वह इतनी महँगी खादी की धोती पहनकर बच्चों को नंगा रखेगा? आज तक तो उसने यही किया। उसे क्यों नहीं मालूम हुआ कि खादी-खादी में भेद होता है। एक खादी उसकी है एक यादव जी की।यादव ही खादी पहनने का हकदार है क्योंकि उसके शरीर पर खादी का विकास हुआ है और वह, वह नहीं, उसके शरीर पर तो खादी फटती ही चली गई है।' **(ले. रामदरश मिश्र, एक वह, 'सड़क', पृ. 13)** और अंत में पांडे जी खादी त्याग कर मिल की सस्ती धोती पहनकर रमेश के साथ दुकान की ओर रवाना होते हैं। इस तरह की दु:खद स्थिति का कारण और निर्माता नेता ही हैं जो चाहते हैं कि जनता हमेशा आर्थिक रूप से विपन्न रहे और उन पर आश्रित रहे। समकालीन दौर में भी जनता इसी तरह की परिस्थितियों से गुज़र रही है।

समाज में कल और आज के संदर्भ में भी ऐसे लोग मौजूद हैं जो अपनी क्षमता, हुनर और स्वभाव से लोगों का मन रिझाते हैं। किसी न किसी रूप में सदियों तक ऐसे लोग मन में वास कर जाते हैं। कभी किसी गंभीर व्यक्तित्व में तो कभी किसी विदूषक के रूप में। समाज की कसौटी पर मौजूद ऐसे अनेक लोग परिस्थितियों की मार के कारण अपने ऐसे आकर्षक स्वभाव को भूल अपने में सिमटते नज़र आते हैं। मिश्र जी की ऐसी ही एक प्रमुख समस्या को उभारने वाली कहानी है 'विदूषक।' कथावाचक अपने बचपन के दिनों की बात याद करते हुए अपने मित्र जोगीराय की चर्चा करते हैं जो उनके बचपन के दिनों में एक विदूषक था। दूसरों का मज़ाक उड़ा कर हँसना और हँसाना जोगीराय की अपने आप में एक कला थी। अब वे दिन बीत चुके थे और कथावाचक तथा उनके परिचित अनेक जगहों और नौकरियों में व्यस्त थे। छुट्टियों में गाँव पहुँचने पर वे जोगीराय से मिलने को जिज्ञासित होते हैं। वे इस उम्मीद से मिलने की ताक में थे कि जोगीराय उसी व्यक्तित्व और स्वभाव से बेफिक्र आनंद में मग्न और संतोष प्रद होंगे। लेकिन जोगीराय से मुलाकात पर व्यक्त हो जाता है कि परिस्थितियाँ इंसान को कैसे संकुचित बना देती हैं। ब्राह्मण परिवारों के बीच अच्छे-खासे घर में जन्मे जोगीराय पर पिता की मृत्यु के बाद सारी जिम्मेदारियाँ आ जाती हैं। पढ़ाई बीच में ही छूट जाती है। इस कारणवश कोई बड़ी नौकरी नहीं मिल पाती। रेलवे में मजदूर की एक छोटी नौकरी मिलती है जिसकी बदौलत चार बेटियों की शादी करता है। बेटा संजय पढ़ाई में ज़्यादा कुशल न होने के कारण खेती का कार्य सँभालता है। जोगीराय को तीव्र झटका तब लगता है जब उनके बेटे संजय की मृत्यु एक बच्चे को आग से बचाते वक्त होती है। जोगीराय को गर्व था कि पढ़-लिख कर न सही किसी की जान बचा कर उसका बेटा सदा के लिए उसका नाम रोशन कर गया। समाज में निचले और खासतौर पर मध्यवर्ग में ऐसे अनेक लोग देखने को मिलेंगे जो ऐसी परिस्थितियों का शिकार बन अपने स्वभाव के मुताबिक विकास नहीं कर पाते हैं। कहानी में जोगीराय खेती-बाड़ी में व्यस्त होकर संकुचित जीवन जीने पर विवश नज़र आता है। फिर भी अपने बचपन के दोस्त कथावाचक से मिलने पर अपने इस जटिल मानस को छिपाकर हँसने और स्वाभाविक होने की कोशिश करता है।

कथावाचक के शब्दों में 'जोगीराय तथा उन जैसे लोगों के बारे में मैं बाद में सोचता रहा हूँ कि उन्हें अवसर मिला होता तो क्या उनकी वह व्यंग्य-विधायिनी प्रतिभा साहित्य में चमकी न होती, जो बचपन या युवावस्था में एक हल्के-फुल्के विनोद और शरारत के रूप में ली जाती रही है। जोगीराय जिस तरह व्यंग्य-विनोद की कथाएँ गढ़ते थे, उससे उनके भीतर छिपी हुई शक्ति के संकेत मिलते थे। उन्हें अवसर मिला होता तो क्या वह दूसरे हरिशंक रपरसाई नहीं बने होते। उनके व्यंग्य-विनोद अपने आसपास की जीवंत स्थितियों एवं चरित्रों से फूटते थे और सबसे बड़ी बात यह थी कि वे स्वयं अपने व्यंग्य-विनोद को जीते थे, उनके परिणामों को हँसते-मुस्कुराते झेलते थे। बल्कि उनकी मान्यता थी कि व्यंग्य-विनोद करने का मज़ा ही क्या, यदि उसकी सजा न मिले। अब तो आलम यह है कि बड़े से बड़े व्यंग्यकार सुरक्षित होकर व्यंग्य करते हैं। यानी वे चाहते हैं कि वे दूसरों पर चोट तो करें किंतु वे स्वयं सुरक्षित रहें। यदि उन्हें कोई प्रतिफल भोगना पड़ता है तो साहित्य में हाय-तौबा

मच जाती है। जोगीराय किसी पर हमला नहीं करते थे बस विनोद करते थे और जीते थे।' **(ले.रामदरश मिश्र, विदूषक)** कहानी के इन मुख्य वाक्यों से हमें प्रतीत होता है कि कथावाचक के रूप में स्वयं मिश्र जी समाज के साधारण लोग और साहित्य की परिभाषा किन-किन मायनों में बदलती चली जा रही है इन सबसे परिचित करा रहे हैं। समकालीन साहित्य में भी यह विडंबना आज कई संदर्भों में देखी जा रही है।

यह मिश्र जी की कहानी कला ही है जो आम लोगों की जिंदगी को समाज की ऐसी परिस्थितियों और गतिविधियों से जोड़कर संपूर्णता प्रदान करती है। 'कहानी जीवन के किसी एक अंग अथवा मनोभाव को प्रदर्शित करने वाली एक गद्य बद्ध रचना है जो मनोरंजन तथा कौतूहलवर्द्धक हो तथा जिसके अंत में किसी चमत्कारपूर्ण घटना की योजना की जाए।' **(ले. डॉ.रामसागर त्रिपाठी, डॉ. शान्तिस्वरूप गुप्त, बृहद साहित्यिक निबंध, पृ.809)** मिश्र जी की कहानियों में यह चमत्कार स्पष्ट रूप से विद्यमान है।

वर्तमान संदर्भ में मनुष्य ने ज्ञान, विज्ञान, उद्योग सभी क्षेत्रों में विकास किया है। अपनी बुद्धि एवं आत्मविश्वास के बल पर वह सब कुछ हासिल करता नज़र आता है। लेकिन फिर भी विकास के इस वर्तमान दौर में भी वह किसी न किसी अंधविश्वास के सहारे जीता नज़र आता है। समाज का उच्च, माध्य और निम्न हर तरह का वर्ग आज इसकी चपेट में है। उच्च वर्ग के पास आज सब कुछ है लेकिन फिर भी वह नष्ट होने के डर से, अपनी गरिमा, पद तथा संपत्ति को स्थिर एवं कायम रखने के लिए ऐसे पाखंड विश्वासों का सहारा लेता है। ऐसी ही मानसिकता आज पाखंडी पुजारियों और तांत्रिकों को समाज में जन्म दे रही है जो भर-भर कर ऐसे विश्वासों का लाभ उठाते हुए शोषण और लूट मचाए हुए हैं। रोचक बात तो यह है कि इस प्रक्रिया में भी उच्च वर्ग को प्राथमिकता मिलती है क्योंकि उनके पास पूँजी की कमी नहीं है। आम जनता तो उनके लिए सिर्फ तुच्छ और साधारण है। समाज की इन्हीं सभी कड़वी सच्चाईयों का बयान करती हुई मिश्र जी की कहानी है 'साढ़ेसाती'। कहीं-कहीं व्यंग के सहारे भी मिश्र जी ने अपने पात्रों के अनुभव युक्त जीवन का चित्रण किया है। 'साढ़ेसाती' इसका सशक्त उदाहरण है। रोहित स्वामी महान तांत्रिक हैं, किंतु वे उनका ही भाग्य देखते हैं, जिनके पास गाड़ी, बंगला और सुविधाओं की तमाम वस्तुएँ हों। एक गरीब व्यक्ति जब उनके पास अपना भाग्य दिखाने आता है तब साधु उसे डाँटते हुए कहते हैं 'देख भाई, गुरु जी इतने सस्ते नहीं हैं कि इखारियों-भिखारियों का भाग्य देखते चलें। जिसका कोई भाग्य ही नहीं है, उसका कोई क्या भाग्य देखेगा? और भाग्य दिखाना ही है तो देख, फुटपाथ पर तोता लिए हुए बहुत से ज्योतिष बैठे रहते हैं, उन्हें दिखा ले' **(ले. रामदरश मिश्र, एक कहानी लगातार, 'साढ़ेसाती', पृ .19)** इस प्रकार व्यंग्य के माध्यम से मिश्र जी ने एक साथ अनेक बातों पर प्रकाश डाला है।

आर्थिक रूप से कमज़ोर व्यक्ति ही अपना भविष्य देखने को उतावला रहता है। जिसका वर्तमान सुख-समृद्धि से युक्त हो वह भविष्य इस उद्देश्य से देखता है कि उसकी पूँजी, यश, शासन कब तक कायम है और उसे कैसे कायम रखे। उन्हें ऐंठने के लिए रोहित स्वामी जैसे ठग तांत्रिक, पुजारी, ज्योतिष आदि का जामा पहने तैयार रहते हैं। उनके ही बल पर तो स्वामी जी ऐशो-आराम का जीवन व्यतीत कर सकते हैं। कहानी का नायक 'साढ़ेसाती' (देवी का प्रकोप) की मार और आर्थिक विपन्नता के चक्कर में फँसा था। एक दूसरे मंदिर के पुजारी जी उसे पीतल के लोटे से पीपल के पेड़ पर जल चढ़ाने की राय देते हैं। तब वह पीतल का लोटा खरीदने में अपनी असमर्थता प्रकट करता है। इस पर पुजारी जी हँसते हुए कहते हैं 'अरे बेवकूफ, जब तेरे पास पीतल का लोटा तक नहीं है तो तू क्यों डरता है? साढ़ेसाती तेरा क्या बिगाड़ लेगी? क्या छीन लेगी? अरे, ताल ठोक कर शनिश्चर महाराज को ललकार दे, करलो जो करना हो।' **(ले. रामदरश मिश्र, एक कहानी लगातार, 'साढ़ेसाती', पृ .22)** जिसके पास कुछ न हो अर्थात् ईमानदार व्यक्ति को डरने की आवश्यकता नहीं होती। भ्रष्टाचार, बेईमानी, शोषण से कमाई हुई संपत्ति के हकदार चैन से नहीं सो पाते। ज़रूरत से ज़्यादा स्वार्थ भी लोगों को ऐसे अंधविश्वासों से भरे दलदल में धकेलता है जिसका फायदा रोहित स्वामी जैसे कपट तांत्रिक उठाते हैं।

इन कहानियों के माध्यम से मिश्र जी न केवल सामाजिक विसंगतियों की ओर इशारा करते हैं बल्कि यह भी दर्शाते हैं कि वर्तमान दौर और समकालीन संदर्भ में भी समाज में इस प्रकार की समस्याएँ किस प्रकार गंभीर रूप से व्याप्त हैं। मिश्र जी की यह दीर्घ दृष्टि उनकी कहानियों को चिरस्थाई बनाए हुए है। सामाजिक यथार्थ का खुला चिट्ठा हमें मिश्र जी की कहानियों में स्पष्ट रूप से देखने को मिलता है। छोटी से छोटी समस्याओं पर भी उनकी कहानियाँ पाठकों को सोचने पर मजबूर करती है और यही उनकी कहानियों की खूबी और कला है। रामदरश मिश्र जी की यही रचनात्मक कला समकालीन दौर में उन्हें और उनकी कहानियों को प्रासंगिक बनाती है।

अतिथि अध्यापक, श्री शंकराचार्य संस्कृत विश्वविद्यालय, कालडी-683574 (केरल)
मो. - 8089381098

रामदरश मिश्र : आभारी हूँ बहुत दोस्तो, मुझे तुम्हारा प्यार मिला

– प्रकाश मनु

जन्म – 12 मई 1950।
शिक्षा – एम.एस.सी., एम.ए.।
रचनाएँ – नब्बे पुस्तकें प्रकाशित।
सम्मान – हिंदी अकादमी के साहित्यकार सम्मान सहित अनेक सम्मानों से अलंकृत।

इसी पंद्रह अगस्त को हिंदी के बड़े कद के बड़े साहित्यकार रामदरश मिश्र जी अपनी उम्र के निन्यानबे बरस पूरे कर रहे हैं। यह उनका सौवाँ जन्मदिन है। इस अवस्था में भी वे खूब सक्रिय, स्वस्थ हैं। लिखते-पढ़ते हैं, पाठकों और साहित्यिकों से निरंतर संवाद भी बनाए रखते हैं। अभी कुछ अरसा पहले ही उन्हें हिंदी का अत्यंत प्रतिष्ठित सरस्वती सम्मान मिला है, और यह उनसे ज्यादा पूरे हिंदी जगत का सम्मान है। इसलिए कि अरसे बाद किसी हिंदी साहित्यकार को यह सम्मान मिला है। इससे पहले हिंदी के लेखकों में केवल हरिवंशराय बच्चन और गोविंद मिश्र को ही यह सम्मान प्राप्त हुआ है।

रामदरश जी मेरे गुरु हैं। उनसे बहुत कुछ सीखा, बहुत कुछ पाया है। बरसों से उनका आत्मीय स्नेह और सान्निध्य मुझे मिलता रहा है। भला मेरे लिए इससे बड़ा सौभाग्य और क्या हो सकता है? आज उन पर लिखने बैठा हूँ तो यादों का पूरा एक कारवाँ चल पड़ा है और सर्दियों का वह धूप भरा दिन मेरी स्मृतियों में दस्तक देने लगा है, जब मैं एक भीतरी उमंग से भरकर यों ही रामदरश जी के यहाँ पहुँच गया था बातचीत करने के लिए। उस दिन रामदरश जी के जीवन के तमाम पन्ने खुले और खुलते ही चले गए। मैं लगभग पूरे दिन उनकी बातों और उनके अनुभवों की आँच में सीझा उनके पास बैठा रहा। उनकी जिंदगी और लेखन-यात्रा तथा संघर्षों के बहुत-से मर्म-बिंदु जानता था, लेकिन उनकी आधार-पीठिका पहली बार खुली। और उस खुली बातचीत में रामदरश जी को ज्यादा खुलेपन से और कहीं ज्यादा करीब से जाना।

खास बात यह थी कि उनके यहाँ बड़े लेखकों वाली दिखावटी व्यस्तता का ताम-झाम मुझे बिल्कुल नजर नहीं आया। उनका वह पूरा दिन जैसे मुझे दे दिया गया। वे पूरी तरह प्रफुल्ल थे और बातचीत के मूड में थे। और वह बातचीत इस तरह अनौपचारिक थी कि एक प्रसंग में से तमाम प्रसंग निकलते चले जा रहे थे। फिर एकाएक रामदरश जी के साथ-साथ उनके तमाम साथियों और सहयात्रियों के चेहरे उनमें से झाँकने लगे। खासकर निराला और अपने गुरु हजारीप्रसाद द्विवेदी का जिक्र आने पर तो वे बेहद भावुक हो गए थे। तमाम वरिष्ठ लेखकों का जिक्र हुआ और उनके तमाम संस्मरणात्मक प्रसंग इस लंबी बातचीत में खुल-खुलकर सामने आने लगे। लेकिन सबसे बढ़िया प्रसंग वे थे, जिनमें गाँव के मामूली और अनपढ़ लोगों का जिक्र था और वे उनकी अद्भुत शख्सियत का बखान-सा करते थे कि उस समय उन लोगों ने मुझे बचाया न होता तो आज मैं कुछ न होता, कहीं न होता।

यह बात कोई कम काबिले-तारीफ नहीं कि राजधानी में इतने बरसों से रहते हुए भी रामदरश जी ने अपनी सहजता और गाँव के आदमी का खरापन खोया नहीं। इससे उन्हें नुकसान चाहे जो भी हुए हों, लेकिन एक फायदा भी हुआ है कि वे छोटे-बड़े हर नए आदमी से प्यार से धधाकर मिलते हैं और पूरी तरह उससे समरस हो जाते हैं। इसीलिए तथाकथित बड़े जब एकांत की चारदीवारियों में कैद हैं, रामदरश जी ने खुद को खुला छोड़ दिया है। अब वे खुद के ही नहीं रहे, उन सभी के हैं जो उन्हें प्यार करते हैं और उन्हें प्यार करने वालों की संख्या निरंतर बढ़ती ही जाती है। खासकर युवा पीढ़ी को उनसे जो प्यार मिला है, उसकी तो मिसाल ही मुश्किल है। शायद ही उनके अलावा कोई दूसरा साहित्यकार हो, जो नई पीढ़ी के लेखकों से इतना खुलकर संवाद रख पाता है।

यहीं एक प्रसंग और याद आता है। रामदरश जी से एक बार किसी ने पूछा, 'आपकी नजर में महानता क्या है...या महान आदमी कौन है?' इसके जवाब में रामदरश जी ने सहजता से कहा था, 'मेरे खयाल से महान व्यक्ति वह है, जो अपने संपर्क

में आने वाले छोटे-बड़े सभी को अपनाकर मिलता है और उन पर अपने बड़े होने का आतंक बिल्कुल नहीं डालता।'

इस लिहाज से अगर देखें तो आज के साहित्यिक परिवेश में रामदरश जी अकेले लेखक हैं, जो इतना अधिक नए लेखकों को पढ़ते हैं और निरंतर उनकी हौसला अफजाई करते हैं। आज के समय में जबकि न पढ़ने का ही चलन है और न पढ़ना कहीं ज्यादा बड़प्पन और रौब-दाब का सूचक बन गया है, वहाँ रामदरश जी की खोज-खोजकर नयों का पढ़ने और उन्हें आगे लाने की तत्परता चकित जरूर करती है।

मुझे सुखद आश्चर्य होता है, जब किसी पत्रिका में मेरा कोई लेख या रचना देखकर वे मुझे सूचना देते हैं, और साथ ही अपनी राय भी बता देते हैं। मेरे लिए ये क्षण जीवन के सर्वाधिक आनंद के क्षण होते हैं। और सार्थकता के भी। इन्हीं क्षणों में लगता है कि आज जब साहित्य में इतनी आपाधापी और टाँगखिंचाई चल रही है, तब रामदरश जी जैसे लेखक भी हैं जो एक व्यक्ति होते हुए भी, एक परंपरा की सदेह उपस्थिति जैसे लगते हैं। यही शायद किसी व्यक्ति का आत्मविश्वास है जो निरंतर सचेत भाव से जीते-जीते आता है।

यह बात मुझे सुखद विस्मय से भर देती है कि इस अवस्था में भी, जब रामदरश जी सौ का आँकड़ा छूने के काफी निकट आ गए हैं, वे तन-मन से काफी स्वस्थ और सचेत हैं। कभी-कभार आ जाने वाली छोटी-मोटी व्याधियों के अलावा कोई ऐसी चीज नहीं, जो उन्हें काम करने से रोक सके। यहाँ तक कि उम्र की नवीं दहाई में उन्होंने तीन उपन्यास लिख डाले और ये तीनों रस विभोर कर देने वाले उपन्यास हैं। ये उपन्यास हैं—'बचपन भास्कर का', 'एक बचपन यह भी' और 'एक था कलाकार'। इनमें एक उपन्यास में स्वयं रामदरश जी का बचपन है। 'बचपन भास्कर का' शीर्षक से लिखे गए इस उपन्यास में रामदरश जी ने हमें अपने बचपन में ले जाकर उन दिनों की सैर कराई है, जहाँ आज की दुनिया से अलग एक निराली ही दुनिया थी और उसकी कुछ अजब सी मुश्किलें।

'बचपन भास्कर का' में रामदरश जी के बचपन की बड़ी आत्मीय झाँकी है। और न सिर्फ उनके बचपन, बल्कि उनके समय में गाँव-देहात में घोर अभावों के बीच पलते हिंदुस्तानी बचपन की भी बड़ी प्रामाणिक तस्वीर है। ऐसा बचपन जिसने घोर गरीबी और दारिद्र्य देखा, फिर भी मस्ती की खिलखिलाहट वहाँ कम न थी। जो लोग रामदरश जी की आत्मकथा पढ़ चुके हैं, वे उनके बचपन की ऐसी रोचक और विस्मयकारी घटनाओं से वाकिफ हैं, जिनमें किसी उपन्यास से अधिक रस और आकर्षण है। सच पूछिए तो मुझे वही उनकी आत्मकथा का सबसे सुंदर और बेजोड़ हिस्सा लगता है। 'बचपन भास्कर का' उपन्यास में वही सब एक अनोखी किस्सागोई में ढलकर हमारे सामने आता है, और सच ही बाल पाठकों के साथ-साथ बड़ों को भी विभोर कर देता है।

इसी कालखंड में लिखे गए दूसरे उपन्यास 'एक बचपन यह भी' में भी बचपन है। भाभी सरस्वती मिश्र जी का बचपन। जब-जब मैं उनके घर गया हूँ, भाभी जी के सतेज व्यक्तित्व की बड़ी मनोहर छवियाँ मेरे आगे खुलती हैं। रामदरश जी की कविता, डायरी, संस्मरण, यात्रा-वृत्तांत और निबंधों में भी सरस्वती जी की अनेक छवियाँ हैं, जिन्हें जाने बगैर आप रामदरश जी को ठीक-ठीक जान नहीं सकते। दोनों सही मायने में सहचर हैं, हरसफर कह लीजिए। इस नाते सरस्वती जी का बचपन भी रामदरश जी के लिए अपरिचित न रहा होगा। पति-पत्नी के नित्य संवाद में उसके नए-नए अबूझ पन्ने खुलते होंगे। और बहुत सा तो रामदरश जी का खुद अपनी आँखों देखा भी है। पर उस बचपन का साधारणीकरण करके, रामदरश जी उसे भी एक नए रूप में जीकर, अपनी सर्जनात्मक प्रतिभा से पुनर्नवा कर देंगे, और फिर उसे एक रोचक उपन्यास के रूप में अपने पाठकों के आगे प्रस्तुत कर देंगे, यह कम-से-कम मेरे लिए तो अकल्पनीय ही था।

और 'एक बचपन यह भी' कोई मामूली नहीं, बड़ा अच्छा और अंत तक पाठकों को बाँधे रखने वाला उपन्यास है। उसमें रस भी है, रोचकता भी और गाँव के यथार्थ का ऐसा जीवंत चित्रण कि पढ़ते हुए पाठक मुग्ध और चकित सा उसके साथ बहता चला जाता है। खासकर उपन्यास की नायिका, जिसमें सरस्वती जी के अक्स बहुत साफ दिखाई देते हैं, गाँव की होते हुए भी अपनी स्वतंत्र चेतना, निर्भीकता, दबंगी और गहन संवेदना के कारण पाठकों के चित्त पर छा सी जाती है, और उपन्यास पढ़ने के बाद भी आप उसे भूल नहीं पाते।

तीसरा उपन्यास 'एक था कलाकार' में रामदरश जी ने असमय गुजर गए अपने कलाकार बेटे हेमंत को मानो ट्रिब्यूट दिया है। हेमंत बड़े संभावनाशील अभिनेता थे और दूर-दूर तक उनकी ख्याति फैल चुकी थी। अनेक जाने-माने धारावाहिकों में आकर

उन्होंने अपनी प्रतिभा का अहसास लोगों को कराया था। उनकी असमय मृत्यु ने रामदरश जी को कैसे भीतर से तोड़ दिया और किस धीरज के साथ उन्होंने इस दुख को झेला, इसे तो थोड़ा-थोड़ा जानता था। पर 'एक था कलाकार' पढ़कर बहुत कुछ सामने आया, जिसमें उस कलाकार के दुख और वेदना के साथ-साथ उनके हृदय में जगमगाते सपने भी झलमलाते नजर आए, जिन्हें मृत्यु के करुण आघात ने बिखरा दिया। रामदरश जी ने बड़े धीरज के साथ खुद को सँभालते हुए यह उपन्यास लिखा है। इसीलिए यह इस कदर पठनीय बन गया है कि इसमें जीवन का एक सहज प्रवाह नजर आता है।

इतना ही नहीं, कुछ अरसा पहले मेरे आग्रह पर अपने बचपन को आधार बनाकर रामदरश जी ने बच्चों के लिए सुंदर कहानियाँ लिखी हैं, जिनका संचयन 'बचपन की कुछ यादें' नाम से छपा है।

लेकिन इससे भी अचरज भरी चीज इस दौर की उनकी कविताएँ हैं। इस दौर में छपी उनकी कविता पुस्तकों 'आम के पत्ते' और 'आग की हँसी' में बड़े ही सहज ढंग से रामदरश जी की कविता एक नया मोड़ लेती है। मुझे सबसे अच्छी बात यह लगी कि उम्र की दहाई तक आते-आते रामदरश जी इस कदर कवि-सिद्धता हासिल कर चुके हैं कि उनकी कविताएँ बड़ी सहज और अनौपचारिक हो चली हैं। अपने आसपास का जो जीवन वे डूबकर जीते हैं, वह सहज ही उनके शब्दों की संवेदना में घुल-घुलकर बहता दीख पड़ता है। इतना सहज कि उन्हें कविता लिखने के लिए विषय ढूँढ़ने की दरकार नहीं है। बल्कि उनके आसपास जो कुछ भी है, वह खुद-ब-खुद कविता की ओर खिंचा चला जाता है, और फिर कवितामय होकर हमारी आँखों के आगे आता है तो हम चौंक पड़ते हैं कि अरे, यहाँ तक आते-आते तो रामदरश जी के लिए मानो सारा जीवन ही कवितामय हो उठा है। जीवन में कुछ भी ऐसा नहीं है, जो उनकी कविता की चौहद्दी से बाहर हो।

जैसे प्रेमचंद ने अपनी कहानी और उपन्यासों में उस दौर की परिस्थितियों के साथ-साथ पूरा जीवन ही उतार दिया और उसे कथामय कर दिया। ऐसे ही रामदरश जी अपनी अपूर्व सिद्धता से जीवन के हर रंग, हर रेशे को कविताई के रंग में ढालते जा रहे हैं। और इसके लिए उन्हें कुछ करना नहीं पड़ता। कविता तो हर समय उनके साथ बहती ही है, और जो कुछ वे देखते हैं, पास से महसूस करते हैं, वह खुद-ब-खुद कवितामय हो उठता है। जैसे अगर आप हरिद्वार या ऋषिकेष जाएँ, तो आपको पता चलेगा कि गंगा की धारा के आसपास जो भी जीवन है, वह भी मानो गंगामय है। गंगा तो गंगा है ही, गंगा के चारों ओर जो जीवन बहता है, वह भी गंगा ही है, गंगा की पवित्रता में भीतर तक नहाया हुआ सा है।

तुलसीदास ने 'सियाराममय सब जग जानी' कहा तो यह सिर्फ एक चौपाई ही न थी, बल्कि पूरे संसार को सच ही उन्होंने सियाराममय देखा था। उसी तरह रामदरश जी ने पूरे जग-जीवन को ही कवितामय कर डाला। क्या यह सिद्धता यों ही मिल जाती है? अगर जीवन में बड़ी संवेदना और हृदय विस्तार न हो, तो क्या आप उसे इस तरह सहज हासिल कर सकते हैं? रामदरश जी की एक प्रसिद्ध कविता है, जिसमें वे अपनी कविता की जमीन तथा अपने कवि की 'प्राणशक्ति' और निजीपन की चर्चा करते हुए कहते हैं कि उन्होंने अपने आँगन का एक कोना कच्चा छोड़ दिया है, इसलिए न वे बनावटी हुए और न जमीन से उनका रिश्ता ही खत्म हुआ! रामदरश जी की कविताओं में यह कविता सबसे अलग और खास मुझे इसलिए लगती है, क्योंकि यह अकेली कविता रामदरश जी के कवि का 'सही और संपूर्ण परिचय' भी है!

और मुझे तो रामदरश जी की कविता की असली शक्ति यही लगती है कि दिल्ली में इतने बरस रहते हो गए, पर न वे कभी अपनी जमीन को भूले और न मिट्टी और पानी की गंध उनके साहित्य में कमतर हुई। इसीलिए आज के तमाम कवि-लेखक जब देखते ही देखते बासी और पुराने होते जा रहे हैं, रामदरश जी उन लेखकों में से हैं जो आने वाली शताब्दियों में भी मानवता के साथ रहेंगे और उसे सही रास्ते तक पहुँचाने में मदद देते रहेंगे।

कई बार मैं सोचता हूँ, रामदरश जी से मैंने क्या सीखा? रामदरश जी से मैंने क्या पाया? तो कुछ देर के लिए मानो मैं स्मृतिबिद्ध और कुछ-कुछ विमूढ़ सा रह जाता हूँ। अपने आसपास देखता हूँ तो सब ओर से वही तो मुझ पर छाए हुए हैं। बड़े बेमालूम ढंग से आहिस्ता-आहिस्ता मुझे गढ़ते हुए, मुझे भीतर-बाहर से सँवारते और पग-पग पर मेरी चिंता करते हुए कि कहीं मैं अपनी कुछ अतिरिक्त भावुकता में टूट न जाऊँ। अकसर बगैर मुझे जताए वे मेरी राहें आसान करते रहे हैं। और मिलने पर या फिर फोन पर हमेशा हिम्मत और हौसला बढ़ाते हैं। मैं तिहत्तर बरस का हो गया, पर अब भी वे किसी आत्मीय अभिभावक की तरह मुझे सँभालते रहते हैं। कई बार लगता है, मैंने प्रेमचंद को नहीं देखा, पर रामदरश जी में मैंने जिस प्रेमचंद को देखा, या रामदरश जी

के विपुल साहित्य में जिस प्रेमचंद को पुनर्नवा होते हुए देखा और पाया, वह क्या भुलाने की चीज है? प्रेमचंद गाँवों के कथाकार थे तो रामदरश जी भी जब गाँव की बात करते हैं, तो पूरा गाँव एकदम आँखों के आगे आ जाता है। दिल्ली में बरसोंबरस रहते के बावजूद अगर आज भी वे गाँव के हैं, गाँव की मिट्टी तथा पानियों की गंध और आस्वाद आज भी अगर उनकी कहानी और कविताओं में आता है, तो मन को अपने साथ बहा ले जाता है।

मुझे कहने दीजिए कि प्रेमचंद और उनके साहित्य ने आजादी से पहले जो काम किया था, आजादी के बाद वही काम साहित्यकार रामदरश जी ने और नए विचारों की संवाहक उनकी कृतियों ने किया। आजाद भारत में उन्होंने गाँव की जनता को सच्ची आजादी का मतलब बताया और उसके लिए अपने आप से और व्यवस्था से लड़ने की प्रेरणा दी। अशिक्षा, दैन्य, जातिगत भेदभाव और रूढ़ियों से ग्रस्त ग्राम्य समाज में उनकी कृतियाँ नई सोच का पैगाम और नया जीवन लेकर पहुँचीं, और उन्होंने जनता को युग-परिवर्तन की राह पर आगे आने के लिए पुकारा। रामदरश जी के साहित्य के माध्यम से रूढ़ियों से मुक्ति की यह कोशिश एक नई आजादी का स्वप्न बनकर गाँव-गाँव में पहुँची। यों भी रामदरश जी कोई नफरत या धिक्कारवादी साहित्यकार नहीं हैं। बल्कि उनके मन में अपने लोगों से एक गहरा, बहुत गहरा प्रेम है, जो उनके साहित्य में बड़ा अद्भुत समावेशी स्वर बनकर उभरता है। इसीलिए वे कविता लिखें, कहानी या उपन्यास, उसमें आम जनता के गौरव की गाथा तो आएगी ही। साथ ही जीवन की तलछट से निकले ऐसे जीवंत पात्र भी, जो रामदरश जी की कलम से निकलकर, सही अर्थों में अमरत्व पा गए।

इस मानी में मुझे मुक्ति दिलाने वाले भी रामदरश जी ही हैं। मैं स्वीकार करूँगा कि एक समय था, जब कुछ-कुछ कलावादी व्यामोह मेरे मन और चेतना पर जाले बुनने लगे थे। पर रामदरश जी ने बहुत इशारों में मुझे समझाया तो मेरी आँखें खुल गईं, और कुछ अरसे के लिए मन में कलावाद का जो नशा चढ़ा था, उसे उतरते भी देर नहीं लगी।

तभी मुझे समझ में आया कि रामदरश जी ने क्यों ऐसी चीजों की परवाह नहीं की। बहुत से फैशनेबल आंदोलन उनके सामने आए-गए, पर रामदरश जी बिना उनसे प्रभावित हुए, बड़े धीरज और विश्वास के साथ अपनी राह पर चलते रहे। आज उनके असंख्य पाठक देश के कोने-कोने में फैले हैं। देश का कोई विश्वविद्यालय नहीं है, जहाँ उन पर शोधकार्य न हुआ हो। जहाँ भी वे जाते हैं, छात्र ही नहीं, अध्यापक भी उनके पैरों पर झुक जाते हैं। वे सबके गुरु, सबके आदरणीय हैं। अपनी विविधतापूर्ण रचनाओं और साहित्य से पूरे हिंदी जगत में उन्होंने अपना ऊँचा स्थान बनाया है। अब वे इतने बड़े हैं कि उन्हें यश की भी परवाह नहीं। लेकिन अगर उन्होंने आलोचकों की परवाह की होती तो केवल चार आलोचकों के मुखापेक्षी होकर रह जाते, और हर वक्त इसी चिंता में दुबले होते रहते कि कहीं उनके चेहरे की रेखाएँ तन न जाएँ। हमारे लिखने और साहित्य को अर्थवत्ता तभी मिलती है, जब हमारी रचनाएँ व्यापक रूप से जनता तक पहुँचती हैं, और उनके दिलों में अपनी जगह बनाती हैं। इसलिए अगर लेखक केवल चार लोगों के कॉकस में बंदी होकर रह जाए, तो यह न केवल साहित्य का अपमान है, बल्कि जनता का भी तिरस्कार है। और ऐसा लेखक कभी अपनी जनता का वैसा प्यार और सम्मान हासिल नहीं कर सकता, जो रामदरश जी को मिला है।

सच पूछिए तो रामदरश जी का पूरा साहित्य ही मानो आम आदमी का महाकाव्य या आम आदमी की महागाथा है। उन्होंने न सिर्फ एक मामूली आदमी को नायक के सिंहासन पर बैठाया, बल्कि उसे गरिमा दी, मान-सम्मान दिया। जनता का दुख-दर्द, जनता की बेचैनी और परेशानियाँ, जनता की आहत पीड़ा उनकी कविता, कहानी, उपन्यास, निबंध, संस्मरण, यात्रा-वृत्तांत समेत हर विधा में अपनी सूची करुणा के साथ बह रही है। वे सिर्फ कहने के लिए अपनी जनता के लेखक नहीं हैं, बल्कि सही मायनों में अपनी जनता से एकाकार हो चुके हैं। इससे बड़ी किसी लेखक की चरितार्थता भला क्या हो सकती है?

फिर रामदरश जी एक बड़े परिवार के मुखिया की तरह हमेशा उन सबकी परवाह करते नजर आते हैं, जिनसे वे भावनात्मक रूप से करीब से जुड़े हैं। इधर जब भी उनसे मेरी बात होती है, वे हमेशा मेरी कविताओं की चिंता करते नजर आते हैं। वे बार-बार याद दिलाते हैं कि 'मनु जी, आपकी कविताओं में एक अलग रंग है, उनमें कुछ अलग बात है। आपने कविता लिखना क्यों छोड़ दिया?' उनकी बात सुनता हूँ तो भीतर उथल-पुथल सी मच जाती है। सच ही बहुत तरह के काम मैंने ओढ़ लिए हैं। इनमें कविता, जो शुरू से ही मेरी सहयात्री, बल्कि मेरी पहचान रही है—वह छूटती सी जा रही है। हालाँकि कविताएँ लिखना बंद नहीं हुआ, पर वे कुछ पीछे तो जरूर छूट गई हैं।

मेरे बहुत से मित्र और आत्मीय जन हैं, जो मुझसे प्यार करते हैं। पर मेरी सहयात्री सुनीता के अलावा, यह बात कहने वाले केवल रामदरश जी हैं, जो बार-बार इस ओर मेरा ध्यान खींचते हैं। वे आपको प्यार करते हैं तो यह भी जानते हैं कि आपका कौन सा ऐसा पक्ष है, जो सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है, या फिर जिसमें आपने सबसे अधिक सशक्त ढंग से खुद को व्यक्त किया है। वे घर भी आए हैं, बड़े प्यार से सुनीता से भी मिले हैं। घर-परिवार के वरिष्ठ सदस्य की तरह वे घर में सभी की चिंता करते हैं।

फिर रामदरश जी ने जैसा लिखा, खुद वैसा ही सीधा-सादा जीवन भी जिया है। उनके यहाँ लिखने और जीने में कम से कम फर्क है। इसीलिए वे बड़े आत्मविश्वास के साथ आने वाली पीढ़ी से यह कह भी सकते हैं कि साहित्य जल्दी-जल्दी सब कुछ बटोरने के लिए नहीं है। यह लंबी दूरी की दौड़ है, इसलिए धीरे चलना चाहिए। अपने समय और आसपास के परिवेश को समझते हुए, आहिस्ता-आहिस्ता कदम आगे रखना चाहिए, और अपने ढंग से अपने लक्ष्य तक पहुँचना चाहिए। दूसरों को देखकर, उनकी नकल, प्रतिस्पर्धा या हबड़-तबड़ में अपने आप को नहीं भूल जाना चाहिए। क्योंकि ऐसे हड़बड़िए बहुत जल्दी थोड़ा-बहुत पाकर रुक जाते हैं। उन्हें भ्रम हो जाता है कि बहुत कुछ पा लिया। तो अब आगे और लिखने से क्या फायदा? पर लिखने वाला, जिसे केवल अपने लिखने पर भरोसा है, वह अपनी कलम के बूते पहचान बनाता है, और आगे चलता जाता है। अंत में वह उस जगह पहुँचता है, जहाँ पहँचना उसे एक लेखक होने के गौरव से भर देता है।

रामदरश जी मुझसे कोई छब्बीस बरस बड़े हैं। उनमें और मुझमें एक पीढ़ी का फर्क है। फिर भी वे हमेशा प्यार से, बराबरी से मिलते हैं। कभी उन्होंने मुझे लघुता का अहसास नहीं कराया। वे मेरे गुरु हैं, इसके बावजूद उन्होंने हमेशा बराबरी का सम्मान दिया, प्यार दिया। एक लेखक होने का गौरव दिया। और वे मुझसे कितने बड़े हैं, इसका अनुमान इस बात से लगाया जा सकता है कि जब उनका गीत संग्रह 'पथ के गीत', जिसकी भूमिका आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने लिखी है, प्रकाशित हुआ, उस समय मैं कोई दो बरस का था। इसी वर्ष उन्होंने बनारस हिंदू विश्वविद्यालय से एम.ए. की परीक्षा उत्तीर्ण कर ली थी।

इसी तरह जब 'हिंदी आलोचना की प्रवृत्तियाँ और उसकी आधार-भूमि' विषय पर पी-एच.डी. की उपाधि के लिए रामदरश मिश्र का शोध संपन्न हुआ, तब मैं केवल सात बरस का था और कक्षा दो में वर्णमाला और गिनती लिखना सीख रहा था। अगले वर्ष, जब मैं आठ बरस का था, वे गुजरात विश्वविद्यालय से संबद्ध होकर, पढ़ाने लगे थे।

यह सब सोचता हूँ तो मन में आता है कि कहाँ रामदरश जी और कहाँ मैं! अपनी लघुता के बोझ से दबने सा लगता हूँ। पर फिर थोड़े ही समय बाद उनका फोन आता है और वे 'मनु जी, कल एक पत्रिका में आपका लेख पढ़ा। बहुत अच्छा लिखा है आपने!' कहकर बात शुरू करते हैं तो बीच के सारे फासले गायब हो जाते हैं। मानो रामदरश जी ने मुझे भी सहारा देकर अपने पास बैठा लिया हो।

कई बार मुझे लगता है, मुझमें और रामदरश जी में कई समानताएँ हैं, जो हमें एक-दूसरे के इतना निकट ले आईं। रामदरश जी बचपन से ही भावुक हैं और उन्हीं के शब्दों में, कुछ-कुछ घरघुसरे भी। मेरी स्थिति भी इस मामले में उनसे कुछ अलग नहीं है। बचपन से ही मेरा हाल यह है कि किसी करुण प्रसंग को सुनते ही आँखों से टप-टप आँसू टपकने लगते हैं। गला रुँध जाता है।

मुझे याद है, किशोरावस्था में प्रेमचंद के उपन्यास पढ़ते हुए मेरे पूरे गाल आँसुओं से भीग जाते थे। एक हाथ से किताब पकड़े हुए, मैं दूसरे हाथ से आँसू पोंछता जाता। हालाँकि आगे क्या हुआ, यह जानने की उत्सुकता तनिक भी कम न होती। यही हालत अक्सर फिल्में देखते हुए हो जाती। वहाँ कोई मार्मिक दृश्य आ जाता तो न सिर्फ आँसू बहने लगते, बल्कि कई बार तो रोते-रोते हिचकियाँ तक बँध जातीं। श्याम भैया जो मुझे फिल्म दिखाने ले जाते थे, बार-बार टोकते। पर फिर भी अपने आँसुओं पर मेरा बस नहीं था। तब श्याम भैया गुस्से में आकर डपटते हुए कहते, 'देख कुक्कू, अगर तू अब रोया न, तो अभी तुझे हॉल से बाहर ले जाऊँगा और फिर कभी फिल्म दिखाने नहीं लाऊँगा।'

सुनकर कुछ देर के लिए मजबूरन अपनी सिसकियों पर रोक लगाता, पर फिर उसी तरह आँखों से आँसू बरसने लगते। हल्की सिसकियाँ भी शुरू हो जातीं, जिन्हें बाहर निकलने से रोकने की मैं भरसक कोशिश करता। पर फिर भी वे घुटी-घुटी सी आवाज में बाहर आ ही जातीं, उन पर मेरा कोई बस नहीं

था।

श्याम भैया यह जानते थे। वे मेरी भावुकता को समझते थे, इसीलिए मुझसे प्यार भी करते थे। पर ऊपर-ऊपर से गुस्सा भी करते, जिससे अपनी भावुकता पर थोड़ा सा नियंत्रण करने की कोशिश अलबता मैं जरूर करता। हालाँकि पूरी तरह सफल तो कभी नहीं हो पाया। आज भी जब सत्तर पार कर चुका हूँ, यह हालत बदली नहीं है। रामदरश जी की तरह मैं दुनियादारी से दूर ही रहा। और मुँह दिखाई तो कभी सीख ही नहीं सका। कहीं बाहर बहुत आना-जाना भी मुझे पसंद नहीं है। बस, लिखने-पढ़ने में ही सुख मिलता है। लगता है, इससे दुर्लभ चीज कुछ और नहीं है। आदमी दुनिया में बाकी सब पा सकता है, पर यह लिखने-पढ़ने का सुख तो एक मानी में ईश्वरीय ही है। अगर भीतर गहरी अंत:प्रेरणा और चेतना है, तभी आप लिखने-पढ़ने में आकंठ डूबे रह सकते हैं। लेकिन अगर संवेदना ही नहीं है, तो फिर कुछ नहीं है। धरती पर अगर कुछ स्वर्गिक या स्वर्गोपम है, तो मैं कहूँगा कि वह यही है, यही है, यही है!

मेरा और रामदरश जी का परिवेश बेशक एक सा नहीं रहा। वे ग्रामीण अंचल के हैं, मैं शहराती बंदा। किशोरावस्था तक मुझे पता ही नहीं था कि गाँव क्या चीज है। मैं शायद दसवीं में था, जब मेरा एक सहपाठी मुझे अपना गाँव दिखाने ले गया। तब गाँव को थोड़ा-बहुत जाना। पर गाँव में क्या सुंदर है, तब भी नहीं समझ सका था। गाँव को सच में जानने की शुरुआत तब हुई, जब मैंने प्रेमचंद के उपन्यासों को दुबारा-तिबारा पढ़ा। ऐसे ही आजादी के बाद के गाँवों को मैंने जाना रामदरश जी के उपन्यासों को पढ़कर। इस रूप में उनका ऋणी हूँ कि असली हिंदुस्तान और हिंदुस्तानी संस्कृति को मैं उनके उपन्यास पढ़कर ही समझ पाया, जिसके बिना शायद मैं अधूरा ही रहता।

पिछले दिनों रामदरश जी को याद कर रहा था, तो अनायास कविता की कुछ पंक्तियाँ बनीं, और वे मेरे शब्दों में उतरते चले गए। वे पंक्तियाँ तो कुछ खास नहीं, पर उनमें रामदरश जी हैं, यही खास है। शायद आप भी उनका आनंद लेना चाहें। तो लीजिए, आप भी उन्हें पढ़ लीजिए—

मेरे अंदर रामदरश जी, मेरे बाहर रामदरश जी,
आगे चलते रामदरश जी, पीछे दिखते रामदरश जी।
सुख में, दुख में, फाकामस्ती में भी हँसते और हँसाते—
अंदर-बाहर, बाहर-अंदर रामदरश जी, रामदरश जी।

कविता वाले रामदरश जी, किस्से वाले रामदरश जी,
इस अँधियारे जग के उजले हिस्से वाले रामदरश जी,
चुप-चुप कुछ कहते, कह करके बस मुसकाते रामदरश जी,
एक पुराना गीत, उसी को फिर-फिर गाते रामदरश जी।

मिला राह में जो उसको, घिस-घिस चमकाते रामदरश जी,
सारे ही घर उनके, जिनमें आते-जाते रामदरश जी,
बैठ गए वे जहाँ, छाँह का वृक्ष उगाते रामदरश जी,
डुगुर-डुगुर अब चले हवा से कुछ बतियाते रामदरश जी।

जब से आए रामदरश जी, मन में कितना हुआ उजीता,
कहती बड़की, कहती छुटकी, कहती चुप-चुप यही सुनीता।
खुले द्वार, खुल गईं खिड़कियाँ, जब से आए रामदरश जी,
टूट गई सारी हथकड़ियाँ, जब से आए रामदरश जी।

चह-चह करतीं घर में चिड़ियाँ, जब से आए रामदरश जी।
बिन दीवाली के फुलझड़ियाँ, जब से आए रामदरश जी।
एक रोशनी का कतरा था, बढ़ते-बढ़ते वह खूब बढ़ा,
छोटा सा था मेरा आँगन, लेकिन खुद ही हुआ बड़ा।

ठंडी छाया बरगद की सी, ममता की हैं कोमल बाँहें,
चलता हूँ जिस ओर, वहीं से खुल जाती हैं उनकी राहें।
वे ही अंदर, वे ही बाहर, कितने रूपों में छाए हैं,
लंबा था रस्ता पर चलकर खुद ही मेरे घर आए हैं।

जो सीखे हैं पाठ अनोखे, भूल न पाता रामदरश जी,
गीत सुरीले जो सीखे हैं, फिर-फिर गाता रामदरश जी।
अर्थ महकते नए-नए से, नई-नई मोहक छवियाँ हैं,
यादों में हैं आप, आपमें कितनी सारी स्मृतियाँ हैं!

शिष्य आपका, पाठक भी हूँ, चाहे थोड़ा अटपट सा हूँ,
ढाई आखर पढ़े प्यार के, तब से थोड़ा लटपट सा हूँ।
थोड़ा झक्की, थोड़ा खब्ती, थोड़ा-थोड़ा प्यारा भी हूँ,
इसी प्यार से जीता भी हूँ, इसी प्यार से हारा भी हूँ।

एक खुशी है मगर, आपने खुले हृदय से अपनाया है,
कुछ गड़बड़ गर लगा, प्यार से उसको भी समझाया है।
यह उदारता, यही बड़प्पन भूल न पाता रामदरश जी,
विह्वल मन ले, इसीलिए चुप सा हो जाता रामदरश जी।

जो कुछ सीखा, जो कुछ पाया, वह कविता में ढाल लिया है,
एक दीप उजली निर्मलता का अंतस में बाल लिया है।
चाहे आँधी आए, मन का दीप नहीं यह बुझ पाएगा,
अंगड़-बंगड़ छूटेगा, पर उजियारा तो रह जाएगा।

अंतर्मन में दीप जला तो कहाँ अँधेरा रह पाएगा,
यहाँ उजाला, वहाँ उजाला, अंदर-बाहर छा जाएगा।
आप साथ हैं तो जैसे यह सारी धरती अपनी है,
इस मन-आँगन में भी कोई गंगा अब तो बहनी है!

पता नहीं कि मैं अपने मन की बात कितनी कह पाया हूँ, कितनी नहीं। पर इन पंक्तियों को लिखने के बाद जो सुकून मिला, और मन कुछ हल्का सा हो गया, वह अहसास शायद मैं कभी भूल न पाऊँगा। रामदरश जी के साथ कभी यात्रा का भी संयोग बनेगा, यह तो मैं कभी सोच भी नहीं सकता था। पर यह भी हुआ, और मुझे याद है, रामदरश जी के मुझ पर अतिरिक्त स्नेह के कारण ही यह संभव हो सका था। असल में कानपुर में एस.एन. बाल विद्यालय के प्रबंधक अरुणप्रकाश अग्निहोत्री रामदरश जी के साहित्य के बड़े प्रशंसक और मुरीद हैं। एक बार वे उन्हें खोजते हुए, घर आए। उनका मन था कि कानपुर में उनके स्कूल के परिसर में एक व्यापक पुस्तक मेले का आयोजन हो। साथ ही उस अवसर पर बड़ा सुंदर साहित्यिक कार्यक्रम भी हो, जिसमें लेखक अपने विचार और अनुभव पाठकों से साझा करें।

रामदरश जी ने सहमति दे दी तो पूरे आयोजन की तैयारी कर ली गई। इस कार्यक्रम की अध्यक्षता रामदरश जी को करनी थी। साथ ही महीप सिंह, कन्हैयालाल नंदन, प्रदीप पंत समेत कई वरिष्ठ साहित्यकारों को इसमें शिरकत करनी थी। रामदरश जी का आग्रह था कि मैं भी इस आयोजन में भाग लेने के लिए उनके साथ चलूँ। मैं थोड़ा यात्रा-भीरु हूँ, और कहीं आने-जाने से कन्नी कटता हूँ। पर रामदरश जी ने कहा कि वे मेरे साथ रहेंगे। इसलिए मुझे कोई चिंता करने की जरूरत नहीं है। फिर घर से निकलने पर थोड़ा एक भिन्न सा अनुभव होगा। उन्होंने बताया कि कन्हैयालाल नंदन और महीप सिंह भी साथ ही रहेंगे। हम सभी लोग एक साथ सुबह-सुबह शताब्दी एक्सप्रेस से चलेंगे।

रामदरश जी का ढंग इतना स्नेहपूरित और पारिवारिक सा था कि न कहने का तो प्रश्न ही नहीं था। मन में थोड़ा उत्साह भी पैदा हुआ कि रामदरश जी के साथ रहूँगा तो यह बड़े सुख की बात होगी। फिर नंदन जी और महीप जी भी हैं, तो एक अच्छा साहित्यिक सत्संग सा हो जाएगा।

जैसा कि तय था, मैं यात्रा से एक दिन पहले ही रात के समय रामदरश जी के घर पहुँच गया। रात का खाना भी वहीं खाया। वहाँ उनका जो आत्मीयता भरा पारिवारिक रूप देखा, उसे कह सकूँ, ऐसे शब्द मेरे पास नहीं हैं। कानपुर का वह कार्यक्रम तो बड़ा सुरुचिपूर्ण था ही, पर साथ ही उसमें रामदरश जी की बड़े भाई सरीखी आत्मीयता के भी बहुत सारे रंग देखने को मिले। एक ही कमरे में हमें ठहराया गया था। सारी व्यवस्था काफी अच्छी थी। लेकिन रामदरश जी खुद से ज्यादा मेरी चिंता कर रहे थे। पूरे कार्यक्रम के दौरान उनका जो अभिभावक वाला रूप देखने को मिला, उसे कभी भूल न पाऊँगा।

फिर सभी साहित्यिकों का शताब्दी से आना-जाना खुद में एक अलग अनुभव था। उसमें रामदरश जी के साथ ही नंदन जी और महीप जी का भरपूर साहचर्य मिला। आने-जाने में खूब प्रसन्नता भरी, खुली साहित्यिक चर्चा। इन स्नेही साहित्यकारों की पारिवारिक किस्म की आत्मीयता को मैं इतने निकट से महसूस न कर पाता, अगर रामदरश जी के साथ कानपुर न गया होता। कानपुर प्रवास की बहुत स्मृतियाँ हैं, जिनकी चर्चा फिर कभी। हाँ, जिस कमरे में हमें ठहराया गया था, उसमें सुबह उठते ही प्रभात रश्मियों के साथ रामदरश जी का जो गीतमय गुनगुनाता हुआ रूप दिखाई दिया, वह अब भी मेरी स्मृतियों में बसा है। वे बहुत हल्के स्वर में भीतर ही भीतर अपने किसी पुराने गीत का आनंद लेते हुए गा रहे थे। मैंने महसूस किया, इस उम्र में भी उनका कंठ बहुत मधुर है। वे बहुत सुरीले ढंग से गीत पढ़ते हैं। यों कविता सुनाने का उनका ढंग भी इतना प्रभावी है कि शब्द आपके भीतर उतरते चले जाते हैं। जो सादगी उनके लिखने में है, वही सुनाने में। बगैर किसी अतिरिक्त नाटकीयता के, संवेदना से लिपटा उनका स्वर मन में एक तरंग सी पैदा करता है, और फिर आप कविता के साथ बहते चले जाते हैं। कविता सुनाने का शायद सबसे अच्छा तरीका भी यही है, जिससे सुनने वाले और सुनाने वाले के बीच कोई दूरी, कोई दीवार नहीं रह जाती। मैं साहित्यिक आयोजनों में प्राय: जा नहीं पाता। बहुत अधिक रुचि भी नहीं है। इसके बजाय चुपचाप लिखना-पढ़ना ही मुझे सुहाता है। पर इसे अपना सौभाग्य ही मानता हूँ कि रामदरश जी से जुड़े कुछ आत्मीयता भरे कार्यकमों में मुझे शामिल होने का सौभाग्य मिला है। ऐसा ही एक अवसर था, दयावती मोदी कवि शेखर सम्मान मिलने पर उनके सम्मान में वाणी विहार में, उनके घर के निकट ही, एक अंतरंग गोष्ठी का आयोजन।

मुझे उसमें कुछ बोलना था, पर मुझे लगता है, लिखने में जैसी सहज लय मेरी बन जाती है, वह बोलने में नहीं बनती। तो मैंने सोचा कि जो कुछ मन में उमड़ रहा है, वह अगर एक कविता में बाँध सकूँ, तो यह कहीं बेहतर होगा। और फिर रामदरश जी पर एक लंबी, मुक्त लय और निर्बंध आवेग वाली कविता लिखी गई—'हमारी दुनिया में एक सीधा आदमी'। एक स्वत:स्फूर्त कविता, जिसमें उनके सहज, स्वभाव और खुद्दार गँवई व्यक्तित्व को बाँधने की कोशिश मैंने की। रामदरश जी में ऐसा क्या है, जो बरसों दिल्ली में रहते हुए भी उन्हें दिल्ली शहर का नहीं बना सका। आज भी वे जैसे गाँव को ही जी रहे हैं, और गाँव-कस्बे में ही उनका मन बहता है। ऐसा क्यों भला? कविता थोड़ा-थोड़ा इसकी तलाश करती जान पड़ती है।

'हमारी दुनिया में एक सीधा आदमी' कविता की शुरुआत एक तरह की बतकही से होती है। लीजिए, जरा आप भी पढ़ लीजिए ये पंक्तियाँ—

बुरा न मानिए, जितने सीधे हैं
उतने ही मुश्किल हैं आप रामदरश जी,
जितने सीधे हैं उतने ही जरा टेढ़े...ऊबड़खाबड़,
गूढ़-निगूढ़।

कि जैसे हरियाली और दरख्तों की हँसी से भरपूर
एक सीधा-सादा पठार
जो मेरी कलम में बँधा ही नहीं आज तलक,
जबकि सोचा था, आपका भी क्या!
जब भी चाहूँगा, पा लूँगा—
लगाकर दौड़ या कि दो-चार छलाँगें भरकर
छू ही लूँगा आपका हाथ!

पता न था कि
छोटे-छोटे हाथ-पैरों वाले बुभुक्षित दैत्यों की इस नगरी में
सड़क पर सीधे तनकर चलता है कोई सीधा आदमी
तो उसकी छाती में बनते हैं ऐसे-ऐसे भँवर
ऐसे बला के भँवर...कि राम बचाए!

इस कार्यक्रम में डॉ. नित्यानंद तिवारी, कमलेश्वर और कन्हैयालाल नंदन भी उपस्थित थे। सबने कविता को बड़ी रुचि से सुना, पसंद भी किया। बाद में कुछ अंतरंग मित्रों को सुनाने का अवसर मिला। सबने काफी सराहा कि इस कविता में मानो रामदरश जी अपनी पूरी जीवंतता के साथ सामने आ जाते हैं। इसके कुछ समय बाद कुरुक्षेत्र गया तो ब्रजेश भाई को तो यह कविता मैंने सुनाई ही। फिर उनके साथ ही जनवादी विचारक डॉ. ओमप्रकाश ग्रेवाल जी के घर भी जाना हुआ। वहाँ जाने-माने आलोचक डॉ. शिवकुमार मिश्र भी बैठे थे। ग्रेवाल जी और शिवकुमार मिश्र जी ने, कविता खूब पसंद की। खासकर शिवकुमार मिश्र तो इस कविता को सुनते हुए झूम से रहे थे। बाद में उन्होंने कहा, 'बहुत अच्छी कविता लिखी है आपने। मैं तो मिश्र जी के निकट रहा हूँ तो कह सकता हूँ कि इसे सुनते हुए उनकी पूरी छवि सामने आ जाती है।...मिश्र जी कभी मिले तो उनसे भी इसकी चर्चा करूँगा।'

इसी तरह रामदरश जी की रचनावली के लोकार्पण के अवसर पर भी एक सुंदर कार्यक्रम हुआ था, जिसमें शामिल होने का अवसर मुझे मिला। इसमें कमलेश्वर और विष्णुचंद्र शर्मा जी भी उपस्थित थे। मैं कमलेश्वर जी के साथ ही इस कार्यक्रम में गया था, और रामदरश जी की सादा लेकिन पुरअसर कविताओं पर बोला था। विष्णुचंद्र शर्मा और कमलेश्वर जी के साथ-साथ कुछ और साहित्यकारों ने भी रामदरश जी के व्यक्तित्व और साहित्यिक योगदान की बड़े सम्मान से चर्चा की थी। रामदरश जी जो अपनी लंबी सृजन-यात्रा में बिना किसी से आतंकित हुए, आहिस्ता-आहिस्ता अपनी राह पर चलते रहे, उन्होंने आखिर बहुत अनायास ढंग से अपना होना सिद्ध कर दिया था। इस कार्यक्रम में इसकी सुंदर प्रतिध्वनियाँ गूँजती नजर आईं।

कुछ अरसे बाद के. के. बिरला फाउंडेशन की ओर से रामदरश जी को अत्यंत प्रतिष्ठित व्यास सम्मान मिलना भी एक खुशी और आनंद का अवसर था। तीन मूर्ति भवन में हुए बड़े गरिमामय कार्यक्रम में उन्हें यह सम्मान प्रदान किया गया। इसी कार्यक्रम में नरेंद्र कोहली को भी व्यास सम्मान प्रदान किया गया, जिन्हें संभवत: अगले बरस का व्यास सम्मान मिला था। और फिर इसी कार्यक्रम में दोनों साहित्यकारों को दो अलग-अलग वर्षों के लिए व्यास सम्मान प्रदान किया गया। कार्यक्रम में रामदरश जी की सहज ऊष्मा से भरी अनौपचारिक वक्तृता ने सबका मन मोह लिया।

साहित्य अकादेमी द्वारा रामदरश जी के व्यक्तित्व पर फिल्म निर्माण भी एक अच्छा और स्वागत योग्य निर्णय था। रामदरश जी ने मुझे यह सूचना देते हुए कहा कि मनु जी, यदि आप भी इस अवसर पर उपस्थित रहें, तो मुझे बहुत अच्छा लगेगा। तो मैं सुबह-सुबह ही उनके घर पहुँच गया था। रामदरश जी की अत्यंत स्नेहिल और बुद्धिमती बेटी स्मिता भी साथ थी। यह दिन एक बिल्कुल अलग तरह का दिन था, जिसमें रामदरश जी के

कई अनौपचारिक मूड्स का मैं गवाह बना। सन् 2004 में वाणी प्रकाशन से रामदरश जी की शख्सियत और और सर्जना पर केंद्रित मेरी पुस्तक आई, 'रामदरश मिश्र : एक अंतर्यात्रा'। हालाँकि इस पुस्तक की भी एक कहानी है। असल में विष्णु खरे पर वाणी प्रकाशन से मेरी पुस्तक आ रही थी, 'एक दुर्जेय मेधा : विष्णु खरे'। पुस्तक पूरी होने से पहले ही रामदरश जी की पुस्तक की पांडुलिपि भी मैं तैयार कर चुका था। मैंने अरुण माहेश्वरी से इसका जिक्र किया, और कहा कि 'मेरा मन है, रामदरश जी पर लिखी गई मेरी यह पुस्तक भी वाणी से ही आए, और मिश्र जी के जन्मदिन पर इस पुस्तक का लोकार्पण हो।' अरुण माहेश्वरी ने मुस्कुराते हुए कहा, 'मनु जी, पुस्तक हम करेंगे और उनके जन्मदिन पर यह आएगी भी। पर...मैं चाहता हूँ कि अभी आप डाक्साब से जिक्र न करें। उनके जन्मदिन पर हम लोग उन्हें सरप्राइज देंगे...!'

मुझे भी अरुण माहेश्वरी का यह विचार भा गया। यों पुस्तक पर काम ठीक समय पर शुरू हो गया था, जुलाई के पहले-दूसरे हफ्ते तक मैंने उसके प्रूफ वगैरह भी पढ़ लिए थे। अब कोई विशेष काम बाकी न था। रामदरश जी का जन्मदिन निकट ही था। पर मैंने राज को राज ही रखा था, और अभी तक उनसे पुस्तक की चर्चा नहीं की थी। हालाँकि फिर मुझे यह राज खोलना ही पड़ा, जब पुस्तक के आवरण के लिए रामदरश जी के कुछ फोटो लेने मैं उनके घर गया। रामदरश जी के विविध मूड्स के फोटो लेकर मैं वाणी प्रकाशन में गया, तो अरुण माहेश्वरी ने उनका एक चित्र पसंद करते हुए कहा, 'यह कुछ अलग सा है मनु जी। इसी को लेंगे।...आप चाहें तो आज ही आवरण फाइल करवा लें। ताकि आपको दुबारा न आना पड़े।' मुझे याद है, उस दिन कोई दो-ढाई घंटे मैं वहाँ रुका। फ्लैप मैटर समेत पुस्तक का आवरण फाइनल कराया। पुस्तक का आवरण सच ही बहुत सुंदर बना था। रामदरश जी की प्रसन्न छवि आवरण पर थी। यों भी यह पुस्तक किसी रूढ़ किस्म की आलोचना से आक्रांत हुए बगैर, अपने मन की मौज में लिखी गई थी। लिहाजा कथित आलोचना से भिन्न, यह एक सर्जनात्मक किस्म की पुस्तक थी। ऐसी पुस्तक, जिसे पढ़ते हुए पाठक की मनुष्य और साहित्यकार रामदरश जी से बड़ी प्रीतिकर दोस्ती हो जाती है, और उसके तार मन में खुद-ब-खुद एक संगीतमय तान छेड़ते हैं। पुस्तक लिखते हुए मेरे मन में कल्पना थी कि इसे पढ़ने पर रामदरश जी के सीधे, सहज व्यक्तित्व में छिपी ऊष्मिल आभा और उदात्त भाव-तरंगों को समझने के अनंत रास्ते खुलने लगें। हर कोई अपने ढंग से अपने रामदरश जी को जान सकें, और पुस्तक इसके लिए एक भावनात्मक संबल का सा काम करे।

मेरे लिए खुशी की बात यह है कि वाकई रामदरश जी के जन्मदिन पर, उनके घर पर हुए एक अनौपचारिक आयोजन में ही 'रामदरश मिश्र : एक अंतर्यात्रा' पुस्तक का लोकार्पण हुआ। कार्यक्रम खासा गरिमामय था। एकदम पारिवारिक किस्म का कार्यक्रम, जिसमें सब एक ही भावना में बह रहे थे। रामविलास जी के छोटे भाई तथा जाने-माने लेखक, संपादक रामशरण मुंशी जी ने पुस्तक का लोकार्पण किया, और वे बहुत अच्छा बोले। रामदरश जी की नौसर्गिक सृजन प्रतिभा और खुली मानवीय दृष्टि के साथ-साथ उनमें जो एक उदार किस्म की मार्क्सवादी दृष्टि है, उसकी ओर मुंशी जी ने सबका ध्यान खींचा। साथ ही उन्होंने कहा कि प्रकाश मनु जी की पुस्तक व्यक्ति और साहित्यकार रामदरश मिश्र को जानने का एक प्रीतिकर रास्ता खोल देती है। इसलिए कि इस पुस्तक में प्रकाश मनु निरंतर रामदरश जी के साथ-साथ चलते नजर आते हैं। बल्कि नई और पुरानी पीढ़ी के दो लेखकों के इसी स्नेहपूर्ण साहचर्य का नतीजा यह पुस्तक है, जो दूसरों को भी राह दिखाएगा। कवि और आलोचक ओम निश्चल ने बहुत आत्मीय लहजे में कार्यक्रम का संचालन किया।

अब जरा एक क्षण के लिए पुस्तक के नाम की चर्चा करें। 'रामदरश मिश्र : एक अंतर्यात्रा'—भला पुस्तक का नाम यही क्यों? असल में रामदरश जी के साहित्य का अध्ययन करते-करते यह नाम मुझे एकबारगी जँच गया था, और फिर दूसरा कोई नाम जेहन में आया ही नहीं। रामदरश जी की एक आलोचनापरक पुस्तक है, 'हिंदी उपन्यास : एक अंतर्यात्रा'। मुझे पुस्तक का नाम इतना सुंदर और अर्थपूर्ण लगा कि मन में आया, मैं भी तो रामदरश जी को समझने की यात्रा पर हूँ। तो फिर पुस्तक का नाम 'रामदरश मिश : एक अंतर्यात्रा' क्यों नहीं हो सकता? जाहिर है, इसके बाद पुस्तक के लिए कोई सही नाम ढूँढ़ने की सारी कोशिशें रुक गईं, और यही नाम फाइनल हो गया। इसे मित्रों और अन्य साहित्यिकों ने भी बहुत पसंद किया।

यहीं प्रसंगवश इस बात की चर्चा की जा सकती है कि रामदरश जी की किताबों के नाम बहुत सुंदर और सुरुचिपूर्ण हैं। लीक से हटकर भी। लेखक रामदरश ऊपर से चाहे जितने सादा लगते हों, पर उनके भीतर कितनी गहरी कलादृष्टि और सौंदर्य चेतना

है, इसे उनकी पुस्तकों के नामों से ही जाना जा सकता है। उनके उपन्यासों की बात की जाए तो 'पानी के प्राचीर', 'जल टूटता हुआ' और 'अपने लोग' बहुत खूबसूरत नाम हैं। ऐसे ही उनकी कहानियों के नाम 'वसंत का एक दिन', 'आज का दिन भी' और 'फिर कब आएँगे' मुझे बहुत आकर्षक लगते हैं। और कविता-संकलनों के नामों की तो बात ही क्या की जाए। 'पथ के गीत, बैरंग-बेनाम चिट्ठियाँ, पक गई है धूप, कंधे पर सूरज, दिन एक नदी बन गया, जुलूस कहाँ जा रहा है, बारिश में भीगते बच्चे, ऐसे में जब कभी, आम के पत्ते' ये सभी एक से बढ़कर एक सुंदर और मानीखेज नाम हैं।

रामदरश जी की अन्य विधाओं की पुस्तकों के नाम भी मन मोहते हैं। उनकी संस्मरणों की पुस्तक का नाम है, 'स्मृतियों के छंद'। ललित निबंधों की पुस्तक का नाम है, 'कितने बजे हैं', यात्रा-वृत्तांत की पुस्तकों के नाम हैं, 'तना हुआ इंद्रधनुष' और 'पड़ोस की खुशबू'। रामदरश जी की आत्मकथा का नाम 'सहचर है समय' भी मुझे बहुत लुभाता है। इसमें एक धीरता और स्वाभाविक गांभीर्य है, जो स्वयं रामदरश जी के व्यक्तित्व में भी है। इस आत्मकथा के अलग-अलग खंडों के नाम भी इतने ही सुंदर और अर्थ-व्यंजक हैं। जरा एक नजर डालें— 'जहाँ मैं खड़ा हूँ, रोशनी की पगडंडियाँ, टूटते-बनते दिन, उत्तर कथा, फुरसत के दिन।' ये वाकई ऐसे नाम हैं, जिनमें अलग-अलग दौर के रामदरश जी के संवेदनापूरित चेहरे अपनी पूरी धज के साथ झाँकते नजर आते हैं।

ऐसे ही एक लेखक, एक बड़े साहित्यकार के रूप में रामदरश मिश्र का जीवन बहुत सुंदर है। हमारी आदरणीया भाभी सरस्वती जी सही मायने में उनकी सहधर्मिणी हैं। उनके सुख-दुख और संघर्षों की हमसफर भी। पत्नी को जितना मान-सम्मान रामदरश जी ने दिया है, वैसा आदर देने वाले कितने साहित्यकार हमारे समय में हैं? यहाँ रामदरश जी का कद मुझे बहुत ऊँचा लगता है। हमारे दौर में शायद ही कोई साहित्यकार हो, जिसे उनकी बराबरी पर रखा जा सके।

मुझे याद है कि जिन दिनों मैं रामदरश जी की आत्मकथा पढ़ रहा था, उसका एक बहुत गहरा सम्मोहन मुझ पर तारी हो गया था। वह आनंद जहाँ-तहाँ छलकता रहता था। पर जहाँ कहीं मैं मिश्र जी की आत्मकथा की चर्चा करता, लोग बड़े व्यंग्य से मेरी ओर देखते। फिर धीरे से हँसते हुए कह भी देते कि-'मनु जी, ऐसा लेखक भला क्या लिखेगा, जिसने सिवा अपनी पत्नी के, किसी से प्रेम न किया हो? न उन्होंने कभी शराब पी और न इश्क किया। तो उनके पास ऐसा लिखने को है ही क्या, जिसे कोई पढ़ना चाहे!'

मैं भला इस बात का क्या जवाब देता? मैं खुद ऐसा ही था। न कभी एक बूँद शराब की चखी, और न कभी मेरा प्रेम यहाँ-वहाँ बहका किया। पत्नी से मेरा प्रेम पति-पत्नी वाला कम, एक अनन्य दोस्ती वाला ही ज्यादा है, और यही सुख मुझे अंदर-बाहर से भरता रहता है। सो उन साहित्यिकों के व्यंग्य-वचनों का जवाब देने के बजाय मैं अकसर चुप हो जाता। पर आज देखता हूँ, अपने दौर में तमाम दंद-फंदों के जरिए नाम चमकाने वाले ऐसे मजावादी लेखक आज कहीं नहीं हैं। कोई उनका नामलेवा भी नहीं। दूसरी ओर सहज पथ पर चलते साहित्यकार रामदरश मिश्र का लेखक आज अपने पूरे कद के साथ सामने आया, तो पता चलता है कि एक बड़ा लेखक कैसा होता है। रामदरश जी की आदमकद शख्सियत के आगे अपने-अपने दौर में तालियाँ पिटवाने वाले तमाम चिकने-चतुर सूरमाओं को बड़ी बेचारगी से समय की बाढ़ में बहते देखता हूँ, तो उनकी वे फब्तियाँ, वे व्यंग्योक्तियाँ मुझे याद आती हैं। उनसे रामदरश जी का तो कुछ बिगड़ा नहीं, पर जिन्होंने ऐसी फब्तियों के छींटे इस सीधे, सहज लेखक पर डाले, वे खुद कितने छिछले थे, यह जरूर खुद-ब-खुद प्रकट हो गया।

आज के दौर में भी रामदरश जी का परिवार एक भरा-पूरा सामूहिक परिवार है। उनके बेटे-बेटियाँ, बहुएँ, बच्चे सभी इस घर-परिवार को आनंद से भरते हैं। रामदरश जी ने सिर्फ अच्छा लिखा ही नहीं है, बल्कि एक सुंदर घर भी बनाया है, जिसमें सादगी के साथ-साथ हिंदुस्तानियत की गंध है। और इसीलिए वह घर बार-बार हमें बुलाता है। पुकार-पुकारकर बुलाता है। वहाँ जाकर हमें एक अलग तरह की शांति और शीतलता मिलती है, इसलिए कि वह सच ही में एक साहित्यकार का घर है। और इसके साथ ही वे घर में मिलने आने-जाने वालों से, फिर चाहे वे एकदम उदीयमान लेखक ही क्यों न हों, बड़े प्रेम से मिलते हैं और उन पर अपनी विद्वत्ता और बड़प्पन का कोई बोझ नहीं डालते। इसके बजाय जो भी मिला, उससे सुख-दुख का हाल वे लेते हैं, दुख में सीझते, सुख में खुश होते हैं, और हर किसी को आगे बढ़ने और अच्छा लिखने के लिए प्रोत्साहित करते हैं।

इसके साथ-साथ उनकी कलम भी निरंतर चलती रहती है। जो

भी मन में आया, वह रामदरश जी पूरे मन से लिखते हैं। कुछ और नहीं तो डायरी लेखन और संस्मरण, ये दो आत्मीयता भरी विधाएँ तो हैं ही, जिनमें उनका मन आजकल बहुत बहता है। चाहे थोड़ा लिखें या अधिक, पर कुछ न कुछ लिखना रामदरश जी को प्रिय है। डायरी लेखन और संस्मरण अपेक्षाकृत खुली विधाएँ हैं, जिन्हें साधने में विशेष प्रयत्न नहीं करना पड़ता। इसलिए इन दो विधाओं में वे निरंतर ही कुछ न कुछ लिखते हैं। यह बात मुझे बहुत चकित करती है कि रामदरश जी ने न सिर्फ अपने से बड़ों और समकालीनों, बल्कि जो उनसे बहुत छोटे हैं, शिष्य सरीखे हैं, उन पर भी बड़ी रुचि से लिखा है। हिंदी में ऐसा साहित्यकार कोई और है, मुझे याद नहीं पड़ता। ऐसा ही एक प्रीतिकर संस्मरण रामदरश जी ने मुझ पर भी लिखा है, और उसमें उनका प्रेम जिस तरह बहता है, उसकी याद ही मुझे कृतज्ञता से भर देती है।

मुझ पर केंद्रित 'सृजन मूल्यांकन' पत्रिका के विशेषांक में वह पाठकों के सामने आया, तो सभी ने उसे जी भरकर सराहा। कहना न होगा कि उस विशेषांक के जिन लेखों और संस्मरणों की सर्वाधिक चर्चा हुई, उनमें रामदरश जी का यह सुंदर संस्मरण भी है। इसलिए कि वे सिर्फ लिखने के लिए नहीं लिखते, बल्कि जो भी लिखते हैं, उसमें अपने आप को समूचा उड़ेल देते हैं। वे दूसरों की तरह एक खास दूरी रखकर मिलने वाले साहित्यकारों में से नहीं हैं, बल्कि हृदय के सारे कपाट खोलकर बड़े प्यार से मिलते हैं, और जब मिलते हैं, तो समय जैसे थम जाता है। यही बात उनके लिखे संस्मरणों के बारे में कही जा सकती है, जिन्हें वे लिखते नहीं है, बल्कि साथ-साथ बहते हैं, और इस बहने के दौरान संस्मरण तो मानो खुद-ब-खुद लिखे जाते हैं।

हाँ, उनके इधर लिखे की बात कह रहा हूँ तो उनकी एक गजल याद आती है। इस गजल में रामदरश जी ने बड़ी खूबसूरती से अपने मन की कुछ बातें कही हैं। बहुतों को इस बात पर हैरानी होती है कि भला इस वय में भी रामदरश जी निरंतर कैसे लिख पाते हैं। इसका उत्तर भी उन्होंने इस गजल में गूँथ दिया है। असल में, मन में कुछ कहने के लिए हो, तो फिर राह भी निकल ही आती है। पर मन में संवेदना ही न हो, दूसरों के सुख-दुख के साथ कोई भावनात्मक लगाव न हो, तो आप न लिखने के कारण पर बहसें भले ही करते रहें, पर जब लिखने की बारी आती है, तो आईना आपको बता देता है कि आप कहाँ खड़े हैं। खुद रामदरश जी की यह गजल भी ऐसे लोगों को आईना दिखाने का काम करती है—

चाहता हूँ कुछ लिखूँ, पर कुछ निकलता ही नहीं है,
दोस्त, भीतर आपके कोई विकलता ही नहीं है!
तब लिखेंगे आप जब भीतर कहीं जीवन बजेगा,
दूसरों के सुख-दुखों से आपका होना सजेगा।
टूट जाते एक साबुत रोशनी की खोज में जो,
जानते हैं जिंदगी केवल सफलता ही नहीं है!

बगैर कठोर शब्दों का इस्तेमाल किए, इतनी सीधी और खरी बात कैसे कही जा सकती है, यह हमें रामदरश जी से सीखना चाहिए। रामदरश जी मेरे गुरु हैं। उन्होंने कभी पढ़ाया नहीं, पर मेरे वे ऐसे गुरु हैं, जिन्होंने मेरे अंत:करण को प्रकाशित किया है, और मैं अपने समूचे व्यक्तित्व पर उनकी अनुराग भरी छाया महसूस करता हूँ। आज इस अवस्था में भी, वे गुरु की तरह मेरे पथ को प्रकाशित करते, और जहाँ कहीं झाड़-झंखाड़ है, वहाँ भी रास्ता बनाते नजर आते हैं। कभी-कभी मैं सोचता हूँ, अगर संयोगवश दिल्ली आते ही रामदरश जी के बड़प्पन की स्नेह छाया को मैंने करीब से महसूस न किया होता, और उनके इतने निकट न आया होता, तो यकीनन मैं ऐसा न होता, जैसा आज हूँ। मुझे बनाने में जिन्होंने अपना बहुत कुछ खर्च किया, उनमें रामदरश जी भी हैं। अपने स्नेह से माँज-माँजकर उन्होंने मुझे उजला किया है। तब शायद इतना न समझ सका होऊँ, पर आज मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि उनके निकट आने पर मेरी फालतू अहम् की बहुत सारी केंचुलें छूटती गई हैं, और मैंने महसूस किया है, कि भीतर-बाहर से सरल होने का सुख क्या होता। इसके आगे दुनिया के सारे सुख और बड़ी से बड़ी सफलताएँ भी पोची हैं।

रामदरश जी को मेरे सरीखे कुछ अटपट-लटपट से शिष्य को पाकर कितनी खुशी हुई या नहीं, कह नहीं सकता। क्योंकि मैं तो हर जगह खुद को नाकामयाब और मिसफिट ही पाता हूँ। कामयाबी की कोई खास चाह भी मुझे नहीं है और न उसके लिए कोई बड़ी इज्जत मेरे मन में है। पर मुझे इस बात का गर्व और गौरव जरूर महसूस होता है कि हाँ, मैं रामदरश मिश्र का शिष्य हूँ, और यह बात मेरे भीतर अजब सी हिम्मत और हौसला भर देती है। सच कहूँ तो मैं रामदरश जी का शिष्य हूँ, यह अहसास होते ही, मेरी झुकी हुई पीठ तन जाती है और मैं महसूस करता हूँ, जिंदगी के इस कठिन दौर में भी मैं सीधी चाल, और निष्कंप कदमों से चलना सीख रहा हूँ। और यह सीख लूँ तो मेरी जिंदगी की शायद इससे बड़ी चरितार्थता भी

कोई और न होगी।

कबीर ने गुरु की उपमा कुम्हार से दी है। इससे सुंदर उपमा गुरु के लिए शायद कुछ और हो ही नहीं सकती। जैसे कुम्हार बाहर से कच्चे घड़े पर थाप लगाता है, लेकिन भीतर ही भीतर उसे सहारा भी देता है, वैसे ही गुरु भी शिष्य के व्यक्तित्व का निर्माण करता है। जितना सुंदर उसका स्नेह है, वैसी ही उसकी सख्ती और कठोरता भी। मुझे याद है कि 'कविता और कविता के बीच' कविता-संग्रह पर हुई गोष्ठी में रामदरश जी ने मेरी कविताओं की बहुत कड़ी आलोचना की थी। इसी संग्रह में शामिल देवेंद्र जी की कविताएँ उन्हें अच्छी लगी थीं, पर मेरी कविताएँ उन्हें पसंद नहीं आई थीं। उनकी अतिरिक्त तुर्शी और ज्यादा लाउड होना उन्हें खल रहा था। पर मेरा संग्रह 'छूटता हुआ घर' आया तो उस पर रामदरश जी की एक बहुत प्यारी सी चिट्ठी मुझे मिली थी, जिसमें उन्होंने मेरी कविताओं की तारीफ करते हुए, इस बात की खुशी प्रकट की थी कि मैंने अपनी कविता की धारा को सार्थक मोड़ दिया है। इस कारण ये कविताएँ अपने गहरे संवेदन से पाठक के हृदय को छू लेती हैं। बाद में 'छूटता हुआ घर' संग्रह पर ही मुझे प्रथम गिरिजाकुमार माथुर स्मृति पुरस्कार मिला। इसके निर्णायकों में जगदीश चतुर्वेदी और अजितकुमार के साथ रामदरश जी भी थे। और उन्होंने ही फोन पर मुझे इस पुरस्कार की सूचना भी दी थी।

सच पूछिए तो रामदरश जी की कठोर आलोचना हो या सराहने वाला कोमल, मृदुल रूप, मेरे लिए तो ये दोनों ही आत्मीय हैं, मूल्यवान भी। मेरे मन में उन दोनों के लिए ही आदर का भाव है। आज सोचता हूँ कि 'कविता और कविता के बीच' संकलन पर हुई संगोष्ठी में बोलते हुए जब उन्होंने मेरी कविताओं की कठोर आलोचना की थी, तब मैं छिटककर उनसे दूर चला गया होता तो कितना कुछ खो देता। कितने ही दुर्लभ सुख-आनंद के पलों और आत्मिक उपलब्धियों से दूर ही रहता। पर मैं विनम्र होकर कुछ सीखने, और सच में कुछ पाने की चाह से रामदरश जी के निकट गया, तो उन्होंने मेरी झोली सच्चे मोती और बेशकीमती मणियों से भर दी।

यह काम कोई और नहीं, एक सच्चा गुरु ही कर सकता है। तो फिर रामदरश जी जो हैं, जिस तरह मेरे और मुझ सरीखे बहुत सारे लेखकों के दिल में वे विराजते हैं, और कहीं न कहीं अंदर से हमें भरते रहते हैं, उसे मैं कैसे भूल सकता हूँ? क्योंकि उसे भलने का मतलब तो जो कुछ उनसे सीखा, उस सबसे वंचित हो जाना ही होगा न! पर मैं तो यह सोच भी नहीं सकता।

वैसे इस समय जब रामदरश जी अपनी उम्र के आखिरी चरण में हैं, और अब भी अपनी धुन में जी रहे हैं, लिख और पढ़ रहे हैं, मैं कई बार उन्हें टटोलने की कोशिश करता हूँ। उन्हें बहुत देर से वे चीजें मिलीं, जो बहुतों को शुरू-शुरू में और अनायास ही मिल गई थीं, तो क्या उन्हें साहित्य जगत से इस बात की शिकायत है? उनकी कृतियों का उचित मूल्यांकन भी नहीं हो सका, या बहुत देर से हुआ—क्या उनके मन में इस बात को लेकर कोई गिला-शिकवा है? विगत में नामी आलोचकों के साथ-साथ आंदोलन के रथ पर सवार तमाम फैशनेबल लोगों द्वारा भी उनकी उपेक्षा और अवमानना हुई। और कुछ ने तो चलताऊ जुमलों में लपेटकर, उन्हें फूँक में उड़ाने की कोशिश की। क्या इसका दर्द वे अब भी महसूस करते हैं?

पर मेरे लिए यह एक सुखद आश्चर्य की बात है कि रामदरश जी इस सबसे बहुत ऊपर उठ चुके हैं। हाँ, जो उनके निकट हैं, उनमें कोई कितना ही मामूली आदमी क्यों न हो, उसके प्रति एक भावनात्मक लगाव उन्हें हर वक्त तरंगित करता है। इस मैत्री और अपनत्व के सुख को वे अंदर तक महसूस करते हैं। और यहाँ तक कि अपने निकटस्थ मित्रों और आत्मीय जनों के लिए वे कृतज्ञता से भरे हुए जान पड़ते हैं। उनकी एक प्रगीतात्मक कविता उनकी इस भावस्थिति को बड़ी सुंदरता से अभिव्यक्त करती है। जरा आप भी पढ़ें इस कविता की ये पंक्तियाँ—

आभारी हूँ बहुत दोस्तो, मुझे तुम्हारा प्यार मिला,
सुख में, दुख में, हार-जीत में एक नहीं सौ बार मिला!

सावन गरजा, भादों बरसा, घिर-घिर आई अँधियारी,
कीचड़-काँदों से लथपथ हो, बोझ हुईं घड़ियाँ सारी।
तुम आए तो लगा कि कोई कातिक का त्यौहार मिला!

इतना लंबा सफर रहा, थे मोड़ भयानक राहों में,
ठोकर लगी, लड़खड़ाया, फिर गिरा तुम्हारी बाँहों में,
तुम थे तो मेरे पाँवों को छिन-छिनकर आधार मिला!

आया नहीं फरिश्ता कोई, मुझको कभी दुआ देने,
मैंने भी कब चाहा, दूँ इनको अपनी नौका खेने,
बहे हवा-से तुम, साँसों को सुंदर बंदनवार मिला!

हर पल लगता रहा कि तुम हो पास कहीं दाएँ-बाएँ,
तुम हो साथ सदा तो आवारा सुख-दुख आए-जाए,

मृत्यु-गंध से भरे समय में जीवन का स्वीकार मिला!

ये ऐसी पंक्तियाँ हैं, जिनमें हृदय की संवेदना छल-छल कर रही है। इसलिए इन्हें पढ़ते हुए कभी आँखें भीगती हैं तो कभी अनायास अपने समय के इस बड़े कवि के लिए आदर से भरकर, दोनों हाथ जुड़ जाते हैं, और मैं थोड़ी देर के लिए एकदम चुप और निःशब्द खड़ा रह जाता हूँ। हम सबके अपने और ऐसे प्यारे रामदरश जी ने निश्चय ही दिल्ली में एक लंबा और समृद्ध जीवन जिया है और गाँव के आदमी के ठाट और स्वाभिमान के साथ दिल्ली को जिया है। लिहाजा उनके पास अनुभवों की कोई कमी नहीं है। इस पकी हुई उम्र में भी, वे जिस विधा को हाथ लगाते हैं, उसमें कुछ न कुछ नयापन ले आते हैं। कोई भी बड़ी और समर्थ प्रतिभा अपने स्पर्श से चीजों को नया कर देती है। रामदरश जी के बारे में भी यह काफी हद तक सही है। वे जीवन के कवि-कथाकार हैं, इसलिए चुके नहीं हैं। जीवन के कवि और कथाकार कभी चुकते नहीं। चुकते तो वे फैशनपरस्त कलावादी हैं, जिनका शिल्प कुछ आगे जाकर दिशाभ्रम का शिकार हो, भौचंक्का और भोथरा हो जाता है।

बड़ी ही गहरी संवेदना से थरथराती रामदरश जी की एक कविता अकसर मुझे याद आती है, 'छोड़ जाऊँगा'। इसे पढ़ें तो पता चलता है कि रामदरश जी जीवन की इस अवस्था में करीब-करीब जीवन-मुक्ति की सी अवस्था में पहुँच गए हैं। इसीलिए भीतर की सारी उथल-पुथल से मुक्ति पाकर, अब वे बड़ी निस्पृहता के साथ कह सकते हैं कि—

कुछ कविता, कुछ कहानियाँ, कुछ विचार
जिनमें होंगे
कुछ प्यार के फूल
कुछ तुम्हारे उसके दर्द की कथाएँ
कुछ समय-चिंताएँ
मेरे जाने के बाद ये मेरे नहीं होंगे
मै कहाँ जाऊँगा, किधर जाऊँगा
लौटकर आऊँगा कि नहीं
कुछ पता नहीं . . .

तुम नम्र होकर इनके पास जाओगे
इनसे बोलोगे, बतियाओगे
तो तुम्हें लगेगा, ये सब तुम्हारे ही हैं
तुम्ही में धीरे-धीरे उतर रहे हैं
और तुम्हारे अनजाने ही तुम्हें
भीतर से भर रहे हैं।
मेरा क्या
भर्त्सना हो या जय-जयकार,
कोई मुझ तक नहीं पहुँचेगी...

हालाँकि जो सहृदय पाठक केवल शब्दों को ही कविता नहीं मानते, बल्कि शब्द और शब्द तथा पंक्ति और पंक्ति के बीच के खाली स्थान को भी पढ़ना जानते हैं, उनके लिए यह बात अबूझ न होगी कि रामदरश जी की इस निस्पृहता के भीतर बहुत गहरी रागात्मकता की एक नदी बह रही है। वे कितना भी चाहें, उससे मुक्त हो ही नहीं सकते। रामदरश जी ने पूरी शिद्दत से इस दुनिया को चाहा है, जी भरकर प्यार किया है, और शायद सपने में भी इससे परे जाने की बात नहीं सोच सकते। वे तो इस दुनिया के हैं, इसकी धूल, मिट्टी, खेत, नदी, रेत और कछारों से जुड़े हैं, इसलिए हमेशा-हमेशा इस दुनिया में ही रहेंगे। जिस कवि-कथाकार ने अपने अस्तित्व का कण-कण, रेशा-रेशा इस दुनिया को दे दिया हो, वह भला शतायु होने के दुर्लभ सुख-आनंद के पलों में अपनों से दूर जा भी कहाँ सकता है? तो रामदरश जी हमेशा से इस दुनिया के थे और इस दुनिया के ही रहेंगे। यही उनकी कविता और सर्जना की चरम सार्थकता भी होगी।

हाँ, हम सब भी, जो रामदरश जी को इस कदर सक्रिय और कर्मलीन रहते हुए, धीरे-धीरे शतायु होने के करीब जाते देख रहे हैं, कम सौभाग्यशाली नहीं हैं। यह हमारे लिए गौरव ही है कि हमने अपने समय के एक बड़े कवि-कथाकार को धीरे-धीरे किसी फूल की तरह खिलते-खुलते और चारों ओर अपनी गंध बिखराते देखा है। और मैं तो अपने आप को इसलिए भी बहुत सौभाग्यशाली मानता हूँ कि मैंने उन्हें बहुत निकट से देखा है, उनसे खुलकर बातें की हैं। उनसे बहुत कुछ सीखा और पाया भी है। एक बड़े कद के संवेदनापूरित गुरु की तरह वे मेरे भीतर भी हैं, बाहर भी। यह सुख क्या मैं कभी शब्दों में बाँध सकूँगा? ईश्वर ने चाहा तो रामदरश जी इसी तरह बरसोंबरस तक हमारे बीच रहेंगे, और हम सबके प्रेरणा संबल बने रहेंगे। फिलहाल तो आप और हम यही कामना कर सकते हैं कि वे स्वस्थ रहें, सक्रिय रहें, और निरंतर लिखते रहें। उन्हें देखकर लगता है, हिंदी साहित्य में प्रेम और अपनत्व की धारा मानो साकार हो उठी हो!

545, सेक्टर-29,
फरीदाबाद-121008 (हरियाणा)
मो. 09810602327

घर के बुजुर्ग जैसा : रामदरश

– राजेश श्रीवास्तव

शिक्षा – एम.ए., पीएच.डी, डी.लिट्।
रचनाएँ – चौदह पुस्तकें प्रकाशित।
सम्मान – वागीश्वरी सम्मान सहित अनेक सम्मान।
विशेष – रामायण केन्द्र भोपाल के निदेशक।

उनसे पहली बार मिला तो वे बिल्कुल अपने से लगे। घर के बुर्जुग जैसा अपनापन। कोई भी देखे तो उसे अपने से लगें। उनकी आँखों में एक अजब सी चमक थी। उस समय वे चश्मा नहीं लगाए थे। लगाए तो भी क्या ही फर्क पड़ता। घरेलू कपड़ों में घर की सामान्य साधारण सी अस्त–व्यस्त बैठक और हम भी तीन–चार जने छोटे से हालनुमा कमरे में एक बड़े लेखक से मिलने का सुखद गर्व करते हुए।

बात लगभग सैंतीस वर्ष पुरानी है और मैंने उन्हें बुजुर्ग कहा। बुजुर्ग तो वे अब भी कहाँ हैं–निन्यानवे वर्ष के युवा के रूप में मैं अब भी उनकी वही मुस्कान देखने को आतुर हूँ। किन्तु सचमुच वे उस समय भी बुजुर्ग की श्रेणी में ही थे। वे दिल्ली विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग में प्राध्यापक थे और सैकड़ों–हजारों शिष्यों के दुलारे इतने आदरणीय कि उनके समकालीन कई लोग उन्हें चरण छूकर प्रणाम करते थे।

लगभग एक घण्टे तक मैं उस पहली मुलाकात में उनके सामने था। यह बात अलग है कि उस पूरे समय में उन्होंने मुझे केवल चार–छः बार ही देखा होगा। पहले आधा घण्टे तो परिचय भी न हुआ था। बाद में चार–छः–आठ–दस वाक्यों पर चर्चा हुई जो न मेरे मतलब की थी और न ही उनके मतलब की। लेकिन मेरे लिए उस समय उनसे मिल पाना एक बड़ी उपलब्धि ही था क्योंकि सत्संग के रास्ते बन रहे थे।

सिलसिले से कहूँ तो कहन और साफ होगी। उन दिनों में सागर विश्वविद्यालय से पी.एच.डी. कर रहा था। नागार्जुन और रेणु के आंचलिक उपन्यासों पर। फणीश्वरनाथ रेणु के परती परी कथा और मेला आँचल मेरे प्रिय उपन्यास थे। विभागाध्यक्ष कांतिकुमार जैन ने मुझे यह विषय दिया। वे चाहते थे कि नागार्जुन के बलचनमा और बाबा बटेसरनाथ जैसे उपन्यासों को भी चर्चा में लाया जाए। फणीश्वरनाथ रेणु की दूसरी पत्नी लतिका रेणु और पुत्र पराग जी से खूब पत्राचार रहा। इधर बाबा नागार्जुन के तीनों पुत्रों शोभाकांत, श्रीकांत और श्यामाकांत से भी अच्छा परिचय रहा।

नागार्जुन प्रायः दरभंगा क्षेत्र में ही बने रहते थे। हजारी बाग में शोभाकांत प्रोफेसर थे। एक दिन ज्ञात हुआ कि बाबा नागार्जुन दिल्ली में अपने मँझले पुत्र श्रीकांत के घर ठहरे हुए हैं। बस उनसे मिलने चल दिया। दिल्ली में इस बार विजयेन्द्र स्नातक जी और रामदरश मिश्र जी से मिलने की धुन भी सवार थी। बाबा ने मेरा इन्टरव्यू ले डाला–बोले कितने उपन्यास पढ़े हो। मैंने कहा–आपके और रेणु जी के अब तक के सारे। बोले नहीं, इसके अलावा। मैंने कोई दर्जन भर उपन्यासकारों के नाम गिना दिये। शैलेश मटियानी, विवेकी राय का नाम विशेष रूप से लिया। वे प्रसन्न हुए–बोले रामदरश मिश्र के उपन्यास भी देख लो। मैं तो उनसे मिलने की तुक में ही था।

तभी मेरे भाग्य से सुखद संयोग हुआ। बाबा से मिलने उसी समय हरिपाल त्यागी चित्रकार और महेश दर्पण सारिका के उपसंपादक का आना हुआ। महेश दर्पण मुझे जानते थे। उन दिनों सारिका में मेरी बहुत कहानी प्रकाशित हुई थीं। उनके साथ ही रामदरश के घर जाना हुआ। साथ में दो लोग और भी थे। बातों–बातों में मालूम चला कि वे रामदरश जी के पास ही जायेंगे तो मैंने उनका साथ पकड़ लिया।

तो पहली मुलाकात के अंतिम पाँच मिनटों में जब उन्हें पता चला कि मैं बाबा पर शोध कर रहा हूँ और उनसे मिलकर ही आ रहा हूँ तो वे बड़े प्रसन्न हुए मेरे लिए आशीर्वाद जैसा ही था। उनसे पुनः मिलने के लिए मुझे कुछ तैयारी करनी थी। किन्तु समय कम था इसलिए अगले दिन आने की अनुमति माँग ली।

एक कोई महाविद्यालय (नाम याद नहीं आ रहा) के पुस्तकालय से कुछ पुस्तकों के नाम और लेख आदि की जानकारी मिलने से मन संतुष्ट हुआ किन्तु आंचलिक कथाकार की तलाश अभी बाकी थी। उस दिन विजयेन्द्र स्नातक जी से मिला और अवधनारायण मुद्गल जी से भी। सारिका के दफ्तर में मेरी स्थिति एक छोटे नए कहानीकार की थी किन्तु मैं अपने शोधार्थीपन को पैना बनाकर रामदरश जी के सम्मुख दुबारा जाना चाहता था।

प्रात: नौ बजे ही मैं उनके दरवाजे पर था। कुछ देर बाहर प्रतीक्षा करनी पड़ी। कुछ देर खड़ा भी रहा किन्तु जब उन्होंने अन्दर बुलाया तो वही अपनापन पाया। घर के बुजुर्गों जैसा। वे सचमुच बुजुर्ग जैसे ही थे किन्तु ठसकदार आवाज और आँखों में प्यार। उनके बारे में जो जान पाया था वह बहुत कम था। गोरखपुर के आसपास किसी ग्रामीण परिवेश में उनकी शिक्षा हुई फिर बनारस चले आए जहाँ मैट्रिक से लेकर पी.एच.डी. तक पढ़ाई की। बाद में वे गुजरात में प्रोफेसर हुए और 1964 में दिल्ली विश्वविद्यालय आ गए। फिर वे दिल्ली के ही हो गए। उनकी एक कविता किसी पत्रिका में पढ़ी थी–

हरी-हरी छाया वन में लहरा रही
धरती नभ में उड़ी-उड़ी जा रही
झुके हुए धन बहे जा रहे व्योम में
झम-झम रस-बुँदिया में धरा नहा रही।
धूप लजीली उड़ी जा रही पाल सी
गरज रहे सागर से छाया वाले बदरा
उमड़ रही पुरवैया कुंतल जाल सी
लहर रहे अम्बर में काले-काले बदरा।।
बस यही परिचय था तब तक।

उनसे कही सुनी बातें ठीक-ठीक याद नहीं किंतु वे मुझे कविताओं के बारे में कुछ समझाते रहे। दरअसल वे मुझे कविता का शोधार्थी समझ रहे थे। नागार्जुन भी मूलत: कवि ही थे। नये शोधार्थियों को निष्कर्ष की बहुत जल्दबाजी होती है। वे आनन-फानन में निष्कर्ष घोषित करना चाहते हैं। वास्तव में रचना यात्रा अंत तक निर्णय की ही प्रतीक्षा में होती है। मैंने कभी बाबा से पूछ लिया था आप आस्तिक हो या नास्तिक उन्होंने जो उत्तर दिया वह अद्भुत था। बोले आस्तिकता और नास्तिकता हमारे अंदर के भाव हैं। दोनों होते हैं। हर समय होते हैं। देखने वाले को जब जैसा दिखे। यह निर्णय स्वयं के लिए कभी महत्त्वपूर्ण नहीं होता।

जो काम दूसरों को दिखाने के लिए ही दिए जाते हैं वे सब आपका परिचय नहीं हैं। आपका परिचय वह है जो आप अपने आचरण में लाते हैं, जिससे आपका व्यक्तित्व बनता है। (मैं आज तक उन सूत्रवाक्यों की व्याख्या करते रहता हूँ। आचार्य शब्द ही आचरण धर्मिता का प्रतीक है। ज्ञानार्जन कर आत्मगर्वित रहने वाले विद्वानों के मुख पर मुस्कान भले ही रहती हो किन्तु उसकी सार्थकता तभी है जब वह ज्ञान सहज अभिव्यक्ति के साथ सब तक पहुँचे। जिसे पढ़कर देखकर समझकर या और न सही तो मिलकर भी आपस में साझा किया जा सके। रामदरश मिश्र ऐसे ही आचार्य हैं जिनका व्यक्तित्व उनकी आधी से अधिक साहित्य यात्रा का परिचय सहज ही देता है।

रामदरश मिश्र की सहजता का मैं आज तक प्रशंसक हूँ। सहजता कहें तो सरलता, सादगी। कोई बनावट नहीं। सादे जीवन की सुन्दरता सबसे निराली है। बड़े आचार्य अपने व्यवहार और आचरण से अधिक प्रसिद्ध हुए हैं। भले उनकी कलाओं के प्रशंसक हजार हों किन्तु कोई आपके व्यवहार की सार्वजनिक प्रशंसा करे तो वही सच्ची लोकप्रियता है। उन्होंने कविता के इतिहास तो रचे ही थे। उपन्यासों के क्षेत्र में भी उनका दखल खूब हुआ। मैं आंचलिक उपन्यासों पर काम कर रहा था। आंचलिक उपन्यासकारों की परिभाषाएँ आये दिन बदल रहीं थीं। किसे आंचलिक माने किसे न मानें। मन्नन द्विवेदी का उपन्यास मेरी पहली पसंद थी और जिसे मैंने अपने शोध प्रबंध में पहला आंचलिक उपन्यास माना भी। रामदरश जी के उस समय तक प्रकाशित और अब तक प्रकाशित कुल उपन्यासों की अन्तसचेतना पर विचार करें तो कुछ ने मुझे थोड़ा प्रभावित किया है। रेणु ने मैला आँचल में आंचलिकता की जो पृष्ठभूमि तैयार की थी लगभग उसके आसपास रामदरश जी पानी के प्राचीर, टूटता हुआ जल, सूखता हुआ तालाब, आकाश की छत आदि जैस अजब नाम वाले उपन्यास देखने को मिले।

वे अपने उपन्यासों के नाम बड़े ही रुचिपूर्ण और तरह के रखते हैं। बिना दरवाजे का मकान, थकी हुई सुबह, बीस बरस, बचपन भास्कर का, एक था कलाकार, एक बचपन यह भी। आदि आदि। ललित निबंधों में वे हजारी प्रसाद द्विवेदी के शिष्य ही थे। बबूल और कैप्टस, कितने बजे हैं, छोटे-छोटे सुख पुस्तकें मेरे पढ़ने में आई। यात्रा वृत्तांत, डायरी संस्मरण, आलोचना के संदर्भित उनकी बहुत सी पुस्तकें थीं। कविता की भी बहुत। गजल में भी। इतनी पुस्तकें कि लगता था कि वे निरन्तर लिखते ही रहते हों बस।

लेकिन ये पुस्तकें लोगों तक पहुँची, शोधार्थियों तक पहुँची। उनके एक शिष्य श्री रघुवीर चौधरी जी से अहमदाबाद में मेरा मिलना हुआ था। रघुवीर चौधरी ज्ञान पीठ पुरस्कार प्राप्त लेखक थे। उन्होंने रामदरश जी के मजेदार प्रसंग सुनाए। उनकी पत्नी का नाम सरस्वती है। अभी जब उनको सरस्वती पुरस्कार मिला तो उनके दाम्पत्य माधुर्य के किस्से भी याद आ गए। उनका एक चर्चित शेर स्मरण है, जिसे कहीं-कहीं प्रयोग भी किया जा सकता है।

जहाँ आप पहुँचे छलाँगें लगाकर।
वहाँ मैं भी पहुँचा मगर धीरे-धीरे।।

कभी किसी साहित्यकार के साथ यूँ भी होता है कि वह अपने दीर्घ जीवन के लम्बी साहित्यिक यात्राओं के बाद भी अनुभव करता है कि बहुत कुछ है जो कहने से छूट गया है। गद्य और पद्य की समस्त विधाओं में वह बात नहीं आ पाई है जो उसके जीवन यात्रा का आन्तरिक अनुभव है। तब वह आत्मकथा लिखता है। इसमें छूट होती है। मन की सारी बातें कहने की। बहुत कम बड़े लोग हुए हैं जो आत्मकथा लिखने का साहस कर पाते हैं। आत्मगर्वित कथाएँ सदैव साहित्य भंडार में बोझ ही हुई हैं किन्तु समाज की मनोदशा में विचरते हुए अपने ज्ञान का निश्छल प्रसार साहित्यजगत को गौरवान्वित करता आया है।

रामदरश मिश्र की आत्मकथात्मक दो पुस्तकें हैं-सहचर है समय और फुरसत के दिन। इन पुस्तकों में पाठक अपने आपको उपस्थित पाता है, यही महत्त्वपूर्ण भी है। वे लिखते हैं-'कोई हड़बड़ी नहीं थी, कोई दबाब नहीं था पड़ाई का कोई अलग से वातावरण नहीं बनाया गया था। इसलिये मैं माँ के साथ कौड़ा तापने की सी सहजता से उसके साथ 'क' लिखने लगा। माँ को लगा, जैसे मेरे भीतर बँधी हुई कोई गाँठ खुल रही है। उसके स्पर्श की आँच से जड़ता धीरे-धीरे पिघल रही है और भीतर सोई हुई या अवरुद्ध चेतना अपनी उष्मा फेंक रही है। माँ बहुत विश्वास से मुस्कुराई थी और पता नहीं क्या चमत्कार हुआ कि सात-आठ दिन में पूरी वर्णमाला में सीख गया।'

इतने विवरण की आवश्यकता के पीछे भी उनका एक स्पष्ट दृष्टिकोण था। शोधार्थी प्राय: व्यक्तित्व की चिन्ता करते हुए उनसे छोटी-छोटी बातें पूछा करते थे। बार-बार सबको अपना जीवन परिचय, अनुभव बताने की झंझट बचने के लिए ही सही आत्मकथा के रूप में रामदरश जी ने दो पुस्तकों भर लेखन किया।

आंचलिक उपन्यास की आलोचना में उन्होंने लिखा था कि उपन्यास का अर्थ है। कथा के माध्यम से व्यक्त होने वाला जीवन चित्र जो स्थान विशेष या स्थान सामान्य से सम्बद्ध होकर सर्वदेशीय मानव संवेदनाओं और मूल्यों की प्रतिष्ठा करें। किसी उपन्यास में दृष्टव्य जीवन अपनी कितनी सच्चाई मानवीयता और समग्रता के साथ व्यक्त हुआ है और यह अपनी संवेदना की गहराई तथा मानवीयता के कारण वृहत्तर मानव सत्य को कहाँ तक स्पर्श करता है।'

उनका पहला उपन्यास पानी के प्राचीर था। इसमें आंचलिकता की गहरी सुगबुगाहट देखने को मिलती है। गोरखपुर जिले की दो नदियाँ राप्ती और गौरा से घिरे एक अत्यन्त पिछले समाज की क्षेत्रीय चेतना को इसमें दर्शाया है। 1961 में यह उपन्यास प्रकाशित और चर्चित हुआ था कहगर अंचल के एक अभावग्रस्त ग्राम पांडेपुरवा की गरीबी और दरिद्रता को इतनी बारीकी सी अंकित किया गया है कि वहाँ की सामाजिक समस्याओं से इतर आंचलिक परिवेश की जीवंतता मुखर हो उठती है। मैला आँचल के नायक प्रशांत की ही तरह पानी के प्राचीर का नायक नीरू (निरंजन) अपने आशावादी व्यवहार से सबका हदय जीत लेता है।

'जल टूटता हुआ' भी उनका बहुरंगी उपन्यास है जो अंचल की गाथा को स्वतंत्रता पर्व से जोड़ता नकली स्वतंत्रता की कलई खोल देता है। कविता के स्वर सहज रूप से ऐसे प्रतीक, बिंब और प्रसंग के रूप में होते हैं कि वे कब, कहाँ से कविता प्रकट कर देंगे, आश्चर्य होता है। मेज, चाकू, चम्मच इन विषयों पर भी कविता लिखी जा सकती है। संवदेना इस कदर कि किताबें, चिट्ठियाँ, स्याही के धब्बे सभी कुछ जीवन की पूँजी के रूप में काव्य-धरोहर बन जाते हैं -

रात होते ही
शोर में डूबी पुस्तकें
आहिस्ता-आहिस्ता अपने पृष्ठ खोलने लगती है
न जाने कितने कितने स्वरों में बोलने लगती हैं
वे आपस में बतियाती हैं
कभी प्यार से झगड़ती हैं
कभी नदी बन जाती है, कभी पहाड़
कभी खेत, कभी खलिहान
कभी पेड़, कभी चिड़िया
कभी जेठ की दुपहरिया
कभी शिशिर की रात
कभी सावन की बदली
कभी वसंत की हवा

कभी पेट की आग
कभी आँख का पानी
कभी सागर पार से आती आवाजें
यहाँ की आवाजों से गले मिलती हैं
कभी अनंत दूरियों की कोख से उगती हुई
कुछ आवाजें आती हैं बच्चों की तरह
और आज के आँगन में खेलने लगती हैं
और देखते-देखते ये सभी कुछ
आपस में मिलकर आदमी में समा जाते हैं

और मुझे लगता है कि मैं सूखे काठ से एक समग्र जीवन की संवदना में बदल गई हूँ। प्रो. स्मिता मिश्रा रामदरश की बेटी हैं। वे भी दिल्ली विश्वविद्यालय में प्रोफेसर हैं। अपने पिता के सम्पूर्ण साहित्य को 14 खण्डों में सहेजने का सार्थक श्रम उन्होंने किया है। वे पत्रिकाओं की सम्पादक हैं और दूरदर्शन में स्पोर्ट्स की कामेन्ट्री भी करती हैं। लेकिन उनके व्यक्तित्व कृतित्व की चर्चा अलग से की जा सकती है। यहाँ उन्हें स्मरण करने का केवल इतना उद्देश्य है कि पिता रामदरश मिश्र के जीवन भर के संचित लेखन को प्रकाश में लाने का सम्पादकीय दायित्व स्मिता मिश्रा ने निभाया है।

यही नहीं कोविद के संकटकाल में वे उनकी सहायक बनकर मीडिया माध्यमों से दीन दुनिया के समाचारों से उनको अवगत कराती रहीं। वृद्धावस्था के अपने कष्ट होते हैं। पढ़ना-लिखना भले छूट गया हो किन्तु उनकी आँखों की चमक से कविता अब भी निर्झर होती है। वे मुस्कराते हैं। कहते हैं-मुझमें अभी भी एक नादान बच्चा है जो मुझे बूढ़ा नहीं होने देता। 2021 में उनकी कृति-'मैं तो यहाँ हूँ' कृति को सरस्वती सम्मान मिला है। हरिवंशराय बच्चन और गोविन्द मिश्र के बाद वे तीसरे साधन हैं, जिन्हें यह मान मिला है। सारे सम्मान उनको बहुत देर से मिले। साहित्य अकादमी, व्यास, शलाना सम्मान, भारत भारती सम्मान, विश्व हिन्दी सम्मान, शान ए हिन्दीं खिताब, साहित्य वाचस्पति, साहित्य शिरोमणि ऐसे दर्जनों। सब सन् 2000 के बाद ही मिले और अब सरस्वती सम्मान यह भी 97 वर्ष की आयु में 2021 में मिला। लेकिन मैं सोचता हूँ कि ये सम्मान उन्हें मिले ही क्यों? उनका नाम इन पुरस्कारों से बहुत ऊपर उठ चुका था। उन्होंने स्वयं कभी इन सम्मानों के बारे में विचार न किया होगा। उनके वक्तव्यों में प्राय: किसी सम्मान की चर्चा नहीं रहती। दूसरा यह भी कि जिन कृतियों के लिए सम्मान मिले उनका आपस में मेल भी कम ही दिखाई देता है। मानो आयोजकों ने विचार कर रखा हो कि उनकी अगली किसी पुस्तक पर उन्हें यह पुरस्कार देंगे ही। पुरस्कार तो उन्हें पानी के प्राचीर (1961) के लिए मिलना चाहिये। उनकी प्रसिद्धि रवि के रूप में अधिक रही। कोई 35 पुस्तकें उनके काव्य संसार के वैभव को समेटे हैं। आलोचना के क्षेत्र में भी उनका महनीय योगदान है किन्तु मेरा उनका परिचय उनकी औपन्यासिक कृतियाँ के कारण हुआ। उपन्यास लेखन उनकी तीसरी सिद्ध विधा है। अब तक प्रकाशित उनके 15 उपन्यासों में 5-7 ही मैंने देखे-पढ़े हैं किन्तु उनकी सहज और गंभीर दोनों प्रकार की शैलियाँ मुझे आकर्षक लगती हैं। वास्तव में गद्य और पद्य का अन्तर करना उन्हें पढ़ते समय बड़ा कठिन हो जाता है। उनका सारा कथा साहित्य काव्यमय ही है। उनकी इसी शैली का प्रभाव मुझ पर पड़ा। जब मैंने कहानी अहं ब्रहास्मि लिखी। पात्र एवं घटना से विमुक्त इस कहानी को अनेक तरह प्रशंसा मिली और इसे ही मैंने अपने प्रथम कहानी संग्रह का शीर्षक बनाया-अहं ब्रहास्मि।

उनका अंचल प्रेम मुझे भाता है। गोरखपुर और बनारस की चहक-महक और अटपटी शब्दावली उनके साहित्य में आंचलिक सौंदर्य का कारण बनती है। वे सौंदर्य और माधुर्य का चयन नहीं करत वरन् स्वत: ही नवनीत के रूप में यह प्राकृतिक शब्द सौन्दर्य उनके गद्य में भी लयात्मक रूप में यह प्राकृतिक शब्द सौन्दर्य उनके गद्य में भी लयात्मक रूप में हिंडोले मारता दिखता है। बात प्रशंसा की नहीं है। अनेक नवीन मुहावरे मुझे उनकी औपन्यासिक कृतियों को पढ़ते ही बूझने में आए हैं।

वे सौ बरस के हो रहे हैं। ऐसा बिरलों के साथ ही होता है, उसमें भी खास यह कि सौ भी हजार जितने। लेखन की अपनी दुनिया विचित्र होती है। एक नशा होता है, इश्क होता है, जुनूं होता है। एक आदत होती है। यह खास आदत रामदरश मिश्र के व्यक्तित्व को विशेष बनाती है। उनके लेखन ने कितनों को प्रभावित किया। यह मुझे पता नहीं, जरूरी भी नहीं है जानना किन्तु उनकी लेखनी ने अनेकों की कलम में स्याही का काम किया है। वे हमारे समय के शीर्ष रचनाकार हैं। उनकी रचनाधर्मिता और संवेदना की सूझ को सहेजना हमारा दायित्व है।

निदेशक, रामायण केन्द्र भोपाल
बी- 16, लेक पर्ल रेसीडेंसी
ई-8, अरेरा कालोनी,
भोपाल-462039 (म.प्र.)
मो.- 7974004023

शताब्दी के साक्षी : मेरे पिता रामदरश मिश्र

– स्मिता मिश्र

जन्म – 21 जुलाई 1966
शिक्षा – एम.ए.,पीएच.डी.।
रचनाएँ – 16 पुस्तकें।
सम्माान – भारत सरकार का भारतेन्दु हरिशचंद्र सम्मान सहित अनेक सम्मान।

हम लोग उस महा सृष्टा के आभारी हैं जिसने मेरे श्रद्धेय पिता प्रो. रामदरश मिश्र को एक बहुत लंबी उम्र दी है और उन्हें बचपन से लेकर आजतक साहित्य सेवा में निमग्न रखा है। गरीब गाँव के एक अभाव-ग्रस्त परिवार में जन्म लेकर वे क्रमश: शिक्षा और साहित्य के सहारे लगातार आगे बढ़ते गए। यों तो माँ ने पिता जी से संबंधित एक साहित्यिक समारोह में मज़ाक-मज़ाक में कहा था कि मिश्र जी एक बहुत निकम्मे व्यक्ति सिद्ध हुए होते यदि वे कवि न होते तो। लोग हँस पड़े थे और इस मज़ाक में छिपी मिश्र जी की प्रतिष्ठा का सम्मान किया था। वास्तव में दुनियादारी का दायित्व तो माँ ने सँभाला और समर्पितभाव से पिता जी को साहित्य रचना के लिए प्रोत्साहन करती रहीं और उनके साहित्य की प्रथम पाठिका बन कर एक अच्छे कवि की पत्नी होने का गौरव अनुभव करती रहीं।

सही है भाग-दौड़ वाली, दाँव-पेंच वाली दुनियादारी पिता जी को नहीं आती। उनके स्वभाव की सादगी अनेक लोगों को अत्यंत प्रीतिकर लगती रही। यह सही है कि लेन-देन की दुनियादारी में फँस कर कोई बड़ा साहित्यकार नहीं बन सकता। साहित्य साधना के क्रम में दुनियादारी वाला सुख त्यागना पड़ता है। इस संदर्भ में उनकी मुक्त छंद की कविताओं, गज़लों मुक्तकों की कई पंक्तियाँ देखी जा सकती हैं –

भागे जा रहे लोग कहीं पर मैं ठहरा सा देख रहा
सच कहते हैं लोग कि मुझमें अभी बहुत नादानी है।

घूमते वे फिरे मंदिरों में सदा/ किंतु कविता मेरी बंदगी हो गयी
साज लोगों ने क्या-क्या चुने मुग्ध हो / साध मेरे मेरी सादगी हो गई।

पिता जी ने अपने यौवन काल में विशिष्ट कविताओं के साथ कई बड़े उपन्यास और मार्मिक कहानियाँ भी लिखीं। किंतु एक विशेष विचारवाद से ग्रस्त लोगों ने उन कृतियों को बड़े सम्मान पाने नहीं दिया तो मैं पिता जी को लंबा जीवन देने वाले महा सृष्टा को इसलिए नमन करती हूँ कि उसकी कृपा से मिश्र जी ने अपनी उम्र के अंतिम चरण में अनेक अति विशिष्ट काव्य-संग्रह तो लिखे ही उन्हें उनके आधार पर वे अनेक बड़े सम्मान व्यास सम्मान, साहित्य अकादमी सम्मान और सरस्वती सम्मान भी प्राप्त होते गए जो उनकी पूर्व बड़ी कृतियों पर नहीं मिल पाए थे।

प्राय: बड़े कहे जाने वाले कवि भी 70-80 वर्ष पार करने पर या तो धार्मिक काव्य लिखने लगते हैं या अपने को दुहराने लगते हैं किंतु पिता जी 98 वर्ष के पास होकर भी नये समय में व्याप्त अनुभव और दृष्टि को अपनी नयी कृति की निर्मिति में प्रयुक्त करते रहे हैं। इसलिए उनकी हर नई आने वाली पुस्तक पहले से कुछ अलग होती है यद्यपि मूल स्वर सब में व्याप्त होता है। एक गज़ल के शेर में उन्होंने मन और तन का संवाद करता हुए लिखा है–

मन कहता हूँ अभी जवाँसा, यह चाहिए और वह चाहिए
तन कहता है बहुत पा चुके अब तो चुप बैठे रहिए

हाँ यह सही है शिथिल होता जाता तन मन को आराम करने को कहता है लेकिन मिश्र जी के मन में इस समय भी इतनी सर्जनात्मकता भरी हुई है कि वह तन की बात न मानकर कुछ न कुछ लिखता रहना चाहता है। हाँ अब उस पर तन का असर होने लगा है। अब वह कोई बड़ा उपन्यास, लंबी कहानियाँ, लंबी कविताएँ नहीं लिख पाता लेकिन उसमें जो सर्जनात्कमकता शेष बची है उसे मुक्तकों, छोटी कविताओं, गज़लों में व्यक्त करना चाहता है। हाँ इधर कई वर्षों से उसे डायरी लिखने का क्रम शुरू किया था जो अब भी गतिशील है। इस थकी बेला में उसे डायरी के माध्यम से अपने को व्यक्त करना सुविधाजनक और प्रिय लगता है। उसमें दैनिक तथ्यों के साथ कविता की छवि, कथा की जिज्ञासा, निबंध की विचारात्मकता प्रसन्न भाव से चली आती है। इसलिए पिता जी की डायरियाँ भी अपना अलग अस्तित्व रखती हैं। इन कई वर्षों में पिता जी में थकान सी आती दीख रही है। कोरोना काल में मौत की आँधी-देखकर अनेक लोगों की तरह मिश्र जी का भी तन चुप्पी से घिर गया था। मुझे लगा कि इस चुप्पी को किसी तरह तोड़ना चाहिए। तो मैंने प्यार भरा आग्रह किया-' पिता जी चुप्पी तोड़िए। आप प्रसिद्ध साहित्यकारों के संस्मरण बोलते जाइए मैं लिखती

जाऊँगी।' वे मेरे आग्रह को टाल नहीं पाते। मेरे प्रति उन के मन में अगाध आशीष और स्नेह भरा है। तो शुरू हो गई संस्मरण यात्रा और कुछ दिनों बाद प्रसिद्ध लेखकों के संस्मरण की पुस्तक तैयार हो गई जो हंस प्रकाशन से 'सुरभित स्मृतियाँ' नाम से प्रकाशित हुई। हर व्यक्ति में कुछ न कुछ कमी होती है। मैंने ये संस्मरण बोलते समय उन कमियों की चर्चा नहीं की इसलिए पुस्तक का नाम 'सुरभित स्मृतियाँ' रखा गया।

कोरोना काल में लॉकडाउन की घोषणा हुई। मैं एक झटके के साथ पिता जी और माता जी को अपने कुंडली स्थित मकान में ले गई। वहाँ पिता जी को नया परिवेश मिला। जिसे उन्होंने अपने मुक्तकों में उतारना शुरू किया लेकिन लोगों की और विशेषतया अपने मित्रों की मौत ने उन्हें फिर घनी उदासी से भर दिया। और दो एक मुक्तक छंद की कविताओं, दो एक गज़लें तथा मुक्तकों में उनका दर्द छलक आया। वे सभी 'समवेत' नामक संग्रह में प्रकाशित हुए। इसमें जो कविताएँ लिखी गई उनके बाद कविता–रचना का क्रम बंद सा हो गया। ये कविताएँ पत्रिकाओं में छपी लेकिन पिती जी को चिंता हुई कि इन थोड़ी सी कविताओं से पुस्तक तो बनेगी नहीं, फिर क्या किया जाए। मैंने सलाह दी कि मुक्त छंद की कविताओं, गज़लों, मुक्तकों और कुछ भोजपुरी कविताओं को मिला कर समवेत नाम से एक पुस्तक निकाल दी जाए। अमन प्रकाशन ने यह पुस्तक प्रकाशित की। बस कविता–यात्रा यहीं समापन प्राप्त करती दीखती है।

कोरोना काल की निरर्थकता को सार्थक और जीवंत बनाए रखने के लिए मैंने एक और प्रयत्न किया। मैंने श्री गुरु तेग बहादुर खालसा कॉलेज के पूर्व छात्रों का एक काव्य मंच बनाया। डॉ. ओम निश्चल, डॉ. वेद मित्र शुक्ल और मैंने इसे 'कविता के रंग : रामदरश मिश्र के संग' नाम दिया और हर रविवार को देश–विदेश के वरिष्ठ और नये चार कवियों की कविताओं का पाठ रखा जाता। अंत में मिश्र जी की कुछ कविताएँ सुनी जाती थी। लगभग साल भर चले इस कार्यक्रम ने इस मनहूस काल में कविता की रौनक भर दी।

अभी हाल ही के वर्षों में मिश्र जी के स्वास्थ्य की एक विडंबना दिखाई पड़ी। वे चलते–चलते किसी छोटी से छोटी वस्तु से टकरा कर गिर पड़ते थे। कभी–कभी महीनों तक उन्हें सिर दर्द पकड़े पहता था जिसके कारण डगमगाहट आती थी। और वे कहीं लुढ़क जाते थे। इस बार की विडंबना भयानक सिद्ध हुई। घर के आँगन में 7 फरवरी को कोई वस्तु उठाने की प्रक्रिया में वे गिर पड़े और कूल्हे की हड्डी में फेक्चर हो गया। आकाश अस्पताल में सर्जरी हुई। माँ के प्राण भी संकट ग्रस्त हो गए, उन्हें चेहरे के बाएँ हिस्से में लकवा मार गया जिससे उनकी आवाज और स्मृति प्रभावित हुई। अभी महीनों से माता–पिता मेरे मँझले भाई शशांक मिश्र के घर द्वारका नयी दिल्ली में रह रहे हैं। भाई भाभी की अपार सेवा से पिता जी चल पाने में सक्षम हो रहे हैं। माँ की बेहतर होने की गति धीमी है, किन्तु हमारी ईश्वर और चिकित्सक पर आस्था डिगी नहीं है। उसी समय माँ भी बीमार पड़ गयी। अब दोनों महीनों से शशांक भाई के घर विराजमान हैं और मैं हर रोज वहाँ जा जा कर उनकी देख–भाल कर आती हूँ। मैं सुबह से रात माता पिता के साथ ही अपने को पाती हूँ। उनके सान्निध्य के जितने भी क्षण मैं अनुभव कर सकती हूँ, कर रही हूँ। पिता जी के साहित्य का प्रबंधन कर रही हूँ। उनकी कवितायें, कहानियाँ पत्रिकाओं में, प्रकाशकों को भेजना आदि कार्य देख रही हूँ। महीनों से मिश्र जी के शिष्य, मित्र, आत्मीय उन्हें देखने के लिए आते रहते हैं। आने वालों में कई तो कवि होते हैं। वे आते हैं तो एक कवि गोष्ठी जम जाती है। कविताएँ पिता जी के मन में उल्लास की छवि तो दीप्त करती ही है आने वाले कवियों को भी मिश्र जी के सहचर में कविता पढ़ने में बहुत सुख मिलता है। यों तो आने वाले कई मित्र और शिष्य हैं किंतु डॉ. ओम निश्चल, डॉ. वेद मित्र शुक्ल तो बार–बार आकर सांत्वना दे जाते हैं।

कई बार बहुत दिक्कतें भी आती हैं जैसे कुछ जाने अनजाने लेखक पिता जी से अपनी पुस्तकों की समीक्षा या भूमिका लिखवाने की जिद पकड़ लेते हैं। तो मुझे अत्यंत हैरानी होती है कि कैसे लेखक हैं ये लोग, जो पिता जी कि उम्र और स्वास्थ्य का बिलकुल भी लिहाज नहीं करते और अवांछनीय आग्रह कर डालते हैं। खैर! अब मैं कठोर होकर सीधा मना कर देती हूँ, चाहे किसी को भला लगे या बुरा। मेरी प्राथमिकता अब माता –पिता का स्वास्थ्य है और कुछ नहीं। लेकिन इन्हें पिता जी के स्वास्थ्य और उम्र की चिंता नहीं होती। वे अपनी कोई प्रकाशित पुस्तक लाकर उन्हें थमा देते हैं और चाहते हैं कि वे उन पर समीक्षा लिखें। और फिर फोन से या चिट्ठी लिख कर उनके ऊपर अपना तकाज़ा फेंकते रहते हैं। पिता जी ने इस संकट को अपनी कई कविताओं में व्यक्त किया है। उनका एक मुक्तक है–

लंबा सफर रहा उसमें तो क्या–क्या मेरे नाम हो गया
लिखने–पढ़ने पर लगता है मानो पूर्ण विराम हो गया
प्रियवर, अब पुस्तक देने के लिए नहीं मेरे घर आये
बीत गया गतिमय दिन अब तो थका सा समय शाम हो गया

पिता जी इस पंद्रह अगस्त को 99 वर्ष पूर्ण करेंगे और सौवें में प्रवेश करेंगे। खुले मन वाले अनेक साहित्यकार और पिता जी के आत्मीय लेखक इस दिन की प्रतीक्षा कर रहे हैं ताकि एक जीवित व्यक्ति की शताब्दी प्रारंभ हो और समारोह आयोजित होते रहें। आगे ईश्वरेच्छा!..

मो.–8860127131

रामदरश मिश्र : एक शतीपुरुष से मुलाकात

- मुकुल अमलास

जन्म - 7 जून 1959।
जन्मस्थान - मिथिलांचल (बिहार)।
शिक्षा - स्नातकोत्तर, एम.ए., बी.एड.।
रचनाएँ - चार पुस्तकें प्रकाशित।

जीवन में कुछ अवसर ऐसे होते हैं जो अनायास मिल जाते हैं और अविस्मरणीय बन जाते हैं। इस बार गर्मी की छुट्टी के लिए जब नागपुर से निकली तो उद्देश्य अपने नाते रिश्तेदारों से मिलना तो था ही, साथ में एक इच्छा साहित्यिक तीर्थाटन की भी थी। बहुत दिनों से इच्छा थी डॉ. रामदरश मिश्र जी के दर्शन और उनसे एक मुलाकात की। गाहे-बगाहे मैं ने उन्हें देखा और सुना तो था परंतु आमने-सामने बैठकर मिलने और बातें करने का मौका कभी नहीं मिला था। ऐसा अवसर मेरे लिए साहित्यिक तीर्थाटन ही था, भला इस आनंद से कम क्या! पर यह संभव हो पाएगा इस बात पर संदेह था। आखिर वे अपने वय के सौवें पायदान पर हैं, अपने स्वास्थ्य की समस्याओं के कारण लोगों से कम मिलते-जुलते होंगे तो भला मुझे ही क्यों समय देने लगे! पर मेरा भाग्य में नहीं, पुरुषार्थ में विश्वास है तो प्रयत्न में लग गई। एक तरफ उनकी सुपुत्री डॉ. स्मिता मिश्र से समय माँगा दूसरी तरफ रामदरश मिश्र जी के बेहद करीबी डॉ. ओम निश्चल जी को भी फोन लगाया और दोनों के सहयोग से मुझे समय मिल गया। मुझे यह कोई चमत्कार सा लगा। कोरोना समय में डॉ. मिश्र के सान्निध्य में प्रति सप्ताह होने वाले ऑनलाइन कवि गोष्ठीर 'कविता के रंग रामदरश मिश्र के संग', जिसके लगभग पचास एपिसोड हुए थे, में मैं भी शिरकत कर चुकी थी और उन्होंने मेरी कविताओं की प्रशंसा भी की थी। उस दौरान मैं उनको निरंतर सुनती थी और उनकी लिखी कविताएँ भी पढ़ती रहती थी। उनकी कविताओं ने मुझ पर जो असर डाला और मैं जिस भावधारा से गुजरी, उस पर बाद में मैं ने एक लेख लिखा जो 'कृति बहुमत' में छपा। शायद इसी में से किसी चीज पर रामदरश मिश्र जी की निगाह पड़ी होगी और उन्हें कुछ याद रह गया हो गया, जिस कारण उन्होंने मुझे बुला लिया।

एक सपने के सच होने जैसा अनुभव था। यह रोमांच का क्षण था। मैं अपने वय के सौवें बरस की कगार पर पहुँचे एक अत्यंत प्रखर, अति संवेदनशील, जीवंत साहित्यिक चेतना से मिलने जा रही थी। यह एक सदी को साक्षात् अपने सामने देखना था, उसके संस्मरण सुनना तथा बीते अतीत के साहित्य से गुजरना था। ऐसा अवसर सौभाग्यशालियों को ही मिलता है और आज यह सौभाग्य मेरे दामन में आ गया था। न जाने उनकी कितनी कविताएँ और कहानियाँ गहन में तैर रही थीं। एक समय था जब उनको पढ़ते हुए उनकी लेखनी की सादगी और नैसर्गिकता के मैं गिरफ्त में आ गई थी।

गा उठता हूँ जब गा उठती जीवन में लहरों की क्रीड़ा
रो उठता हूँ जब रो उठती अंतर में मानव की पीड़ा।

लगा था इंसान को ऐसा ही सहज होना चाहिए पर यह नैसर्गिकता अब कहाँ रही, न जीवन में न साहित्य में, चारों ओर बनावट और आडंबर का संसार फैला है। मानव की पीड़ा से द्रवित होने वाली यह सादगी ही इस कवि को आज के कृत्रिम युग में असाधारण बनाती है। 'ओ नए शरद' नामक कविता मुझे बहुत विशिष्ट लगी थी, एक श्रेष्ठ उदाहरण इस तथ्य का कि रचनाकार अतींद्रिय होते हैं, निसर्ग के बेहद निकट, जिस पर सर्वव्यापी ईश्वर की विशेष कृपा बरसती है। जब हरसिंगार झर रहा हो और किसी को लगे कि वह स्वयं को ही लुटा कर महक रहा है, जब चलती हवाओं में कोई स्वयं को स्पंदन बनकर लहराते देखे, जब कोई बीज रूप में स्वंय को धरती में गड़ा और अंकुरित होते देखे तो यह साधारण अवस्था नहीं होती, समष्टि से एकरूप होने की अवस्था होती है। ऐसी अवस्था को पाने के लिए साधक क्या-क्या जतन नहीं करते पर एक कवि को अपनी अंतर प्रज्ञा से यह सहज ही प्राप्त हो जाता है। इसे परमात्मा का प्रसाद न कहा जाए तो और क्या कहा जाए! इस कविता को पढ़ते हुए मुझे कवि में एक साधक नज़र आया था जो अपने ध्यान की गहराइयों में लीन हो, ब्रह्मानंद को उपलब्ध हो।

मुझे याद आ रही थी उनकी कहानी 'लड़की।' कहानी बहुत ही छोटी थी पर कम शब्दों में ही जिस सूक्ष्मता और तरलता से उन्होंने अपने ही परिवार में दुर्व्यवहार तथा माता-पिता की उपेक्षा झेलती लड़की के दुख तथा मनोभावों को उकेरा था, वह अद्भुत था। पढ़ कर लगा था जैसे मेरे भी अंदर कुछ चरमरा कर टूटा है और कहानी सदा के लिए हृदय में घर कर गई थी। शोषण इंसान को किस हद तक पददलित कर देता है, अपने आत्मसम्मान से विरत, यह कहानी उसकी मिसाल है। लेखक स्वयं कुछ नहीं करता पर उसकी कलम कितना बड़ा संदेश दे जाती है। उनकी इसी संवेदनशीलता ने हर बार मुझे छुआ है, चाहे वे कविताएँ हो या फिर कहानियाँ। उनकी एक दूसरी कहानी 'खाली घर' पढ़ कर भी मैं बहुत रोई थी। एक छोटे बच्चे के लिए माँ उसकी पूरी दुनिया होती है और उसका चले जाना जैसे सारी दुनिया का लुट जाना। इस मार्मिक भाव को इस कहानी में उन्होंने जिस तरह चित्रित किया है, वह पाठक को एक तरफ रुलाता है और दूसरी तरफ उनकी रचनाशीलता के प्रति नतमस्तक कर देता है। कहानी को पढ़ते हुए मुझे ऐसा लगा था जैसे बच्चे की आत्मा ही लेखक में समा गई है। ऐसा ही हुआ होगा तभी तो माँ से जुदा बच्चे के दर्द तथा वेदना का उन्होंने इतना जीवंत और सजीव चित्रण किया।

जिसकी कलम इतनी सशक्त हो, जो संवेदना का इतना धनी हो कि दूसरे का दुख बिना बताए जान ले, उसे अक्षरश: वाणी दे दे, मैं अपने ऐसे प्रिय लेखक से मिलने जा रही थी, मेरे लिए यह बेहद हर्ष का विषय था। नियत समय शाम के पाँच बजे हम उनके घर पहुँचे। वे अपने घर के वरांडे में पत्नी के साथ बैठे हुए थे, शायद हम लोगों के ही इंतजार में। मैंने दोनों के चरण छुए और आशीर्वाद प्राप्त किया। उन्होंने अपनी बैठकी में ला कर मुझे अपने बगल में बिठाया फिर बेहद आत्मीयता से हालचाल पूछा। वे शारीरिक रूप से कमजोर लगे परंतु उनकी याददाश्त, उनकी साहित्यिक संवेदना और सक्रियता आश्चर्यजनक रूप से जीवंत थी जो मुझे अभिभूत कर रही थी। वे मुझे सादगी की प्रतिमूर्ति लगे। रहन-सहन, बात, व्यवहार हर चीज जैसे सादा जीवन उच्च विचार के सिद्धांत का दृष्टांत हो।

बड़े-बुजुर्गों के पास बैठना मुझे सदा से पसंद रहा है, उनकी बातें सुनना जैसे अतीत को अपनी आँखों से देखना। यह एक अति विशिष्ट अवसर था क्योंकि जिस शख्सियत से मैं रूबरू थी वह न केवल एक सदी को खुद में समेटे हुए था बल्कि उसकी साहित्यिक यात्रा ही हमारे वय के बराबर थी।

मैंने सबसे पहले उनकी तबीयत पूछी। उन्होंने बताया कि घुटने में दर्द रहता है और यह दर्द अब पैरों में फैल रहा है, फिर भी चल-फिर लेता हूँ, अपने सभी कार्य कर लेता हूँ। अभी हाल में कूल्हे में लगी चोट की वजह से उन्हें काफी दिनों तक बिछावन पर रहना पड़ा था, यह समस्या शायद उसी वजह से हो। मुझे पिछले साल 2022 की बात याद आई जब सरस्वती सम्मान समारोह में उन्हें देखा था। उस समय वे आराम से चल रहे थे। कितने ओजपूर्ण तथा भावपूर्ण ढंग से उन्होंने अपनी कविताओं का वहाँ पाठ किया था। उस समय बनाए गए वीडियो अभी भी मेरे फोन में कहीं पड़े होंगे। उस समय यह शारीरिक लाचारी उनमें जरा भी लक्षित नहीं कर पाई थी।

श्रीमती सरस्वती मिश्र जी स्वंय अपने हाथों में ट्रे थामे चाय, नमकीन ले आईं, साथ में मिठाई भी थी, जिसे खाने का रामदरश जी ने बार-बार अनुरोध किया। श्रीमती सरस्वती मिश्र जी की काया यूँ तो दुबली-पतली परंतु गज़ब की स्फूर्ति। उनसे परिचय हुआ, वे थोड़ी देर बैठीं उसके बाद अंदर चली गई परंतु उनकी आवाजाही कमरे में निरंतर बनी रही। उनकी स्फूर्ति किसी जवान को भी मात कर रही थी। क्या विश्वास किया जा सकता है कि उनकी भी वय चौरानबे साल की है। मैं इस दम्पति के जीवन कौशल को देख अगर अचंभित थी तो इसमें आश्चर्य क्या! इस दंपत्ति को समस्या सिर्फ सुनने की है, उम्र का असर कानों पर हुआ है। उनसे बातचीत के दौरान इस बात का हमें ध्यान रखना पड़ रहा था।

मैं ने अब कमरे में नजर दौड़ाई, टेबल पर ढेरों पत्रिकाएँ पड़ी थीं कुछ उसके नीचे भी रखी थीं। यह कोई करीने से सजा ड्राइंग रूम नहीं था, जिसकी साज-सज्जा थोड़ी देर के लिए नवागंतुकों को अचंभित कर देती है बल्कि पुराने फर्नीचर और सहूलियत से जीने की आदत के कारण फैली अव्यवस्था वाली लेखक की बैठकी थी। एक ऐसा लेखक जो कहता है मैं शहर तो आया पर मेरे साथ मेरा गाँव भी बँध कर आया, वह मुझ से कभी जुदा ही नहीं हुआ। उनके ही ग़ज़ल की पंक्तियाँ जहन में उभर आईं -

सजा-सजा खामोश मरमरी भवन मुझे बंजर लगता है
अस्त-व्यस्त रोता-हँसता सा यह कच्चा घर-घर लगता है।

एक बड़ी आलमारी सिर्फ उनके द्वारा लिखी गई किताबों से भरी पड़ी थी तो दूसरी अलमारी उन किताबों से अटी पड़ी थी

जो दूसरों द्वारा उन पर लिखे गए या फिर शोध कर लिखे गए थे। मैं सोचती रही कोई व्यक्ति जीवन भर इतना सृजनशील कैसे हो सकता है! उनके द्वारा लिखी गई पुस्तकों की अगर सूची बनाई जाए तो कई पृष्ठ उसी से भर जाए। किस-किस की चर्चा की जाए और कितनी! उनकी एक बेहद लोकप्रिय गजल याद आई-

बनाया है मैं ने ये घर धीरे-धीरे
खुले मेरे ख्वाबों के पर धीरे-धीरे

निश्चय ही उन्होंने धीरे-धीरे सारा काम किया, परंतु विराट किया, अंत:प्रेरणा से प्रेरित हो कर किया। उन पुस्तकों को देख सोचती रही कि इतने विराट लेखकीय कर्म के लिए तो आज के दौर के लेखकों को, जो सदैव लिखने के लिए कृत्रिम उत्तेजनाओं की तलाश में रहते हैं, कई जन्म लग जाएँ।

मेरी निगाह दीवारों पर लगी तस्वीरों पर गई जो रामदरश जी के जीवन के विभिन्न दौर की कहानी बयां कर रहे थे। इसमें एक नव दंपति की तस्वीर बरबस ध्यान आकृष्ट कर रही थी। स्मिता जी से अंतत: उस तस्वीर की बाबत मैं ने पूछ ही लिया? उन्होंने बताया यह तस्वीर माँ-पिता जी की शादी के तुरंत बाद की है। पहचानना मुश्किल हो रहा था पर कितना कितना सुंदर जोड़ा! रामदरश मिश्रा जी का व्यक्तित्व उस समय कितना सुदर्शन और भव्य रहा होगा इसका अनुमान यह तस्वीर दे रही थी। मेरी नजरों में प्रशंसा का भाव पढ़ उन्होंने हँसते हुए एक वाकया सुना डाला। एक बार उन्होंने अपनी माँ से पूछा-'पिता जी इतने सुंदर थे, प्रोफेसर थे ऊपर से लेखक भी, उनको चाहने वाले कम न रहे होंगे, छात्राएँ घेरे रहती होंगी, क्या आपको डर नहीं लगता था कोई मेरे पति को फुसला न ले?' इस बात का जवाब सरस्वती मिश्र जी ने खाँटी भोजपुरी में यह कहते दिया था कि-'केकर मजाल रहे, ओकर मुँह न झड़का देतीं।' अब यह जवाब सुन कर कौन न लाजवाब हो जाए। जिस स्त्री को खुद पर इतना विश्वास हो भला उसे दरकिनार करने की कोई कैसे हिम्मत कर सकता है।

ऐसी विचारवान और दृढ़ व्यक्तित्व की महिला को अपने पति से जीवन में जो सम्मान मिलना चाहिए वो सम्मान उन्होंने सदा पाया भी और इस बात का प्रमाण मुझे रामदरश मिश्र जी से बातचीत के दौरान बार-बार मिला। मेरे मन में घर के ऊपर लिखी उनकी कई गजलें घूम रही थीं तो मैं ने उनसे इस घर के निर्माण वर्ष के बारे में पूछ लिया। डॉ. साहब ने बताया कि यह घर 1980 में बना था और इसे बनवाने में पूरा योगदान मेरी पत्नी का रहा। उनकी बातों से स्पष्ट था कि अपने जीवन के सफर में वे अपनी धर्मपत्नी को कितना महत्त्व देते हैं। एक दूसरे के प्रति वे किस कदर समर्पित हैं इस बात को मैं ने तब भी लक्ष्य किया जब मेरी उपस्थिति में ही सरस्वती मिश्र जी ने बेटी स्मिता को इस बात की याद दिलायी कि डॉ. मिश्र की दवा समाप्त हो गई है। दवा समाप्त हो जाने की वजह से वे जिस तरह चिंतित थीं और जिस तत्परता से उसे आज ही मँगवाने पर जोर दे रही थीं, उससे मुझे रामदरश मिश्र जी की लंबी आयु और साहित्य जगत में उनकी निरंतर सक्रियता का राज समझ में आ गया। जब एक-दूसरे का ख्याल रखने और सम्मान देने वाला जीवन साथी हो तो अभाव कहाँ रह जाता है, फिर तो ऐसा व्यक्ति समाज को सदैव कुछ देता ही है जैसा कि डॉ. रामदरश मिश्र जी ने सदैव अपने लेखनी से दिया। ऐसा प्रेमपूर्ण और भरापूरा व्यक्ति ही लिख सकता है-

धूप, बारिश, ऋतु, नदी, धरती हमारे गाँव की
जिक्र क्या हमको भला, इतनी तो माँएँ साथ हैं।

एक उम्र के बाद पत्नियाँ भी शायद माँ बन जाती हैं! उनसे बातें हो रही थी, उनके संस्मरण सुन रही थी तभी अचानक वे उठे और अपनी प्रतिनिधि कहानियों की पुस्तक ला कर मुझे भेंट दी। उस पर लिखा था 'प्रिय बेटी मुकुल अमलास को साशीष'। यह अनायास मिला वरदान सा था। जब उन्होंने बेटी कहा तो बेटियों सा हठ दिखाते हुए मैंने भी उन्हें अपने पसंद की रचना 'पथ सूना है हम हैं तुम हो, आओ बात करें', सुनाने के लिए मना ही लिया। उन्होंने मेरा मान रखा, यद्धपि उस रचना को ढूँढ़ने के लिए उन्हें अतिरिक्त श्रम उठाना पड़ा और आलमारी से वह किताब ढूँढ़नी पड़ी जिसमें वह रचना थी। पर जिस तरह प्रेम से उन्होंने यह रचना सुनाई वह क्या जीवन भर भूलने की बात है! फिर उसी रचना को डॉ. ओम निश्चल जी ने अपने मधुर स्वर में सुना कर उस पल को और भी यादगार बना दिया। जब डॉ. रामदरश जी ने कहा यहाँ आने का टैक्स तो तुम्हें भी देना पड़ेगा और अपनी एक रचना सुनानी पड़ेगी तो उनकी आज्ञा को मुझे भी सिर-माथे पर रखना ही था। साथ ही मैंने उन्हें अपनी पुस्तक 'यह बड़ी नमकीन मिट्टी है' जो बिहार के नमक सत्याग्रहियों की गाथा है और यात्रा वृत्तांत की पुस्तक 'मैं चलती जल चलता साथ में' भी भेंट की। इन पुस्तकों को उनके हाथों में देख कर मुझे सचमुच अपार संतुष्टि मिली।

अब मैंने जानना चाहा कि अभी वे क्या लिख रहे हैं? तो उनका

जवाब उदास करने वाला था जिस पर भरोसा करने को जीन चाहा। वे कह रहे थे अब लिखना छूट गया है, कभी-कभी ही कुछ लिखता हूँ, अधिक देर पढ़ भी नहीं पाता। जिसकी लेखनी से प्यार हो उसका थम जाना आप कैसे स्वीकार कर सकते हैं। मेरा मन भी इस बात को स्वीकार नहीं कर पा रहा था। लगा ऐसा कैसे हो सकता है, कवि कुछ समय के लिए भले अवकाश ले ले पर जब हृदय में हूक उठेगी तो खुद को अभिव्यक्ति करने से कैसे रोक पाएगा! दिल को दिलासा दिया शायद अभी वही अवकाश का दौर हो, जल्द ही वे फिर लिखने लगेंगे। पिछले साल होने वाले ऑनलाइन कवि सम्मेलन में तो उनकी नवीन रचनाएँ सुनती ही रही थी। और पढ़ते हुए तो मैं उन्हें साक्षात् अभी देख ही रही थी, वे मेरी पुस्तक को बराबर गौर से देखते और फिर कुछ देर पढ़ते रहे थे फिर कहा था, 'इसे पहले मेरी पत्नी ही पढ़ेंगी, मेरी हर रचना भी सबसे पहले वही पढ़ती हैं।'

अँधेरा घिरने लगा था और मुझे गुड़गाँव लौटना था अब विदा की बेला थी। मैं ने उन्हें प्रणाम करते हुए जाने की इजाजत माँगी, उन्होंने निरंतर लिखते रहने की सीख दी और ढेरों आशीर्वाद दिया। उनकी वाणी में जैसे सारे पुरखों का आशीष समाया था और मुझे याद आ रही थी उनकी ही एक ग़ज़ल की ये पंक्तियाँ–

पथ में बैठा, उठा, चल पड़ा, मिले और बिछड़े हमराही
चलना था चाहे-अनचाहे जीवन एक सफर लगता है।

जीवन एक सफर ही तो है, कोई उन सा व्यक्ति इसे ऐसे जीता है कि उसे यादगार तथा लोगों के लिए प्रेरणास्पद बना देता है जबकि कोई दूसरा सिर्फ उसे तय करता है और परमात्मा द्वारा दिए गए अवसर को व्यर्थ गँवा देता है। उनसे मिलने के बाद मुझे ऐसा लग रहा था जैसे समय बहुत कम है और कितना कुछ है जीवन में जो करना है, लिखना है। सोचती हूँ क्या महान व्यक्तित्व के साथ समागम ऐसा ही असर छोड़ता है? उन्हें न छोड़ कर जाने का मन तो न करता था पर शाम गहरा रही थी सो निकलना पड़ा किन्तु मन के उज्ज्वल पटल पर सदा के लिए उनकी यह जीवंत छवि दर्ज हो गयी। मेरे मन में नरेंद्र शर्मा गूँज रहे थे : आज के बिछड़े न जाने कब मिलेंगे।

प्लॉट नं-77-78,
मुनि शंभुनाथ सी.एच.एस.,
शंभुनगर, मानकापुर,
नागपुर-440030 (महा.)
मो.-8208691805

सुन रही हो न माँ

- सविता मिश्र

जन्म - 17 जून 1962।
शिक्षा - एम.ए., पीएच.डी., डी.लिट्.।
रचनाएँ - पंद्रह पुस्तकें प्रकाशित कतिपय सम्पादित।
सम्मान - पं. प्रताप नारायण मिश्र युवा साहित्यकार सम्मान।

माँ, चली आयीं थीं तुम
सोलहवें बसंत में
अपने पीहर की देहरी छोड़
तब से अनगिन बसंत बीत गए माँ
इस घर में बिखर रही है तुम्हारे समर्पण और प्रेम की
श्रम, त्याग और संवेदना की अछोर खुशबू
घर के कोने-कोने में
बिखरे हैं तुम्हारी ममता के फूल
इसकी नीव से लेकर शिखर तक
फैला है तुम्हारी साधना का उजास
जिसमें डूबा पूरा घर खिल रहा है
पूरे गौरव और वैभव के साथ

माँ तुम ही तो हो
जो पतझर को बनाती रहीं बसंत
सन्नाटे में सितार सी बजती रहीं
तुम्हारी ऊर्जा और तुम्हारा आत्मविश्वास
गति देता रहा हर किसी को
अँधेरे में कंदील सी जगमगाती रहीं
बसंत सी खिलखिलाती रहीं
हमेशा तुम झरती रहीं हरसिंगार की तरह

घर के एकांत कोने में सबसे छिपकर
गृहस्थी की आँच में तपकर
बहाये हैं जो आँसू तुमने
मोती की तरह आज भी दमक रहे हैं माँ
तुम्हारे प्यार और समर्पण की खुशबू में
हमेशा हँसता रहा है घर
आज छोड़ दो सारे कामधाम माँ
और बैठ जाओ पिता के पास
जी भर कर बटोर लो बसंत की खुशबू को
जो पिता के साथ बिखरी है घर के कोने-कोने में

सुन रही हो न माँ
आज कोई कामधाम नहीं
कोई भी काम नहीं माँ
बस बैठी रहो पिता के साथ
बैठी रहो माँ

'बिना दरवाजे के मकान में' प्रवेश करते हुए

'बिना दरवाजे का' एक घर
ढेर सारे दर्द जिसके अन्दर सिसकते रहते हैं
भीगे-भीगे से, टूटे-टूटे से।
बिना पूछे, बिना रुके चला आता है हर कोई
और चला जाता है वापस दर्द को कुछ और छील कर...

एक घर बिना दरवाजे का...
एक मन बिना दरवाजे का...
बिना पूछे, बिना रुके चली आती हैं स्मृतियाँ
अयाचित अतिथि-सी
और चली जाती हैं वापस मन को कुछ और छील कर...
सूनी गोद टीसती रहती है,
सूने मन में महकने लगता है चैत टप...टप...टप...
टपकने लगते हैं महुए के फूल
फूलों को बटोरती,
कोयल को चिड़ाती
और बहती नदी को अपने अंदर समेटे वह
देखती रहती है अपने को सूखते हुए

हर पल बाहर...भीतर, भीतर...बाहर
जितना बरसती हैं स्मृतियाँ
उतना ही सूखता चला जाता है सब कुछ।

चले गए बिना पूछे, बिना रुके सारे मौसम...
बसंत फागुन नदी
सबने तलाश लिया है शायद
दरवाजे वाला मन/मकान।

उड़ता रहता है मन
साँस-साँस में पतझर सहेजे
सूखे पत्ते-सा...
साँय-साँय करता रह जाता है सन्नाटा।
टीसती रहती हैं दोनों चारपाइयाँ
चीखती रहती हैं बीती स्मृतियाँ
और इस शोर के बीच
हँसते रहते हैं सारे दर्द अन्दर ही अन्दर...
कोई नहीं जाता बाहर...
अरे भाई! खुला तो है घर
कुछ देर के लिए ही सही,
टहल आओ जरा बाहर...
पर नहीं...
वह (दीपा) खुद निकल जाती है बाहर
खटती रहती है दिन भर
और भरती रही है खटास मन में।
आखिर बितानी तो है ही जिन्दगी।
एक दर्द
जूझता रहता है बाहर
सुबह से शाम तक,
एक दर्द टीसता रहता है घर के अन्दर
रात से सुबह तक सुबह से शाम तक
दो प्याली चाय के धुँए में
क्षण भर के लिए उड़ जाता है
दर्द का नन्हा-सा टुकड़ा
पर फिर अगले ही क्षण
अड़ कर बैठ जाता है
बिना दरवाजे के मन में।
सूनी गोद
टीसता दर्द
फिर वही दिन की शुरुआत
वही बिना दरवाजे का मकान
वही तन-मन की धधकती भूख
वही टाट का परदा
वही बसंत की याद
और वही...
बिना दरवाजे की जिन्दगी।

'रात भर सफर में' पढ़ते हुए
सूखती चली गई अचानक, एक नदी
दूर-दूर तक तपती, चमकती रेत पर
भागते रहे, झुलसते रहे दो पाँव
साँसे लेता रहा रात-रात भर, एक लम्बा रेगिस्तान
पीली, उचाट दोपहरियाँ
झरती, चटकती रहीं अन्दर
चट-चट, चट-चट-चट,
थरथराती रही आँखों में, सूनी पतझरी साँझ
सन्धि-पत्र उड़कर बिखरते रहे इधर-उधर
सूखे पत्तों की तरह।
गीली आँखें तलाशती रही सूरज...
सन्नाटे लिपट कर रोते रहे अँधेरों से।

मन झरता रहा
तन झुरता रहा
एक सर्द चट्टान
उतरती रही अन्दर।
अचानक,
बह उठी एक धारा चट्टान की बेधती हुई
और सुबह ने जड़ दिया तमाचा
थरथराती रही ओस रात के गालों पर
फूल की आँखों में रात भर।
एक चटख-सी सुबह
उतरने लगी है उसके अन्दर,
बहने लगी है नदी फिर से
अब वह घंटों तक पैर डालकर
खेलती रहेगी लहरों से
देख रही है अब वसंत को आते हुए
वो देखो वसंत आ रहा है हँसता हुआ।

डुमरी से ढरसी की ओर

पिता!
कहाँ हो तुम?
आ रही है फिर वही जुलाई
सीधा-पिसान और अरतन-बरतन लादे हुए
तुम्हारे साथ ही तो चला था मैं
और छूट गया था मेरा गाँव।
ढरसी, बरहज, बनारस
फिर न जाने कहाँ-कहाँ घूमता रहा
गठरी कुछ और बड़ी होती गई।

तुम चले गये थे मुझे छोड़कर
एक पूरी रात
लालटेन की तरह जल-जल कर
उतरती रही थी मेरे अन्दर
और मेरे आँसू सुनाते रहे थे
न जाने कितना कुछ
टाट पर बिछी दरी भीगती रही थी पूरी रात।

अचानक शुरू हो गई थी तेज बारिश
और मेरे अन्दर टपकने लगा था
मेरा अपना मकान
टपकते मकान में रात भर जागती माँ
सामान को सरकाने के साथ-साथ
अपनी नियति को सरकाने का प्रयास करती हुई।
लालटेन जलती रही थी
अजनबी प्रकाश उतरता रहा था मेरे अन्दर।

तुम तो मुझे छोड़ गये थे पिता!
और मैं चुनता रहा था फूल
काँटे चुभते रहे थे
हथेलियाँ रक्तरंजित होती रही थीं
बसती रही थी खुशबू उनके अन्दर
आँख से पानी गिरता रहा था
जलती रही थी रोटियाँ
आग, खुशबू और बरसात को समेटे
मैं बढ़ता रहा था आगे और आगे।

पिता!
तुम देख रहे हो न मुझे?
बढ़ते-बढ़ते मैं आ गया हूँ यहाँ
इस भागते-दौड़ते महानगर में।
पर हर पल महकती है मेरे अन्दर कच्ची जमीन
जो चुपके से बाँध लाया था अपनी गठरी में
इसी जमीन पर खड़े होकर तो
चुनौती देता रहा हूँ महानगर को।
तुम देख रहे हो न पिता!
आज भी कितनी तरल हैं मेरी आँखें
बिल्कुल तुम्हारी ही तरह...
आज भी मेरे पास है सोंधापन
जो तुम्हारे अन्दर से घुलता रहा था मेरे अन्दर
आज भी टपकता घर, टपकता है मेरे अन्दर

सुन रहे हो न पिता!
इसी कच्ची जमीन में
पन्द्रह तारीख की सुबह गीली मिट्टी में
अपनी अँगुली से
'माँ' के बराबर में लिखूँगा तुम्हारा नाम
और करूँगा अद्भुत सृजन अपने जीवन का
मुझे आशीर्वाद दो पिता।
मैं रचना चाहता हूँ सारे संसार को
अपनी ही तरह
और देखना चाहता हूँ सबको अपनी जमीन पर खड़े हुए।

विभागाध्यक्ष-हिन्दी विभाग
आर.बी.डी. पी.जी. कॉलेज,
बिजनौर 246801(उ.प्र.)
मो. 9719659317

चेहरे

– रामदरश मिश्र

आपके संगमरमरी मकान का दरवाज़ा
पारदर्शी शीशे का है
उसमें से बाहर के चेहरे दिखाई पड़ते हैं
अपना चेहरा नहीं
आपकी धूमिल आँखों को लगता है कि
बाहर के चेहरे
कटी-फटी मैली लकीरों से भरे हुए हैं
आपके शानदार स्नानघर में
एक जादुई आईना लगा हुआ है
जो सच नहीं
वह दिखाता है जो आप देखना चाहते हैं

उसके घर का दरवाज़ा लकड़ी का है
जिसमें जालियाँ लगी हुई हैं
कमरे से बाहर से हवाएँ तो आती हैं
चेहरे नहीं दिखाई पड़ते
उसने अपने कमरे में
एक मामूली सा आईना लगा रखा है

उसके सामने जब खड़ा होता है
तब अपने को सही देख लेता है
और जब बाहर निकलता है
तब लगता है कि
बाहर के सारे चेहरे उसके चेहरे से सुंदर हैं।

♦

हिल रही हैं खिड़कियाँ, कुछ साँस में महका हुआ है
देखिए तो कौन आया, एक बनजारिन हवा है

इस जमी-सी झील में परछाइयाँ उगने लगी हैं
गुनगुनाने-सा लगा ठहरा हुआ हर रास्ता है

राख सी सोयी पड़ी शाखें अचानक बन गयीं लौ
पूछती है एक चिड़िया-'क्या हुआ है क्या हुआ है?'

कुछ न पूछो, कुछ न जानो, बस करो महसूस हरपल
यह मुहब्बत का पहर है, यह नजारों का जहाँ है

घूमता है गीत कोई इस हवा से उस हवा तक
खोजता फिरता न जाने हाय किस घर का पता है

दिन हैं या उमड़े हुए हैं ज्वार रंगों की हँसी के
हैं सभी डूबे समय में क्या पता कोई कहाँ है

सुन सको तो सुनो खुद के शोर से बाहर निकल कर
यह जुबाँ है खुशबुओं की, यह गुलों की दास्तां है

दे रही आवाज़ कोई हर दिशा किसको न जाने
थरथराता टूटता सा जा रहा हर फासला है।

♦

नये नगर में आ पहुँचा पहले से नाता टूट गया
लगी कंकड़ी, फिर मेरे ठहरे सुख का घट फूट गया
सारा कुछ समेटकर उस नगरी से यहाँ चला आया
लेकिन लगता है रह-रह मैं स्वयं वहाँ पर छूट गया

मुश्किल से तो आये हो, योंही न गुज़र जाना
आँखों के अँधेरे में कुछ दीप तो धर जाना
कब से वो मुंतजिर था खुशवक्तजी, तुम्हारा
आये हो उसके घर तो कुछ दिन तो ठहर जाना

समय के इम्तहानों को सदा ही हम सितम समझे
गमों ने जो दिये तोहफे न तुम समझे न हम समझे
ज़माने को समझ लेने का दावा था हमें कितना

मगर अब लग रहा है दोस्तो, हम कितना कम समझे

गुनगुना-सा रहा यह दिन, यह कोई माया है क्या
हँस रहा है पास कोई अपना ही साया है क्या
तिर रही है हवाओं में एक भीनी-सी महक
हो रही आहट हृदय में, फिर कोई आया है क्या

एक लंबा सफर था मेरे दोस्तो, राह चलती रही मोड़ खाती हुई
साथ हो ली हवा आग बन के कभी औ' कभी प्यार से महमहाती हुई
कंटकों ने किये चाक जब भी वसन,
छा गये फूल बनकर वसन देह पर
थक के बैठा जभी मौत के पास मैं,
जिन्दगी आ गई गुनगुनाती हुई

चल रहे हैं संग, परस्पर राज हम देते रहें
पर किसी के भी थकें परवाज़ हम देते रहें
हम पहुँच ही जायेंगे मंज़िल को आखिर दिन किसी
आपसी ख्वाबों को बस आवाज़ हम देते रहें

हुए खेल से बाहर अब तो क्या हारेंगे क्या जीतेंगे
देते रहे पास जो कुछ था नये सिरे से क्या रीतेंगे
दर्द छोड़ जाता था दुख तो छा जाती थी हँसी सुखों की
दुख को सखा बना लो ऐ मन, अब दिन ऐसे ही बीतेंगे

हुआ अकेला मैं जब भी पथ पर लगा कि कोई बुला गया है
है घिरा अँधेरे में जब कभी मैं चिराग कोई जला गया है
शरारती बालकों-सा जब भी मचाया ऊधम गमों ने दिल में
लगा कि कोई अजान उनको सुना के लोरी सुला गया है

इक ओर फटेहाली पर ग़ैर से नाता है
इक ओर है पैसा जो सुनता न सुनाता है
किस रास्ते जाऊँ मैं भटका हूँ दुरस्ते पर
इक गाँव को जाता है, इक शहर को जाता है

थरथराती रात लगती रही अंधा कूप है
सब रहे कहते समय का क्या भयानक रूप है
हम अलग से रहे, मुद्दत बाद विहँसा है समय
साथ बैठें आइए कितनी सुहानी धूप है।

गौरैया

बचपन में देखता था गौरैयों को
अपने कच्चे घर के आँगन में, छत्ते पर
और आसपास के पेड़ों पर-
सुबह-शाम चहकते हुए
कुछ गौरैयाँ तो दिन में भी
फुदकती रहती थीं-
आँगन में
रात को सोते समय माँ
सुनाती थी गौरैयों की कहानियाँ
और हम बच्चे सैर करने लगते थे
एक मानुषेतर लोक में, उसका होकर
घर कितना प्यारा घर लगता था।

आज शहर में चारों ओर चर्चा है कि
लुप्त हो गई है गौरैयों की प्रजाति
हाँ, शहर में कहाँ आयें और चहकें गौरैयाँ
न मकानों में आँगन रहे
न आसपास पेड़-पौधे
कितना सुखद है कि
शहर में मेरे मकान में
आँगन है और उसमें कुछ पेड़-पौधे भी
वहाँ सुबह-शाम
झुंड की झुंड गौरैयाँ चहचहाती हैं

गृहिणी द्वारा रखे गये दाने चुगती हैं
पानी पीती हैं, उसमें अदा से नहाती हैं
और अनेक भंगिमाओं के साथ नाचती हैं
मैं कितना भाग्यशाली हूँ कि
बचपन से लेकर आज तक
मेरा घर घर बना हुआ है।

अपना घर

– रामदरश मिश्र

व्यापारी रामनाथ वर्मा ने अपनी बेटी जुही का विवाह बहुत धूमधाम से किया था। दामाद नीरज एक बड़ी कंपनी में बड़ा अधिकारी था। उसके पिता धर्मचन्द व्यापारी थे। अच्छी–खासी संपत्ति के वे मालिक थे। रामनाथ और उनके पुत्र बहुत प्रसन्न थे कि जुही को बहुत अच्छा घर–बार मिला है।

खूब लाड़–प्यार से पली शिक्षिता जुही ससुराल जाते समय बहुत अनमन थी। वह डर रही थी कि मायके में इतना लाड़–प्यार मिला, पता नहीं ससुराल में क्या मिलेगा? लेकिन ससुराल तो जाना ही था।

ससुराल जाने पर उसे ज्ञात हुआ कि यह घर भी प्यार से भरा है। उसके पति नीरज तो उसके प्यार में डूबे से लगे। उसे धीरे–धीरे यह भी अहसास हुआ कि नीरज दृढ़निश्चयी हैं। घर में उनके कहने और व्यवहार का बहुत गहरा प्रभाव है। शायद इसलिए भी उसके सास–ससुर उसे प्यार देने के लिए विवश से लगे। नीरज जुही में गहरे संलग्न हुए। जुही को प्रतीत होने लगा कि सास–ससुर को नीरज की उससे इतनी गहरी संलग्नता कहीं खटक रही है। वे उसे स्नेह देने का दिखावा तो कर रहे हैं किंतु उनके मन के भीतर कुछ और चला रहा है। शायद उन्हें लग रहा है कि नीरज औरों के प्रति उदासीन होकर उसमें रमा हुआ है।

जुही ने एक बार नीरज से कहा भी कि आप खुलेआम मुझे इतना प्यार देते हो, यह बात माँ और बाबूजी को शायद अच्छी नहीं लगती। नीरज ने हँसकर कहा–'मेरी प्यारी जुही रानी, मुझे जो अच्छा लगता है करता हूँ, किसी की परवाह नहीं करता और तुम्हें प्यार करता हूँ तो बाबू जी और माँ को क्यों बुरा लगेगा?

'नीरज जुही को सभाओं में, उत्सवों में, पार्टियों में साथ ले जाने लगा। जुही जब पति के साथ निकलती थी तब उसे लगता था कि सास–ससुर के चेहरों पर अप्रसन्नता की रेखाएँ खिंच आयी हैं। जुही ने इशारों–इशारों में नीरज को यह बात बतलायी किंतु नीरज हँसकर टाल गया। कहा कि बाबू जी और माँ मुझे बहुत मानते हैं। मेरी खुशी में अपनी खुशी अनुभव करते हैं।

यों ही समय चलता रहा। जुही घर के कामकाज में यथोचित हाथ बँटाती हुई भी पति के साथ बाहर आती–जाती रही और एक साल भी नहीं बीता था कि वज्रपात हो गया। नीरज कंपनी के काम से बाहर गया हुआ था, लौटते समय हवाई जहाज गिर पड़ा। घर में हायतौबा मच गयी। घर को अचानक उदासी ने घेर लिया। जुही का तो सर्वस्व लुट गया। उसका दुख कल्पनातीत था। तेरहीं गुजरी नहीं कि उस पर लांछन का पहाड़ टूट पड़ा।

सास–ससुर दोनों ने कहना शुरू किया कि–'यह कुलच्छिनी है। इसी के कुलच्छन से हमारा बेटा हमसे छिन गया। वह जिन्दा था तक भी इसने हमारे बेटे को अपने कब्ज़े में कर उसे हमसे दूर कर दिया था और अब तो उसे खा ही गयी। अब इसकी हमारे घर में जगह नहीं है।' जहाँ चाहे जाये। रोज–रोज के ताने से ऊबकर जुही ने अपने पिता को फोन किया कि ये लोग मुझे घर से निकाल रहे हैं।

रामनाथ जी दामाद के निधन से तो दुखी थे ही बेटी पर हो रहे अत्याचार से और भी दुखी हो गये। उन्हें गुस्सा भी आया। बेटी के पास पहुँच गये और जुही के ससुर से बोले–'मेरी बेटी कुलच्छिनी नहीं है धर्मचंद जी उसके पैदा होते ही मेरा व्यापार दुगुने वेग से चल निकला था। उसी के भाग्य से मुझे इतनी संपत्ति मिली जिसमें से आपको भी इतना कुछ दे सका। आप इसे घर से क्या निकालेंगे, मैं ही इसे इस मनहूस माहौल में रहने नहीं दूँगा। मैं अपनी बेटी को साथ लिए जा रहा हूँ।' रामनाथ जी जुही को लेकर अपने घर आ गये। उन्होंने अपने बेटे–बहू से कह दिया कि यह घर जुही का भी है। यह उसी अधिकार से इस घर में रहेगी जिस अधिकार से तुम लोग हो। यह दुखी है इसे अपने इस घर में खूब प्यार मिलना चाहिए। यह माँ बनने

वाली है यह बात सदा ध्यान में रहे। रामनाथ के बेटे-बहू भी जुही को अपने बीच पाकर प्रसन्नता का अनुभव कर रहे थे।

समय से जुही एक बेटे की माँ बनी। रामनाथ जी ने उसे अपने पास रख तो लिया था किंतु सोचते थे कि इसकी एक अपनी दुनिया होनी चाहिए। कल मैं नहीं रहूँगा तो क्या बेटे-बहू इसे इसी रूप में स्वीकार कर पाएँगे? अत: जब बेटा राकेश दो साल का हो गया तो रामनाथ जी ने पास के मोहल्ले में उसके लिए एक मकान खरीद दिया और उसी में नीचे के फ्लोर में कपड़े की दुकान खोलवा दी। अपने पैसे से एक नौकर रख दिया। रामनाथ जी भी जब-तब दुकान की देखभाल करते रहे। धीरे-धीरे दुकान चल निकली और जुही का बेटा अब स्कूल जाने लगा। राकेश पढ़ने में बहुत तेज निकला। वह प्रथम श्रेणी में एक-एक दर्जा पार करता गया। राकेश का चेहरा बिलकुल अपने पिता जैसा था। उसे देख-देखकर जुही प्रसन्नता अनुभव करती थी और कभी-कभी उसकी आँखें भर आती थीं।

समय बीतता गया। जुही की दुकान ने बहुत सम्पन्नता प्राप्त कर ली थी और राकेश पढ़ता-पढ़ता एक दिन डॉक्टर बन गया। जुही और राकेश दोनों की इच्छा थी कि अपना क्लीनिक हो लेकिन यह इतनी जल्दी संभव नहीं था अत: राकेश ने एक प्रसिद्ध नर्सिंग होम में नौकरी कर ली।

एक दिन उसने देखा कि एक बूढ़ी औरत एक बूढ़े मरीज को लिए हुए आयी। उसे भर्ती करना पड़ा। बूढ़े-बूढ़ी ने राकेश को देखा तो देखते ही रह गये। उनकी आँखें कुछ भीग आयीं। वह वृद्ध चार दिन तक भर्ती रहा और जब-जब राकेश उसके सामने आता वे दोनों उसे एकटक देखने लगते और उनकी आँखें भीग आतीं। डिस्चार्ज होने के दिन वृद्ध से रहा नहीं गया। उसने राकेश से पूछ ही दिया-'डॉक्टर बाबू, एक बात पूछूँ बुरा तो नहीं माँनेंगे?'

'अरे नहीं आप दादा सदृश हैं, पूछिये बुरा क्यों मानूँगा।' दादा जी, दादा जी का स्वर वृद्ध के भीतर बजने लगा। पूछा-'आपका चेहरा आपके पिता जी से एकदम मिलता है क्या?'

राकेश ने सोचा-यह क्या बात हुई। फिर भी उत्तर दिया-'दादा जी मैंने अपने पिता को देखा ही नहीं था।'

'नहीं था मतलब अब वे नहीं हैं?'

'हाँ मेरे जन्म से पहले ही हवाई दुर्घटना में दिवंगत हो गये थे।'

उनका क्या नाम था?

'उनका नाम नीरज था।' और आपकी माँ का क्या नाम है?

राकेश ने सोचा अजब हैं ये वृद्ध महोदय, क्या-क्या पूछते जा रहे हैं। चलो कोई बात नहीं। बोला-माँ का नाम जुही है।

'मेरा संदेह सही था बेटे।'

'क्या दादा जी?'

'बेटे मुझे दादा जी कहते रहो, मैं ही तुम्हारा अभागा दादा हूँ। माँ द्वारा बतायी गयी घटनाएँ राकेश के मन में कौंध गयीं। वह कुछ कहे इससे पूर्व ही वृद्ध कहने लगा-'मैं ही हूँ तुम्हारा और तुम्हारी माँ का अपराधी अभागा धर्मचंद। मैंने उस देवी को घर से निकाल दिया था तब तुम पेट में थे। वह कुलच्छिनी नहीं-परम सुलच्छिनी थी। उसके जाने के बाद मेरा व्यापार गिरता गया और हम दोनों बीमारियों की चपेट में आते गये। मन कहता था कि जाकर उस देवी से अपने अपराध की क्षमा माँग लूँ लेकिन साहस नहीं हो रहा था। किस मुख से उसके सामने जाता। हम दोनों ने तुम्हें देख लिया तो लगता है हमारा नीरज हमें मिल गया। बेटे तुम खूब फूलो-फलो।'

बूढ़े और बूढ़ी की आँखें तरल हो आयी थीं और राकेश खड़ा खड़ा सोच रहा था उसे क्या करना चाहिए।

मैं और मेरी सर्जना

– रामदरश मिश्र

तन में थकान सी आने लगी है। (यह लेख तब लिखा गया था, जब लेखक 90 वर्ष के हो रहे थे) 90 वर्ष के तन में थकान तो आएगी ही, फिर भी मन है कि मानता नहीं। कहता है चलो–चलो, अधिक नहीं तो एक बार चलो अपने डुमरी गाँव में। गाँव गये कितने साल हो गये दस एक साल तो हो ही गये होंगे। मेरा मन भी अजीब है, अवसर पाकर भी देश या विदेश के उन स्थानों पर जाने से बिदकता है जहाँ जाने की कितनी तड़प लोगों में होती है किन्तु अपने गाँव जाने की बेचैनी सदैव उसे तड़पाती रहती है। तन जाने से डरता है। उसे भय बना रहता है कि दिल्ली के वातावरण में रहने का आदी वह इस अवस्था में जैसे ही गाँव जाएगा, वहाँ की असुविधाएँ और अलग प्रकार की दिनचर्या उसके ऊपर बीमारी बनकर लद जाएगी।

इस तन ने उस परिवेश का कितना कठिन शीत–धाम रहा है, कितने–कितने मौसमों और ऋतुओं के प्रीतिकर और अप्रीतिकर साहचर्य को गहरे जिया है, कितने लम्बे–लम्बे कठोर रास्ते तय किये हैं, खेतीबाड़ी के कितने–कितने भारी–भारी काम अपने पर उठाये हुए फिरा है लेकिन अब? अब वह इस 15 अगस्त को सौ साल का हो रहा है। मन की सनक में क्या अब भी उसे वहाँ की असुविधाओं के जंगल में ले जाकर छोड़ दिया जाए और लौटने दिया जाए बीमारी का बोझ लादे हुए? यह पगला मन क्यों बार–बार गाँव की उन असुविधाओं की ओर तन को ठेलना चाहता है। शायद इसलिए कि उन असुविधाओं के भीतर भी जीवन–सौंदर्य का गहरा राग प्रवहमान था। सच बात तो यह है कि तब ये असुविधाएँ, असुविधाएँ लगती ही नहीं थीं और लगती थीं तो उनके साथ चलते–चलते भीतर एक शक्ति महसूस होने लगती थी और उनके बीच में उगते हुए हर–त्यौहार, पर्व–मेले, शादी–ब्याह आदि के सामूहिक राग तथा प्रकृति की विविध छवियों के छन्द हमारी धमनियों में रक्त की तरह बहते रहते थे, और उदासी में भी उल्लास तथा हँसी के फूल खिलते रहते थे।

शहर में रहते हुए मुझे 58 साल हो गये किन्तु वह गाँव मुझसे नहीं छूटा। बुलाता ही रहता है। आज भी बुलाता है मगर कहा न कि तन उसकी पुकार सुनकर भी चुप रहता है। कभी–कभी गाँव की पुकार बड़ी गहरी हो उठती है। आज भी महसूस हुई लेकिन तन की वही उदासीनता।

तन तो चाहे जैसा हो मन तो अभी भी वैसा है, जैसा पहले था। तन को उदासीन होना हो तो हो, मन तो उसी ललक से भरा हुआ है और न जाने कब वह चुपके से गाँव में पहुँच जाता है। आज भी पहुँच गया। गोरखपुर से बस में सवार हुआ और चल पड़ा गाँव की ओर। पहले तो गोरखपुर से गाँव तक की बीस मील की दूरी पैदल पार करनी पड़ती थी, अब पैदल की दूरी सिमटकर दो मील की रह गयी है। आजादी के 55–56 साल बाद ही सही, पक्की सड़क गाँव के करीब तक ले जायी गयी है। सो मन बस में सवार होकर चल पड़ा गाँव की ओर। बस से उतरकर गाँव की ओर चला। हाँ, यह बिशनपुरा है। यहाँ पहुँचते ही मन भावुक हो उठा। हाँ, यह वही जगह है जहाँ सोमवार को बाजार लगता है। इस बाजार के दक्षिणी हिस्से में जो बड़ी–बड़ी दुकानें दिखाई दे रही हैं, वहाँ पहले हमारा प्राइमरी स्कूल था। वह गिर गया और काफी दिनों तक खंडहर बना रहा, फिर बाजार का हिस्सा बन गया। मुझे अभी भी लग रहा है कि वहाँ हमारा प्राइमरी स्कूल है। यहाँ आते ही बचपन की कितनी स्मृतियाँ जाग पड़ी हैं। वे सीधे और मरकटे मास्टर, वे तरह–तरह के सहपाठी, खट्टे–मीठे विविध प्रसंग, रोती–हँसती आँखें, खेल–कूद, आपसी झगड़े और प्यार, स्कूल की दहशत और छुट्टी होने पर उमड़ता हुआ मुक्त उल्लास। सोमवार का दिन होता था तो हम स्कूल के बन्द और डराते हुए माहौल से निकलकर सीधे बाजार के मुक्त कोलाहल में समा जाते थे और खोजते थे अपने–अपने पिताओं को, गाँव के लोगों को खरीदने की कुछ क्षमता न होने पर भी यों ही घूमते–घामते बहुत कुछ पाने की अनुभूति से गुजरते रहते थे। तब यह बाजार एक खुला हुआ मैदान–सा था जहाँ दूर–दूर के सामान विक्रेता आते थे, लगाते थे और फिर चले जाते थे। अब तो इसमें स्थायी रूप से अनेक दुकानें बन गयी हैं।

आगे बढ़ा तो मिडिल स्कूल की बिल्डिंग दिखाई पड़ी। यह भी जर्जर अवस्था में है किन्तु खुदा का शुक्र है कि अभी बनी हुई है। इसे अहाते से गुजरते हुए रोमांच हो आया। यह वहीं अमला

का पेड़ है, जिसके फलों का कसैला स्वाद अभी तक जुबान पर चिपका है। आम, पाकड़, पीपल सभी तो हैं अपने भीतर हमारा कितना-कितना अतीत छिपाये हुए। यहाँ दर्जा सात की पढ़ाई होती थी, यहाँ छः की, यहाँ पाँच की। यहाँ बिकाऊ पण्डित बैठते थे, यहाँ मौलवी साहब, यहाँ मुंशी जी याद आया यहीं हाँ, ठीक यहीं मैं बैठा था जब मेरी पहली कविता फूटी थी। तब मैं दर्जा छः में था और मेरे एक सहपाठी ने सूचित किया कि उसके गाँव का एक लड़का कविता लिखता है। यह सुनते ही मेरे भीतर कब से कुलबुलाता और दमित होता एक कवि जाग पड़ा और उसने विश्वासपूर्वक कहा-'मैं भी कविता लिख सकता हूँ।' उसी दिन पास के बगीचे में कांग्रेस की सभा थी। मैंने उसी पर कविता लिखनी शुरू की और इस बार कविता जैसी कोई चीज बन गयी। मुझे कितनी खुशी हुई होगी, इसकी कल्पना की जा सकती थी। मेरे साथ मेरे अभिन्न मित्र भी खुशी व्यक्त कर रहे थे। मैं फूला-फूला फिर रहा था।

कितने-कितने रूपों और रंगों में वह स्कूल मुझमें बसा हुआ है। बाद में मैं कितने बड़े-बड़े शिक्षा संस्थानों में छात्र और शिक्षक के रूप में जुड़ा किन्तु इन दो स्कूलों की जो गन्ध मुझमें व्याप्त हुई, वह और कहीं नहीं मिली-गन्ध, एक आदिम गन्ध। इन स्कूलों के बारे में कहना शुरू करूँ तो कहता ही रह जाऊँगा और मुझे अपने गाँव पहुँचने की जल्दी है। आगे बढ़ा तो रास्ते में रानापार गाँव आया। इस गाँव में पैठते ही बड़ा घर मिला। लगा कि इस विशाल जर्जर घर के आगे की खुली सहन में बने झोपड़े में मदनेश जी बैठे होंगे। उनके हाथ में रामायण या महाभारत या संस्कृत का अन्य कोई क्लासिक होगा। और मुझे देखते ही कहेंगे-'अरे आओ-आओ, कब आये भाई।' लेकिन कोई आवाज नहीं आयी तो मुझे अपनी भूल का अनुभव हुआ-'अरे ये तो कबके जा चुके हैं इस लोक से।' मन उदास हो गया और दलितों की बस्ती को पार करता हुआ आगे बढ़ने लगा। लेकिन मदनेश जी अपने अनेक रूपों में साथ चलते रहे। मेरे लिए उनका सबसे विशिष्ट रूप था कवि गुरु का। हाँ, मैंने कविता लिखनी शुरू तो कर दी मगर वह क्या है, कैसी है इसका भान कहाँ था? गाँव के एक सहपाठी मित्र ने सुझाव दिया कि चलो चलते हैं कवि मदनेश जी के यहाँ वे कविता देखकर बता सकते हैं कि कैसी है? हम दोनों उनके यहाँ बहुत संकोच के साथ पहुँचे, जाकर उनके पास खड़े हो गये, वे बोले- 'कैसे आये हो?' मेरे मित्र ने ही कहा-'पण्डित जी, रामदरश भाई ने कुछ कविताएँ लिखी हैं आपको दिखाना चाहते हैं।'

'हाँ हाँ, क्यों नहीं, क्यों नहीं, दिखाओ तो सही।'

मैंने झिझकते हुए अपनी कुछ कविताएँ उनके हाथ में पकड़ा दीं और डरा हुआ सोचता रहा, पता नहीं ये क्या कहेंगे। 'अच्छी हैं, बहुत अच्छी हैं, बेशक-बेशक तुम बहुत अच्छा लिखोगे।' मदनेश जी की आवाज सुनकर मैं प्रफुल्लित हो उठा।

'कहाँ रहते हो?' उन्होंने पूछा।

'डुमरी।'

'अच्छा डुमरी के हो। किसके बेटे हो?'

'रामचन्द्र मिश्र के।'

'अच्छा चन्नर भाई के सपूत हो। अच्छा, बहुत अच्छा। देखो तुम कविताएँ लिखकर मुझे दिखाया करो, संकोच नहीं करने का।'

मैं बहुत पुलकित होकर घर लौटा और उत्साह के साथ कविताएँ लिखने लगा। मदनेश जी सनेही स्कूल के कवि थे। उनके निर्देशन में मैं छन्द का अभ्यास करने लगा। वे मेरी कविताएँ सुधारते थे और प्रोत्साहित करते थे। धीरे-धीरे मुझे छन्द की पकड़ हो गयी और छन्द में गाँव की प्रकृति, सामाजिक जीवन तथा निजी सुख-दुःख की अभिव्यक्ति करने लगा। 1940-41 में मैंने घनाक्षरी छन्द में 'चक्रव्यूह' नामक एक खण्ड काव्य लिखा। उन्हीं की सहायता से 1940 में मेरी पहली कविता 'चाँद' छपी-गोरखपुर की 'सरयूपारीण' पत्रिका में। रानापार पार करते ही मेरा गाँव दिखाई देने लगता है। रास्ते में बारी आयी-यानी आम के पेड़ों का बगीचा। इस बारी में आते ही अपने बचपन के खेलते हुए दिन उतरा आये। हम लोग गर्मियों में स्कूल से छूटते थे तो इस बारी में घण्टों खेलते थे। यह बारी मुख्य मार्ग पर है अतः आने-जानेवालों की चहल-पहल मची रहती थी और आम के दिनों में तो क्या कहना! बूढ़े, बच्चे, जवान सभी का मेला लगा रहता था। इसके सारे पेड़ों के नाम थे और हम उन्हें उन्हीं नामों से पुकारते थे। देख रहा हूँ-इसके तमाम पेड़ कट गये हैं, यह लगभग आधा रह गया है और कटे पेड़ों की जगह से ईंट के भट्ठे का धुआँ निकल रहा है। इसके बीच से जाती हुई कच्ची सड़क की धूल में खेलते हुए हम सोचते थे, पता नहीं कहाँ से आती है यह सड़क और कहाँ जाती है। हम इस पर से जाती हुई बैलगाड़ियों, साइकिलों और पैदल

यात्रियों को रह-रहकर निहारा करते थे और मन ही मन पूछते थे-'कहाँ जाओगे भाई?' अब यह सड़क पिचरोड हो गयी है।

इस बगीचे से गाँव की ओर एक धूल भरी कच्ची सड़क जाती थी, अब वह भी थोड़ी सख्त बना दी गयी है। उससे होकर गाँव में प्रवेश करने लगा। हाँ प्रवेश करने से पहले एक छोटा-सा नाला पड़ता था, उसी के पास पहला घर पड़ता है-शिवदत्त बाबा का यानी गाँव के सबसे धनी व्यक्ति का। अब नाला नहीं है, पाट दिया गया है लेकिन मेरी स्मृति से कैसे जा सकता है?

मैंने जब पहले-पहल तैरना सीखा था, तब बढ़ियाये हुए इस नाले के इस पार से उस पार, उस पार से इस पार हो रहा था। बड़ा मजा आ रहा था। लेकिन एक बार धारा का वेग मुझे पोखरे की ओर बहा ले गया। मैं किनारे आने के लिए हाथ-पाँव मारने लगा किन्तु धारा मुझे अपने में लपेटकर गहराई की ओर लिये जा रही थी। चारों ओर दूर-दूर तक हाहाकार मचाता हुआ बाढ़ का जल ही जल था। लगा अब मैं गया इस दुनिया से। इस मकान के आगे रस्सी बँटते हुए हलवाहे सन्तू की नजर मुझ पर पड़ी। उसने आव देखा न ताव, पानी में कूद पड़ा और मुझे खींचकर किनारे लाया। आज जब मैं इस मकान के आगे आया तो सन्तू की याद आ गयी। वह तो कब का इस दुनिया से जा चुका है लेकिन मुझे लगता है कि अभी वह यहाँ बैठा हुआ रस्सी बँट रहा है।

इस धनी मकान से गाँव ही नहीं शुरू होता, होली का उत्सव भी यहीं से शुरू होता था। इस मकान के साथ भिन्न-भिन्न रंग की कई शख्सियतें जुड़ी हैं। हमारे गाँव के प्रसिद्ध अधिवक्ता कैलाशपति मिश्र इस घर के थे और उनका गहरा स्नेह मुझे मिला था। लेकिन एक और शख्सियत मेरी यादों में अपनी सुगन्ध बिखेरती रहती है। वे थे तामेश्वर मिश्र। वे एकदम जवानी में चल बसे थे और जब जिन्दा थे तब मैं बहुत छोटा था। न उनके समीप आ सका, न उन्हें समझ सका था।

जब मैं कविताएँ लिखने लगा, तब ज्ञात हुआ तामेश्वर जी कवि थे। वे प्राइमरी स्कूल में शिक्षक भी थे। सुना था कि वे बहुत प्यारे मनुष्य थे। उनके कवि से मेरी भेंट-मुलाकात तो नहीं हुई, किन्तु उनसे मैं एक अदृश्य सम्बन्ध अनुभव करता रहा और वह तड़प भी कि काश, वे मेरे सचेत होने तक जीवित रहे होते तो उनका साहचर्य कितना कुछ दे सका होता।

आगे बढ़ा। यह घर दीनानाथ का है। दीनानाथ मेरे दीनानाथ मेरे सहपाठी तो थे ही, बड़े अच्छे मित्र थे। उर्दू मिडिल तक हम लोग साथ-साथ पढ़े और खेले कूदे। गरीब तो हम सभी थे किन्तु दीनानाथ कुछ ज्यादा ही गरीब थे। गरीब इसलिए भी माने जाते थे कि उनके पिताजी भीख माँगते थे। दीनानाथ मिडिल पास करने के बाद कहीं कुछ काम करने लगे, लेकिन क्षयरोग से ग्रस्त होकर चल बसे। उनके जाने की पीड़ा मेरे भीतर इस कदर समायी हुई है कि वे प्राय: मेरे सपनों में आते हैं और लगता है कि वे मरे नहीं, जिन्दा हैं। उनके घर के बाद एक घर और, और फिर मेरा घर।

बच्चों ने शोर किया-'दिल्ली वाले बाबा आ गये, दिल्लीवाले बाबा आ गये।' बैठा, पानी-वानी पिया, मझले भाई साहब रामनवल जी, भतीजे, रामनिवास, श्रीनिवास, श्रीप्रकाश पास आकर बैठ गये। देखते-देखते मेरे बाद की पीढ़ी के कुछ लोग आ गये। नयी पीढ़ी के लड़के (जिन्हें मैं नहीं पहचानता) कुछ दूर खड़े होकर मुझे देखने लगे। बड़े भाई साहब के दिवंगत होने के पश्चात् मैं पहली बार गाँव गया था और जाते ही लगा था कि वे खेत में गये हुए हैं या खलिहान में हैं। मेरा आना सुनते ही उल्लास के साथ मेरे पास चले आएँगे और पूछेंगे कैसे रहे? बाल-बच्चे कैसे हैं? फिर याद आ गया कि अब वे नहीं रहे। कितना उदास लगा था उनके न होने का वातावरण। ऐसा बार-बार लगता रहा है। जब पिताजी के मरने के बाद गया था तब भी लगा था कि वे कहीं से आकर मेरे पास बैठ गये हैं और उनका अंग-अंग मुझमय हो गया है। जब माँ के मरने के बाद पहली बार गया था तब लगा था कि माँ अभी लोटे में पानी और गुड़ लेकर निकलेंगी और अपनी बहू तथा पोते-पोतियों का हालचाल पूछेंगी। मेरी भी अजीब विडम्बना है कि परदेश में रहने के कारण घर के किसी भी व्यक्ति के चिरविदा के समय पास नहीं रह सका और उनके अन्तिम दर्द का साक्षी नहीं बन सका। पिता, माँ और भाई साहब मेरे लिए जो कुछ कहना चाहते रहे होंगे, उसे ओंठों में दबाये हुए चले गये।

अब यह घर पक्का बन गया है, मेरे बचपन में कच्चा घर था। कमरे तो वही थे, उतने ही थे। आँगन भी वैसा ही था। खाना खाने के लिए जब अन्दर गया तो आँगन सामने आ गया। माँ के साथ जुड़ी कितनी-कितनी स्मृतियाँ भरी हैं इस आँगन में। माँ के मुँह से फूटी हुई कितनी-कितनी करुणार्द्र कहानियाँ समायी हुई हैं इस आँगन में, जो आज तक मुझे भिगोती रहती हैं। माँ के प्यार के कितने-कितने रंग भीने हुए हैं इस घर के अन्तराल में। खाना खाते समय मैं उस छोटे से कमरे को देख रहा था। हाँ, अब पक्का हुआ तो क्या हुआ जगह तो वही है, आकार भी वही है। सुना था उसी कमरे में मेरा जन्म हुआ था।

15 अगस्त सन् 1924 (श्रावण पूर्णिमा, बृहस्पतिवार संवत् 1961) को। मेरे भोजन के लिए भतीजे ने न जाने कितनी-कितनी चीजें बनवायी थीं। यह रसोईघर तमाम पकवानों की सुगन्ध से महक रहा था। चूल्हा खिलखिला रहा था। धीरे-धीरे न जाने कब कैसे यह चूल्हा बचपन के चूल्हे में बदल गया जो पर्वों और त्यौहारों के दिन ही खिलखिलाता था बाकी दिनों में आँच की ठण्डी-ठण्डी हँसी हँसता रहता था। कभी-कभी यह ठण्डी हँसी भी नहीं होती थी। इस सन्नाटे में पिताजी के सैलानीपन और माँ की कर्मठता का द्वन्द्व चीखता रहता था। बड़े भइया की किशोरावस्था इस सन्नाटे को तोड़ने की इच्छा से लगातार कसमसा रही थी।

आखिर एक दिन उनकी इच्छा फलवती हुई, सन्नाटा यहाँ-वहाँ से दरका, चूल्हे को उसकी सहज खिलखिलाहट प्राप्त हो गयी। बरसात में भहरा-भहरा कर गिरनेवाली दीवारोंवाला कच्चा घर पक्के घर में बदल गया और मैं। हाँ, मैं पढ़ाई के रास्ते पर निःशंक आगे बढ़ने लगा। प्राइमरी में था। फीस माफ थी केवल एक पैसा गेम फीस लगती थी। पिता जी वह भी नहीं दे पाते थे। याद है, उस दिन मास्टर ने गेम फीस लाने के लिए मुझे घर भेज दिया। मैं गया। पिताजी ने कहा अभी नहीं हैं, फिर दूँगा। मैं अड़ गया। कहा कि बिना लिये जाऊँगा तो मास्टर जी मारेंगे। पिता जी ने हाथ में खरहरा लेकर मुझे खदेड़ लिया। मैं भागने लगा। वे दूर तक मुझे खदेड़ते हुए गये। पता नहीं उस दिन मैं स्कूल गया कि नहीं। कहाँ वह दिन और कहाँ बाद में हिन्दू विश्वविद्यालय की पढ़ाई। बाद की पढ़ाई बड़े भइया के कारण ही सम्भव हो सकी।

'क्या सोच रहे हैं चाचा जी? खाते क्यों नहीं?' भतीजे ने मुझे टोका।

'अरे कुछ नहीं, बस यों ही।' मैं चौंक-सा उठा।

'नहीं, कुछ तो है।'

'अरे कुछ नहीं रे। यहाँ बहुत दिन बाद आया हूँ न, बचपन की स्मृतियाँ जाग-जाग जा रही हैं।'

तिजहर को इच्छा हुई कि अपना गाँव घूम आऊँ। निकल पड़ा यों ही। साथ में भाई साहब भी हो लिये। घर के पिछवाड़े पहुँचा तो याद आया यहाँ एक अमरूद का पेड़ था। हम लड़के अमरूद तोड़ते थे तो नरेश भाई की माँ (अमरूद की मालकिन) आँधी की तरह हहराती हुई निकलती थीं और हम सब भाग चलते थे। आगे बढ़ते गये। यह घर ब्रजनाथ का है। हाँ, वे हैं गोरखपुर में, उनसे भेंट हुई थी। यह घर छेदीराय का है-छेदीराय जो लोगों के बीच विदूषक था। पता नहीं है कि नहीं। मैं बड़बड़ा उठा।

'कौन?' भाई साहब बोले।

'छेदीराय'

'अभी जीवित हैं।'

'बहुत अच्छा। उनसे मिलूँगा।'

यह मेरे प्रिय मित्र और दूर तक सहपाठी कपिलदेव का घर है। ज्ञात हुआ था कि वे भी नहीं रहे। यह रामलला और घूरनाथ का घर है। खबर मिली थी कि दोनों चले गये। भाई साहब समझ गये थे कि मैं घूमने की प्रक्रिया में जानना चाहता हूँ कि बचपन के साथियों में कौन-कौन लोग हैं और कौन-कौन चले गये। अतः उनके घर आते ही स्वतः ही बोल पड़ते थे कि ये हैं या नहीं रहे। यह मुक्तिनाथ का घर है यह राम कृपाल का। दोनों नहीं हैं। हाँ, वैद्य जी यानी सीताराम जी अभी हैं और एक दूकान पर बैठते हैं। यह जोखू तेली का घर है, नहीं रहे। जोखू तेली का प्रसंग आते ही परम शरारती सन्तू यानी सन्त प्रसाद याद आ गये। याद आ गया स्कूल से छुट्टी होने पर सन्तू का जोखू को खदेड़ना और जोखू का लोमड़ी की तरह भागना। हँसी आ गयी।

'क्या बात है?' भाई साहब बोले।

' जोखू के साथ सन्तू याद आ गये।'

'हाँ, वे बेचारे भी नहीं रहे। बुरी मौत मरे।'

'और केशव?'

'वे हैं, ठीक-ठाक हैं।'

गाँव से गुजरते हुए अनेक अनपहचाने चेहरे मिलते रहे और मुझे उत्सुकता से देखते रहे। शायद उन्हें बताया गया था कि रामदरश मिश्र नामक एक प्राणी इस गाँव के हैं और दिल्ली में रहते हैं। कुछ लिखते-विखते हैं। ये चेहरे शायद इस भाव से मुझे देख रहे

हैं कि अच्छा, यही हैं रामदरश मिश्र। गाँव से गुजरने की प्रक्रिया में वे स्थान आते रहे जहाँ मित्रों के साथ खेलता-कूदता था। गाता-बजाता था, झगड़े करता था, फिर प्यार से लिपट जाता था।

गाँव से बाहर निकल गया। यों ही एक चक्कर लगा आने की इच्छा हुई। दिखाई पड़ा भगड़ा नाला, जिसके द्वारा रात्री बरसात के दिनों में फुँफकारती हुई आती थी और पूरे क्षेत्र को बाढ़ की लपेट में ले लेती थी। इसी के तट पर नाग पंचमी को लड़कियाँ पुतलियाँ दहाती थीं और हम बच्चे डण्डों से उन्हें पीटते थे। यहाँ पर पाकड़ का एक पेड़ था जिस पर न जाने कितनी दुष्ट रूहों का डेरा था और हम यहाँ से गुजरते हुए काँपने लगते थे। थोड़ी दूर पर घण्टहवा पीपल दिखाई पड़ रहा था जिस पर मृतकों के घण्टे बाँधे जाते थे और जिस पर कई भूतों का बसेरा माना जाता था। इस रास्ते से होनेवाली अपनी तमाम यात्राएँ याद आ गयीं। पढ़ाई के लिए जा रहा हूँ, मेले में जा रहा हूँ, बारात के साथ जा रहा हूँ, सम्बन्धी के यहाँ जा रहा हूँ, जा रहा हूँ, जा रहा हूँ।

ये सारी यात्राएँ मेरा अनुभव बनती चली गयीं और उतरती रही हैं मेरी रचनाओं में। काली माई के थान से गुजरा, बरम बाबा की पीढ़ी से गुजरा, डीह राजा की मृत्तिका-मूर्ति से गुजरा। लगा था कि वैज्ञानिक सोच और विकास के तेज प्रवाह में सभी बह गये होंगे लेकिन आश्चर्य कि उनके आसपास की। चहल-पहल वैसी ही थी, बल्कि बढ़ गयी थी। मैं एक-एक कर अपने खेतों से गुजरता रहा। यद्यपि चकबन्दी की हलचल में सभी इधर से उधर हो गये हैं तो भी क्या? जहाँ वे पहले थे वहाँ से होकर जाते समय एक अद्भुत रोमांच हो आता था। लगता था मैं उनमें खाद फेंक रहा हूँ, उन्हें गोड़ रहा हूँ, निराई कर रहा हूँ। धान, कोदो, सावां, टागुन, मक्का, अरहर, फिर गेहूँ, जौ, सरसों, सीसी, मटर आदि की रंग-बिरंगी उमड़ती फसलों के सौन्दर्य के बीच भूला भूला-सा, फूला-फूला-सा बह रहा हूँ कटिया कर रहा फसल ढोकर खलिहान में ला रहा हूँ।

खलिहान की याद आते ही मैं अपने खलिहान में पहुँच गया। पाकड़ के दो बड़े-बड़े, उनके बीच फैला हुआ गाँव भर का खलिहान, चैत। का महीना, पाकड़ों में से फूटते किसलय, उनके बीच बोलती हुई कोयल, दंवरी की ध्वनियाँ, रात को किसी के कण्ठ से फूटता हुआ चैता क्या अद्भुत दृश्य होता था। दंवरी हाँकते हुए, अनाज ओसाते हुए, अनाज और भूसा ढो-ढोकर घर लाते हुए। मेरे दिन मुझमें इतने गहरे समाये हुए हैं कि शहर के बन्द सुविधामय कमरे में भी दस्तक देते रहते हैं। इन तमाम स्थानों, दृश्यों, क्रिया-कलापों, प्रकृति और समाज की प्रीतिकर-अप्रीतिकर छवियों से लदा-फदा मेरा बचपन और कैशोर-काल आज मुझे सामने से पुकार रहा है। यों मेरे संस्कारों से घुला-मिला होकर मौन भाव से तो सदा मेरी रचनाओं में समाता ही रहता है।

हाँ, यह वह पोखरा है जिसमें हम बच्चे मस्ती से नहाते थे और खेतों में से उखाड़कर लायी हुई घास इसके तट के पानी में पटक देते थे धुलने के लिए। मस्ती और भय का द्वन्द्व हर जगह चला करता था। इस पोखरे के पास बंसवारी है। लोग कहते थे कि इसमें चुड़ैलें रहती हैं, जो रात को नाचती-गाती हैं। दूसरी ओर इमली का एक बड़ा-सा पेड़ है, उस पर भी भूतों का डेरा है। खुद पोखरे में ही कितने बुड़वे रहते हैं। इस भय के बीच भी हम बच्चे इस पोखरे में खुलकर नहाते थे, हाँ अकेले नहाने में भय लगता था। यह काल्पनिक भय इतना बद्धमूल हो गया कि जीवन भर साथ चलता रहा-पहले चेतन में, बाद में अचेतन में। द्वन्द्व हमारी मस्ती और काल्पनिक भय का ही नहीं था, यथार्थ का भी था। जेठ की भयानक लू के बाद जब आषाढ़ बरसता था, तब जड़-चेतन आनन्द से नाच उठते थे, धरती रसमयी होकर अपने भीतर से फसलें उगलने लगती थी। एक ओर पुरवाई में लहराती फसलों की हँसी आँखों में भावी समृद्धि का लोक रच देती थी, दूसरी ओर आनेवाली बाढ़ की आशंका से आँखें थर्रा-थर्रा उठती थीं। रिमझिम-रिमझिम बरसते सावन के संगीत के साथ भादों के जलप्लावन की दहाड़ टकराती रहती थी। जाड़ों में खेतों में झूमती फसलें गा रही होती थीं और घरों में भूख-उपवास का सन्नाटा पसरा होता था। हाँ, फागुन-चैत यानी बसन्त में एक सम लक्षित होता था। संगीत प्रकृति में भी होता था, खेतों में भी होता था, पेट में भी होता था और कण्ठों में भी होता था। पूरा कछार भीतर से बाहर तक विविध छवियों की चित्र-पाटी बन जाता था। और यह सब कुछ विह्वल भाव से मेरे भीतर उतरता रहता था। इतना उतरा कि बाद में मेरी कविताओं में, कहानियों में, उपन्यासों में, निबन्धों में, आत्मकथा में बार-बार उमड़ता रहा और लगता रहा कि अभी और कुछ है, और कुछ है जो उमड़ने से रह गया है।

बार-बार तुम आये, छाये छाये छाये
लेकिन हर बार लगा पहले पहले आये
आँखों ने कहा बार-बार देखा है
लेकिन हर बार खिंची नयी-नयी रेखा है।
ओंठों ने कहा तुम्हें बार-बार गाया है।
लेकिन हर बार रहे तुम जैसे अनगाये

'अरे खाना-पीना नहीं होगा?' पत्नी ने आवाज दी। मैं चौंक पड़ा और एकाएक गाँव से लौटकर अपने कमरे में आ गया।

'हाँ-हाँ क्यों नहीं, कितने बजे हैं?'

'दो बज रहे हैं।'

'चलो भाई यह काम भी कर लेते हैं।'

खाना खाकर आराम करने के लिए लेटा और अपनी अगली कहानी के बारे में सोचने लगा। सोचता-सोचता अनजाने मन फिर भटक गया अपने अतीत की ओर सम्पादक ने पत्र लिखा था कि आप कहानी के साथ अपनी रचना-यात्रा पर एक छोटा-सा लेख भी भेजिएगा। शायद इसीलिए कहानी पर सोचता हुआ मन उस जीवन यात्रा की ओर चला गया जो मेरी रचना-यात्रा का स्रोत रही है। याद आने लगीं एक के बाद एक खण्डित यात्राएँ। उर्दू मिडिल करने के बाद विशेष योग्यता की पढ़ाई करने ढरसी गया। ढरसी मेरे गाँव से पाँच कोस की दूरी पर एक गाँव है। वहाँ पण्डित राम गोपाल शुक्ल विशेष योग्यता की कक्षा चलाते थे। वहाँ मैं साल भर रहा। घर से दूर होने का यह पहला अवसर था। शुक्ल जी का आचार्यत्व, अनेक अनजाने गाँवों से आनेवाले नये-नये छात्रों का साथ, अपने हाथ से खाना बनाने की क्रिया, कई महत्त्वपूर्ण व्यक्तियों का वहाँ आना-जाना और उनसे परिचय, ये सब नये अनुभव थे जो शुरू में बेगाने लगते रहे, फिर अत्यन्त प्रिय बन गये। अपेक्षाकृत एक बड़ी दुनिया में मेरे कवि की पहचान प्रसारित होने का अद्भुत सुख था। शुक्ल जी मेरी कविताएँ सँवारते थे। कोर्स में इतना कुछ था, जिससे गुजरकर हिन्दी साहित्य के व्यापक साहित्यिक परिप्रेक्ष्य के ज्ञान की शुरुआत हुई। तुलसी, सूर, बिहारी, रत्नाकर, हिन्दी साहित्य का इतिहास, अलंकार, छन्द आदि कितने विषय थे-जिन्होंने मुझे साहित्य की समझ का प्रारम्भिक उजास दिया। यह परीक्षा पास करने के बाद मैं विशारद और साहित्यरत्न करने के लिए बरहज चला गया। मेरा सामाजिक परिप्रेक्ष्य और भी बड़ा हुआ, सुख-दु:ख के अनुभवों का विस्तार हुआ और साहित्य के कुछ और व्यापक लोक से साक्षात्कार हुआ। वहाँ मेरे कवि को कुछ और बड़ा परिप्रेक्ष्य प्राप्त हुआ लेकिन शुरू से जिस ढर्रे पर कविताएँ लिख रहा था उसी ढर्रे पर लिखता रहा, हाँ उस ढर्रे में परिष्कार होता गया। मुझे दिशा देनेवाला कोई ऐसा कवि या आचार्य नहीं मिला जो तत्कालीन साहित्य-रचना के मार्ग से अवगत कराया। हाँ, मेरी कविताओं की चर्चा अवश्य वहाँ चारों ओर फैली हुई थी।

सन् 45 में मैट्रिक की पढ़ाई करने बनारस गया तो वहाँ प्रसाद जी के अत्यन्त प्रिय शिष्य डॉ. राजेन्द्र नारायण शर्मा के सम्पर्क में आया। उन्होंने दो काम किये एक तो मेरी कविताओं का खूब परिष्कार कर उन्हें छायावादी रंग दे दिया, दूसरे उन्होंने अपने प्रभाव से 'आज', समाज, संसार आदि समाचार पत्रों में मेरी कविताएँ खूब प्रकाशित करायीं और मैं बनारस में व्यापक तौर पर जान लिया गया। जब सन् 46 में बी.एच.यू. में प्रविष्ट हुआ तब धीरे-धीरे नयी चेतना के कई कवियों के सम्पर्क में आया और मुझे बताया गया कि जिस शैली में मैं लिख रहा हूँ, उसका समय बीत चुका है। अब कविता नये स्वर और नये मार्ग ग्रहण कर चुकी है। धीरे-धीरे मैं इस नये मार्ग की ओर उन्मुख हुआ और 50 के पास तक आते-आते लगा कि मेरी कविता नया रूप ले रही है। मैं प्रगतिवाद की ओर उन्मुख होने लगा और इसी समय नयी कविता की यात्रा भी शुरू हुई। इसलिए मेरी कविता नयी कविता की उस धारा में शामिल होने लगी जिसकी दृष्टि प्रगतिवादी और वस्तु सामाजिक है तथा जिसकी भाषा लोक भाषा के करीब जाने के प्रयास में है। मुझे लगने लगा कि मेरी बात (चाहे वह प्रकृति ये सम्बद्ध हो, चाहे प्रेम से, चाहे सामाजिक समस्याओं से अधिक सघन और मूर्त तथा भाषा अधिक सहज और ठोस हो रही है।

मैं प्रगतिवाद की ओर उन्मुख तो हुआ किन्तु अपने स्वभाव के अनुसार ही उसके साहित्यिक या राजनीतिक दल से सम्बद्ध नहीं हुआ। इसीलिए मैंने वस्तु और शिल्प दोनों ही क्षेत्रों में अपने को मुक्त रखा-किसी वर्जना या स्वीकृति के कटघरे में कैद नहीं हुआ। आज तक मैं समय के साथ तो चल रहा हूँ किन्तु समय के खण्डों को ले-लेकर जो वाद उछाले जाते रहे हैं और जिनके बैनर के नीचे आ-आकर लोग-बाग इतिहास में अपने-अपने नाम दर्ज कराते रहे हैं, मैं उनसे नहीं जुड़ पाया। इसका खामियाजा मुझे भोगना पड़ा। यानी जब साहित्य के इतिहास को वादों का इतिहास मान लिया जाएगा तब वादों से असम्बद्ध लोगों की इतिहास में जगह कहाँ से हो सकती है? इतना विश्वासपूर्वक कह सकता हूँ कि मेरे अनुभव में जो सत्य उभरा, वही मेरे साहित्य में आया। उस अनुभव को मैंने एक सामाजिक दृष्टि से रचा। गाँव से लेकर बनारस, बड़ौदा, अहमदाबाद, नवसारी, दिल्ली तक जो मेरी जीवन यात्रा रही, उसने इन स्थानों और समयों के विविध अनुभवों को मेरे भीतर संचित किया और वे अनुभव मेरी रचनाओं में उतरते रहे कभी कविता बनकर, कभी

कहानी बनकर, कभी उपन्यास बनकर, कभी निबन्ध बनकर, कभी संस्मरण और यात्रावृत्त बनकर तथा कभी आत्मकथा बनकर।

बनारस में मैंने जीवन के अमूल्य दस वर्ष व्यतीत किये। मैट्रिक से लेकर पी.ए.डी. की शैक्षिक यात्रा की। इस दरम्यान वहाँ कितना कुछ सीखा, पाया, सुख-दु:ख भोगा, अनेक महत्त्वपूर्ण मित्रों का साहचर्य तथा स्नेह पाया। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी जैसे महान गुरु का आशीषमय सान्निध्य प्राप्त किया और मेरा जीवन तथा साहित्य दोनों समृद्ध हुए। नौकरी को लेकर मैं बहुत भटका हूँ और न जाने कितनी बार अपरिचय को परिचय में उतारने की जद्दोजहद करता रहा हूँ। बी.एच.यू. का छात्र था। एम.ए. में प्रथम श्रेणी में प्रथम स्थान प्राप्त किया था किन्तु वहाँ नौकरी नहीं लगी। पी.एच.डी. का शोध प्रबंध जमा कर दिया। अब तो काशी से दूर कहीं जाना ही था। अब तो काशी से दूर कहीं जाना ही था। पी. एच. डी. करते समय परिवार के साथ एक किराये के कमरे में रहता था। हेमन्त पैदा हो चुका था। पास में पैसा नहीं था और हेमन्त लगातार बीमार चलता था। उन दिनों की तस्वीर मेरी 'शाम' 'बन्द कर लो द्वार' आदि कई कविताओं में देखी जा सकती है। 'एक रात' कहानी भी उसी तकलीफ की कथा है। इन तकलीफों के बीच भी बनारस मुझे बहुत प्रिय लगता था। यहाँ हमारे साहित्यकार मित्रों की एक आत्मीय दुनिया थी। किन्तु जब यहाँ नौकरी नहीं लगी और पी. एच. डी. का शोध प्रबन्ध जमा कर दिया, तब अपनी यह प्यारी नगरी छोड़नी ही थी। दर्द फूट पड़ा-

आखिरी मोड़ ना कि हाँ कहिए और रोयें कहाँ-कहाँ कहिए
राह यह आज तक बहाना थी / आज से जाएँ हम, जहाँ कहिए

बनारस छोड़ना पड़ा और नौकरी लगी बड़ौदा में। मन भर आया-अपने शहर ने आश्रय नहीं दिया और इन अनजाने-अनपहचाने शहर ने मुझे अपनाया। 'बड़ौदे की शाम' निबन्ध में यह प्रतीति व्यक्त हुई। फिर वहाँ भी अजनबीपन का एक अजब दर्द था। साल भर बाद मुझे गुजरात विश्वविद्यालय के सेण्ट जेवियर कॉलेज से जुड़ने का अवसर मिला तो वहाँ चला गया। एक अजनबीपन में अपनी दुनिया खोजने लगा। फिर नयी जगह का सन्नाटा, नयी उदासी, अकेलापन, संघर्ष। फिर वहाँ से नवसारी, फिर अहमदाबाद और फिर दिल्ली। दिल्ली में भी पी.जी.डी.ए.वी. कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय का सान्ध्य संस्थान, फिर साउथ कैम्पस मेरी शैक्षिक यात्रा कितनी कटी-फटी, टूटी-फूटी और निरन्तर यायावरी रही है। न जाने मेरी कितनी कविताओं, कहानियों और उपन्यासों में यह यायावरी जिन्दगी बोलती है-

भटक रहा खानाबदोश-सा/ आज यहाँ, कल वहाँ
छोड़ जानी-पहचानी हुई बस्तियाँ
रोज बसाता घर / घर रोज है छूट जाता
ज्यों ही जुड़ा कहाँ से क्षण भर / रिश्ता हाय टूट जाता है
फिर-फिर अनजाने चेहरे हैं मुझे घूरते
अनजानी राहों के नये-नये भटका / वे अनजानी रीतियाँ
अजनबी स्वर, पहनावे / अनजानी आँखों से अनजानी टकराहट
कानों पर उठती-गिरती अनजानी आहट / भटक रहा खानाबदोश-सा

लेकिन बड़ौदा से लेकर दिल्ली तक की यायावरी जिन्दगी में भिन्न-भिन्न स्थानों से कितना कुछ पाया, इसका गहरा अहसास मुझे है। इस यात्रा ने मुझे नये-नये अनुभव दिये, नयी-नयी जीवन-शैली दी, नये-नये साहचर्य दिये, नयी-नयी चुनौतियाँ एवं तज्जन्य विश्वास दिये, मेरी दृष्टि को व्यापकता दी और कुल मिलाकर एक बड़ा संसार दिया और मैं तथा मेरी रचनात्मकता दोनों निरन्तर समृद्ध हुए। मैंने शहरों से शहरों तक की यात्राओं में बहुत कुछ पाया किन्तु लगता है कि मूलधन तो गाँव के जीवन का अनुभव ही रहा, बाद के अनुभव तो ब्याज की तरह लगते रहे। इसलिए शहरों में रहते हुए भी मुझमें और मेरी रचनाओं में गाँव बार-बार आता रहा-पात्र बनकर, स्थितियाँ बनकर, प्राकृतिक मानवीय सौन्दर्य बनकर तथा दृष्टि बनकर।

लोग प्राय: पूछते हैं-'आप कविता से कहानी या उपन्यास में कब और क्यों आये?' मेरा उत्तर होता है-'मैं कविता से नहीं, कविता के साथ कहानी या अन्य विधाओं में आया। कविता के साथ मैं निरन्तर चलता रहा हूँ, यहाँ तक कि अन्य विधाओं में भी अपने कवि की उपस्थिति अनुभव करता रहता हूँ।' सच बात तो यह है कि मैं तैयारी करके विधाओं में नहीं आया, सहज भाव से आया। बनारस में नये साहित्यकारों का जो लोक था, उसमें कवि भी थे, कहानीकार भी थे और मैं गाहे-बगाहे कहानी या निबन्ध लिख दिया करता था। जब मुझे लगा कि मेरे भोगे हुए यथार्थ का कुछ ऐसा रूप-रंग है जो अपनी अभिव्यक्ति के लिए कविता के अतिरिक्त भी कोई विधा चाहता है, तब मैं कहानी की ओर भी झुका और धीरे-धीरे मेरा झुकाव सघन होता गया। साथ-साथ व्यक्ति व्यंजक निबन्ध का भी सहारा लेता रहा। सन् 60 तक तो मेरी कहानी यात्रा बहुत मन्द गति से चलती रही किन्तु उसके बाद उसकी रफ्तार में तेजी आ गयी। कहानियों में ग्राम, यथार्थ के साथ-साथ शहर का यह यथार्थ भी आता रहा, जो मेरे आसपास घटित होता था।

सोचा नहीं था कि उपन्यास भी लिखूँगा। जब कहानी-लेखन में हाथ कुछ सध गया और इच्छा जागने लगी कि गाँव के यथार्थ के विविध आयाम को परस्पर अनुस्यूत कर कुछ लिखा जाए, तब उपन्यास की ओर मेरी दृष्टि गयी। उन्हीं दिनों 'मैला आँचल' प्रकाशित हुआ और उसने रास्ता दिखा दिया कि कैसे ग्राम जीवन के समग्र यथार्थ को एक साथ चित्रित किया सकता है। इस उपन्यास से प्रेरित होकर मैं उपन्यास लेखन में प्रवृत्त हो राया, परिणामस्वरूप 'पानी के प्राचीर' आया। लगा यह विधा बड़ी सशक्त है और कुछ-कुछ मेरी पकड़ में आ रही है। प्रवाह बह चला। फिर तो क्रमश: 'जल टूटता हुआ, बीच का समय, सूखता हुआ तालाब, अपने लोग, रात का सफर, आकाश की छत, बिना दरवाजों का मकान, दूसरा घर, थकी हुई सुबह', और 'बीस बरस' उपन्यास आये जिनमें गाँव से लेकर शहरों तक की जिन्दगी के उस यथार्थ के चित्र हैं। जिनके बीच में से मैं गुजरता रहा हूँ।

आलोचना मेरे मन से नहीं पेशे से जुड़ी हुई विधा रही है। एम.ए. में 'ऐतिहासिक उपन्यासकार वृन्दावन लाल वर्मा विषय पर लघु शोध प्रबन्ध लिखा, फिर पी. एच. डी. का शोध प्रबन्ध लिखा। उसके बाद पत्र-पत्रिकाओं के आग्रह पर आलोचनात्मक निबन्ध और समीक्षाएँ लिखता रहा। 'हिन्दी उपन्यास : एक अन्तर्यात्रा' -'हिन्दी कहानी : अन्तरंग पहचान', 'छायावाद का रचना-लोक', 'हिन्दी कविता : आधुनिक आयाम' आदि सभी पुस्तकें मुझसे साग्रह लिखवायी गयी हैं। अपनी स्वत:स्फूर्त प्रेरणा से मैंने कुछ ही आलोचनात्मक निबन्ध लिखे हैं। हाँ, व्यक्ति व्यंजक निबन्ध तो मेरे अन्तरतम से फूटते रहे हैं। निबन्ध मेरी मुख्य विधाओं में शामिल नहीं है, कभी-कभार ही लिखता रहा हूँ। ये निबन्ध पत्र-पत्रिकाओं में तो छप जाते रहे किन्तु पुस्तक के रूप में छापने को कोई तैयार नहीं था। हाँ, पहली बार जब प्रभात प्रकाशन ने 1982 में मेरा 'कितने बजे हैं' निबन्ध संग्रह प्रकाशित किया, तब मेरे इस रूप पर भी लोगों की दृष्टि गयी और मुझे भी अपनी इस विधा के प्रति कुछ अधिक लगाव महसूस होने लगा। उसके बाद व्यक्ति व्यंजक निबन्धों तथा संस्मरणों की सर्जना में मैं अधिक प्रवृत्त होता गया और मेरे कई संग्रह प्रकाशित हुए। यात्रा-वर्णन भी मेरे परवर्ती लेखन में एक आयाम बनकर जुड़ा। विदेश की कुछ यात्राएँ करने का अवसर मिला। देश में तो इच्छा न होने पर भी यात्रा करनी पड़ जाती ही रही है। दोनों प्रकार की यात्राओं ने कभी मुझसे कहा कि 'हमें अपनी रचना में रूप देते क्यों नहीं?' और उन्हें रूप मिलना शुरू हो गया।

'सहचर है समय' मेरी आत्मकथा है। सपने में भी नहीं सोचा होगा कि मैं आत्मकथा लिखूँगा। इसका कारण यह है कि मेरे मन में कहीं यह था कि 'आत्मकथा' उनकी होनी चाहिए जिन्होंने किसी क्षेत्र में बहुत जद्दोजहद के साथ बड़ी हैसियत बनायी हो और जिनकी जीवन-यात्रा में समाज कहीं अपने को देख रहा हो और कुछ शक्ति, कुछ आदर्श, कुछ मूल्य अर्जित कर रहा हो। मैं तो एक सामान्य व्यक्ति हूँ, मुझमें समाज को क्या मिलेगा? लेकिन धीरे-धीरे ऐसा कुछ बनता गया कि सहज ही, अनजाने ही मेरी आत्मकथा रूप पाती गयी। मेरी रचनाओं पर एम.ए., एम.फिल. और पी.एच.डी. का शोध कार्य करनेवाले छात्र बार-बार मुझे पत्र लिखकर मेरे जीवन और साहित्य से सम्बन्धित सूचनाएँ माँगते रहे। शुरू में तो भेज देता रहा किन्तु जब शोधार्थियों की संख्या बढ़ती गयी, तब सोचा-क्यों न एक बड़ा-सा निबन्ध लिख दूँ जिसमें मेरे जीवन के शुरुआती दिनों की सच्चाइयाँ संक्षेप में दर्ज हों। 'जहाँ मैं खड़ा हूँ' नाम से एक लम्बा निबन्ध लिखा। वह खूब पसन्द किया गया। फिर मुझसे आग्रह किया गया कि मैं अपने बचपन के जीवन यथार्थ को विस्तार से कह डालूँ। बात मुझे भी अच्छी लगी और अपनी स्मृति के सहारे बचपन के दिनों की एक लम्बी यात्रा कर डाली। इसे 'जहाँ मैं खड़ा हूँ' नाम से किताबघर ने प्रकाशित किया।

यह पुस्तक लोगों को बहुत प्रिय लगी। किताबघर के सत्यव्रत शर्मा ने आग्रह किया कि क्यों न मैं कई खण्डों में अपने समूचे जीवन का वृत्तान्त लिख डालूँ। मैंने उनके प्रस्ताव पर सोचा। उधर मेरे ऊपर काम करनेवाले शोध छात्रों की संख्या बढ़ती गयी और मेरे जीवन के बारे में जानने की उनकी इच्छा का दबाव भी। मैंने तय किया, चलो भाई, यह भी कर डालो और धीरे-धीरे यह भी कर डाला। मुझे सदा इस बात का ध्यान रहा कि कथा मेरी ही नहीं, मेरे माध्यम से मेरे परिवेश की भी हो। मैं छोटा हुआ तो क्या हुआ, मेरा परिवेश तो बड़ा है। पाठकों को उसके महत्त्व का तो बोध होगा ही। इस बात का भी ध्यान रहा कि अपने को चाहे कितना उधेड़ लो, यथार्थ के नाम पर गन्दगी परोसने और बिना वजह दूसरों को नंगा करने का छिछोरापन न व्यक्त होने पाये। हमारे समाज में अनेक बुनियादी समस्याएँ हैं जिसे हम टकराते हैं, लहूलुहान होते हैं और जीने की शक्ति अर्जित करते हैं, आत्मकथा में इनसे रूबरू होने के स्थान पर यथार्थ के नाम पर चटखारे ले-लेकर यौन-प्रसंगों को परोसना, अपनी सड़ी कुण्ठाओं का प्रसाद बाँटना, मस्ती के नाम पर पीने-पिलाने की निरर्थक आवारा प्रसंगों का लज्जतदार वर्णन करना, मुझे प्रिय और सार्थक नहीं लगता। इस तरह की आत्मकथाओं के माहौल में मेरी आत्मकथा फीकी जैसी लगती है, तो लगे, मुझे दुख नहीं है।

रामदरश मिश्र से ओम निश्चल की बातचीत

रामदरश मिश्र

15 अगस्त 1924 को डुमरी में जन्मे रामदरश मिश्र शतायु हो रहे हैं। एम.ए., पीएच.डी की शिक्षा प्राप्त कर प्राध्यापक और फिर प्रोफेसर के पद से सेवानिवृत्त वे अपनी 110 पुस्तकों के साथ विभिन्न विधाओं में स्थापित कलम हैं। अनेक अकादमिक एवं साहित्यिक पदों पर रहते हुए उन्होंने 22 शीर्ष सम्मान अर्जित किए हैं। उनकी अनेक पुस्तकें नवोदित रचनाकारों के लिए मील का पत्थर साबित होंगी। उनकी रचनाओं का अंग्रेजी के साथ ही अनेक भाषाओं में अनुवाद किया गया है एवं अनेक रचनाएँ बी.ए., एम.ए.के., पाठ्यक्रमों में पढ़ाई जा रही हैं। उन पर समीक्षात्मक ग्रंथ भी प्रकाशित किए गए हैं एवं अनेक शोधार्थियों द्वारा उन पर पीएच.डी की उपाधि प्राप्त कर ली गई है। उनसे प्रो. ओम निश्चल जी की ताजा बातचीत का यह अंश प्रकाशित करते हुए प्रसन्नता है। हम उनके स्वस्थ और प्रसन्न रहने की कामना करते हैं।

- संपादक

ओम निश्चल

जन्म - 15 दिसंबर 1958।
शिक्षा - एम.ए., पीएच.डी।
रचनाएँ - आलोचना पर पुस्तकें प्रकाशित। कतिपय सम्पादित।
सम्मान - उ.प्र. हिंदी संस्थान के आचार्य रामचंद शुक्ल आलोचना सम्मान सहित अनेक सम्मान।

इसी 15 अगस्त, 2023 को हिंदी के जाने माने लेखक रामदरश मिश्र जी सौंवें साल में प्रवेश कर रहे हैं। इसी तिथि से उनकी जन्म शताब्दी प्रारंभ हो रही है। जीवित लेखकों में वे शायद हिंदी के पहले लेखक हैं जो अपनी जीवन-सक्रियताओं के साथ यह शताब्दी मनाएँगे। हिंदी के अप्रतिम कवि, कथाकार, गद्यकार रामदरश मिश्र जी हिंदी के तीसरे लेखक हैं जिन्हें पिछले साल बिड़ला फाउंडेशन द्वारा सरस्वाती सम्मान प्रदान किया गया। इससे पूर्व वे हिंदी अकादमी के शलाका सम्मान, बिड़ला फाउंडेशन के व्यास सम्मान, साहित्य अकादमी पुरस्कार, दयावती मोदी कवि शेखर सम्मान व भारत भारती से सम्मानित हो चुके हैं। वे हिंदी के गाँधीवादी व प्रगतिशील मानव मूल्यों के ऐसे रचनाकार हैं जिनकी लेखनी ने सदा सत्य का वरण किया है व विभिन्न रचनात्माक विधाओं को अपनी मेधा व संवेदना से सींचा है। सौ से अधिक कृतियों के रचनाकार प्रो.रामदरश मिश्र से हिंदी के सुधी कवि आलोचक डॉ. ओम निश्चल की बातचीत।

रामदरश मिश्र जी से मिलना हर बार एक नया सुख देता है। पिछले साल 2022 में जब साहित्य अकादमी ने लेखक से मिलिए कार्यक्रम के लिए उन्हें आमंत्रित करने की योजना बनाई तो लगा उत्तर जीवन में उनके लिए कहीं भी निकलना मुश्किल-सा होता जा रहा है। ऐसे में वे इस कार्यक्रम के बहाने दिल्ली और दिल्ली के बाहर के पाठकों-लेखकों के सम्मुख होंगे और अपने अनुभव साझा करेंगे तो यह तो बहुत ही अच्छी बात है। अब उनका शताब्दी वर्ष आ पहुँचा है। सौ सालों का भरा पूरा जीवन उन्होंने जिया है। इस वय में भी वे उत्तीम नगर के अपने आवास के ड्राइंग रूम में कुछ न कुछ लिखते-पढ़ते हुए देखे जा सकते हैं। लोग उनसे मिलने आते रहते हैं इस बात से ही वे धन्यता का अनुभव करते हैं और कई पीढ़ियों के लेखकों से संवाद बनाए रखते हैं। इस अवसर पर मुझे लगा उनसे साहित्य, जीवन, कविता, कहानी और उनके कथासंसार में आए चरित्रों के बारे में, जानने का प्रयत्न करूँ, इसी आशय से उनसे एक शाम मुलाकात हुई तो कुछ प्रश्न यूँ ही बनते गए, जैसे कि वे बातचीत का हिस्सा हों।

ओम निश्चल :- कविता किस तरह आपके चित्त को खोलती है?

रामदरश मिश्र :- देखिए, कविता मैं तभी लिखता हूँ जब कोई अनुभव मुझे भीतर से भरता है। चाहे किसी सौंदर्य की अनुभूति, चाहे, पराये दुख-दर्द की अनुभूति हो। वह जब मेरे भीतर चहल-पहल मचाती है तब उसे रूपायित करने की बेचैनी मुझे हो जाती है और उसके रूपायित होने के बाद मुझे मुक्ति का-सा आनंद मिलता है। आपने देखा होगा इधर के मेरे कई संग्रहों में कई निर्जीव वस्तुओं पर भी लंबी-लंबी कविताएँ शामिल हैं। वे निर्जीव वस्तुएँ तो न जाने कब से सबके सामने पड़ी होती हैं लेकिन किसी दिन जब यह चेतना जागृत होती है कि अरे ये वस्तुएँ निर्जीव होकर भी हमारे या समाज के जीवन के साथ कितने जुड़ी हुई हैं-जुड़ी हुई ही नहीं बल्कि उनके जीवन को न

जाने कितने सुख देती हैं तो उनके बारे में सोचते हुए बहुत सुख मिलता है। जैसे एक दिन मैंने मेज पर कविताएँ लिख दीं तो मेज तो न जाने कब से हमारे या आपके कमरे में पड़ी होती है लेकिन उस दिन एकाएक महसूस हुआ कि मेज के साथ हमारे जीवन की कितनी सुखद क्रियाएँ जुड़ी हैं। इसी तरह कलम कविता ने मुझे एक दिन अपने अनेक आयामी रचना कर्म से जोड़ दिया। हुआ यह कि मजिस्ट्रेट ने कोई दुखद फैसला देकर कलम को तोड़ दिया था तो मुझे लगा इसमें कलम का क्या कसूर और इस तरह कलम के साथ मेरे, आपके, उनके और तमाम लोगों के जो विविध संबंध हैं वे एक कविता में उजागर हो गए। निर्जीव वस्तुओं पर लिखी गईं अनेक सजीव कविताएँ उपस्थित हैं। तो मैं कहूँ कि कविता लिखकर सचमुच ही मुझे बहुत सुख मिला है। इसीलिए तो जब भी अवसर मिलता है, मैं कविताएँ लिखता हूँ। कविता ही है कि वह मेरी अभिव्यक्ति बन जाती है और ऐसा विश्वास है कि वह अनेक पाठकों से जुड़ कर उनकी संवेदना को भी जगाएगी और उन्हें भी वैसा ही सुख देंगी जैसा सुख मेरे चित्त को मिलता रहा है। यही तो है जो चित्त के द्वार खोलती है और भीतर से समृद्ध करती है।

प्रश्न :- अंतर्वस्तु, शिल्प और अंदाज-ए-बयां में वह क्या चीज ज्यादा महत्त्वपूर्ण होती है जो आपकी निगाह में ठहरती है?

उत्तर :- देखिए कविता तो मुख्यत: हमारे भीतर बसे हुए भाव जगत को रूपायित करने के लिए ही लिखी जाती है और वह केवल सुंदर या सुंदर शब्दों का पुंज नहीं है। जहाँ तक मेरा संबंध है, जब मेरे भीतर उमंगित होती हुई संवेदना, अनुभूति या चेतना अपने को व्यक्त करना चाहती है तब वह स्वयं अपने अनुकूल शब्दों, प्रतीकों और बिम्बों का चुनाव करती चलती है। मेरे सारे ही लेखन का यह स्वभाव रहा है कि पहले से योजना बनाकर पूरी कविता या पूरी कहानी या पूरा उपन्यास नहीं लिखता। मेरे भीतर जो कथ्य छन कर आता है वह लिखने के क्रम में रूप धारण करता चलता है। एक के बाद एक आयाम उसमें स्वत: जुड़ते चले जाते हैं। लेकिन यह बात सत्य है कि यदि कोई कविता, कविता है तो कथ्य को अपने में रोपाई करने के लिए काव्यात्मक भाषा में ढलना ही होता है। सपाट भाषा में सपाट ढंग से कोई बात कह दी जाए तो वह बात तो होगी लेकिन वह कविता नहीं होगी। कविता वह होती है जिसके भीतर से अनेक संकेत फूटते हैं।

प्रश्न :- कभी सपाटबयानी भी एक मूल्य हुआ करती थी। कविता की निर्मिति में उसका योगदान होता था। नामवर जी जैसे आलोचकों ने भी कविता में सपाटबयानी को चिन्हित किया है। एक दौर में इसी सपाटबयानी से एक से एक बड़ी कविताएँ भी संभव हुई?

उत्तर :- सपाटबयानी की चर्चा एक विशेष समय में हुई थी जब लोगों को लगा की कविता अनेक जटिल प्रयोगों, खंडित बिंबों, दुरूह भाषा में उलझ कर पाठकों के लिए असंप्रेष्य बनती जा रही है और कुछ जटिल कवियों या आलोचकों के बीच प्रशंसित होकर भी अनेक पाठकों से दूर होती जा रही है। तब उसके विरोध में कहा गया कि कविता में सपाटबयानी होनी चाहिए। लेकिन सपाटबयानी का अर्थ यह नहीं है कविता के भीतर भाव, संवेदना आदि की गहरी उपस्थिति ही न हो। एक तरह से सपाटता को सहजता के अर्थ में लिया जाए तब तो ठीक है। लेकिन सतही कथन के रूप में यदि वह है तो कविता ही नहीं है और अब तो सपाटबयानी का प्रयोग भी नहीं होता, प्रयोग सहेजता का ही होता है।

जहाँ तक मैं अपनी कविताओं की बात करूँ तो मेरी कविताओं में कथन या कथ्य की उलझन नहीं हैं। चाहे भाषा हों, भाव हों; सभी बहुत काव्यात्मक रूप में चलते रहते हैं और मैं गर्व से कहता हूँ कि वे पाठकों को बहुत गहरे प्रभावित करते हैं। एक छोटी सी घटना सुनाऊँ। मेरे यहाँ एक पत्रकार आए। बातचीत में उन्होंने कहा कि मैं कविता नहीं पढ़ता हूँ। मुझे समझ में नहीं आती तो मैंने कहा, 'अच्छा मेरी एक कविता सुनिए।' उसे सुनकर वे उछल पड़े और कहने लगे, अरे यह तो मेरी समझ में आ गई। कहने का अर्थ यही कि अंतत: कविता का प्रयोजन और उसका उद्देश्य ही है कि वह पाठक और भावक की समझ में आए।

प्रश्न :- रामदरश जी ने अनेक विधाओं में लिखा है। शुरुआत कविताओं से की; फिर कहानी और उपन्यास में आए; फिर आत्मकथा, गजल, निबंध, डायरी और संस्मरण विधाओं में कुछ न कुछ लिखते रहे और धीरे-धीरे बहुत कुछ लिख गए हैं। आलोचना में भी उनकी अनेक कृतियाँ हैं जो आज विश्वविद्यालयों में पढ़ाई जाती हैं। कहानी कविता और उपन्यास सब पर उनकी समावेशी आलोचनात्मक कृतियाँ प्रकाशित हैं। इसे ध्यान में रखते हुए मैंने पूछा वे विधाओं का चयन अपने लिए कैसे करते हैं?

उत्तर :- 'ओम जी मुझे लगता है हो सकता है, जब कोई लेखक लेखन शुरू करता है तब वह सोचता हो कि मैं कविता लिखूँगा या अन्य विधाओं में लिखूँगा यानी वो पहले से तय कर लेता है

कि कौन सी विधा उसका मार्ग है। मैंने ऐसा कुछ नहीं किया। जो कुछ हुआ, अपने आप सहज भाव से हुआ। अब देखिए यह भी होता है कि कुछ लोग औरों की देखा देखी कविता शुरू करते हैं। लेकिन जब मैं प्राइमरी में पढ़ता था तभी मेरे मन में कविता लिखने की इच्छा जाग पड़ी थी। जब मैं अपनी पाठ्यपुस्तक की कविताएँ पढ़ता था तो सहज ही मन कहता था कि काश मैं भी ऐसा कुछ लिख पाता। तो किसी दिन कुछ कविता के रूप में लिख ही दिया और यह क्रम चल पड़ा और अब तक चलता रहा है।

लेखक जब बहुत वरिष्ठ हो जाता है तब वह बैठकर सोचता नहीं है कि मैं किस विषय पर कहानी लिखूँ या किस विषय पर कविता या किस विषय पर अन्य विधा में लिखूँ। इन विधाओं की रचनाएँ स्वत: ही अपने समय से जुड़ती चली जाती हैं। सन 50 तक तो सोचा भी नहीं था कि मैं कहानी लिख लूँगा। लेकिन स्वत: कहानी लिखने की इच्छा मेरे मन में जाग गई। उपन्यास लिखूँगा, कभी सोचा नहीं था लेकिन एक समय ऐसा आया कि मुझे महसूस हुआ कि गाँव के जीवन पर जो मैं खंड-खंड कहानी या कविताएँ लिख रहा हूँ उसे क्यों न समग्र भाव से व्यक्त किया जाए और इस तरह पानी के प्राचीर की रचना हुई। तो एक वरिष्ठ लेखक का मन ऐसा हो जाता है कि उसके भीतर जो तरह-तरह के यथार्थ व्याप्त हैं, वैसे ही अपनी विधाएँ चुन लेते हैं। मुझे तो कभी यह सोचना ही नहीं पड़ा कि मैं तैयारी करके निबंध लिखूँगा, संस्मरण लिखूँगा या अन्य विधाओं में लिखूँगा। यह सब स्वयं अपना मार्ग निर्धारित कर लेते हैं। मैंने कई विधाओं में लिखा है किंतु यह सच है कि कविता और कथा ही मेरी केंद्रीय विधाएँ हैं।

अक्सर लेखकों से यह जानने की इच्छा होती है कि उनके लिखने पढ़ने का समय कब होता है, उनकी रचना प्रक्रिया का ढंग क्या होता है। 'पेरिस रिव्यूज' के अंकों में अनेक लेखकों की बातचीत से गुजरने का अवसर मिला है और उनसे अनेक तरह के सवाल किए जाते रहे। बल्कि कहूँ कि ऐसे इंटरव्यू हिंदी की परंपरा में बहुत कम हैं जिसमें लेखक का लगभग एक नया आविष्कार होता है।

प्रश्न :- आप किस समय लिखते-पढ़ते हैं?
उत्तर :- रचना प्रक्रिया के साथ यह सवाल भी जुड़ा चलता है कि कोई कैसे, कब, किस तरह लिखता है। यह सही है कि सबका लिखने का अलग-अलग ढंग होता है; अलग-अलग समय होता है। जहाँ तक मेरा सवाल है, मैंने मुख्यत: सुबह के समय ही लिखा है। सौभाग्य से मुझे शिक्षक की नौकरी मिली जिसमें अपने लिखने-पढ़ने के लिए काफी समय मिल जाता रहा है। मुझे भी लिखने के लिए पर्याप्त अवकाश प्राप्त होता था। मैंने कहा न कि मैं मुख्यत: सुबह को ही लिखता रहा हूँ। हाँ, जिस दिन 10 या 11 बजे के आसपास क्लास होती थी, उस दिन नहीं लिखता था। मेरी लेखनी तो सुबह को एक-दो घंटे ही चलती थी पर लिखने के लिए तो मुझे पूरा खाली दिन चाहिए होता था यानी जिस दिन पूरी छुट्टी होती थी उस दिन मैं लिखता था। मेरे लिखने के लिए सन्नाटा नहीं चाहिए था। कुछ लोग तो रात के सन्नाटे में लिखते हैं। लेकिन मैं जब लिखता हूँ तब यह तो आवश्यक होता ही है कि कमरे में सन्नाटा हो पर बाहर दुनिया की चहल-पहल मची हो। मेरे लिखने का ढंग यह भी रहा है ओम जी कि मैं एक साथ बहुत नहीं लिखता। एक बार में तीन-चार पृष्ठ लिखता हूँ, फिर छोड़ देता हूँ, फिर लिखता हूँ, फिर छोड़ देता हूँ। जहाँ तक मुझे ज्ञात है कि बहुत से लोग अपनी रचना का पूरा का पूरा ड्राफ्ट बना लेते हैं और उसके अनुसार लेखन करते रहते हैं। मैं ऐसा नहीं कर पाता। देखिए मैंने कई बड़े-बड़े उपन्यास लिखे हैं लेकिन लिखने से पहले उनकी कोई रूपरेखा नहीं बनाई। जिस लोक को मैं रचना चाहता हूँ वह अरूप और गड्ड-मड्ड रूप में मेरे भीतर पड़ा होता है और मैं उसके यथार्थ के जंगल में कहीं से बैठ जाता हूँ और फिर लिखने के क्रम में रास्ते से रास्ता जुड़ता चला जाता है। आगे क्या हो सकता है लिखने के क्रम में कलम ही सूँघती चलती है। कई बार तो ऐसा होता है कि जिसकी मैंने कल्पना भी नहीं की होती है वह दृश्य सहज भाव से केंद्र में आ जाता है।

प्रश्न :- कितने ड्राफ्ट में आप कोई रचना पूरा करते हैं?
उत्तर :- मैं तो बस एक ही बार लिखता हूँ। हाँ, उसे दोहराने के क्रम में जहाँ कहीं आवश्यक होता है कुछ फेरबदल कर लेता हूँ।

प्रश्न :- रामदरश मिश्र का कथा संसार बहुत समृद्ध है चार बड़े उपन्यास और ग्यारह मझोले कद के उपन्यास, इतने सारे चरित्र गोरखपुर, बनारस, गुजरात, दिल्ली का पूरा समय और समाज उनकी दृष्टि पथ में रहा है कि अनेक चरित्रों से उनकी भेंट होती रही है। वे उनकी कहानियों उपन्यासों में आते रहे हैं। उन चरित्रों की क्या आपको याद है जो आपके उपन्यास और कहानियों में आए हैं और जो आपके भीतर अभी भी पूरी तरह गुंजायमान हों, उनकी कोई याद आपके भीतर रची बसी हो?

उत्तर :- सोचना पड़ेगा ओम जी क्योंकि मेरे सभी उपन्यासों में कोई न कोई पात्र ऐसा आया है जो अपने दर्द से दूसरों में दर्द जगाता है। जैसे मेरा उपन्यास अपने लोग है। उसमें एक पागल पात्र है, नाम भूल रहा हूँ। शायद उमेश नाम है। वह मेरा परम मित्र रहा है और बहुत अच्छा संभावनाशील मार्क्सवादी कभी रहा है। हम दोनों में प्रगाढ़ मैत्री थी। जब मेरा प्रतिनिधि प्रमोद अपने पिता के आग्रह पर दिल्ली की नौकरी छोड़ कर गोरखपुर के एक कॉलेज में जाता है तब देखता है कि उसका दोस्त उमेश तो पागल हो गया है। वह प्रमोद के यहाँ आता है लेकिन चारों ओर मारा-मारा फिरता है। प्रमोद को अतीत के दिन याद आते हैं और उमेश का दर्द जैसे उसका अपना दर्द बन जाता है। उसे पता चलता है अत्यंत प्रतिभाशाली उमेश पागल इसलिए हुआ है कि रेलवे की नौकरी में उसकी प्रतिभा की घोर उपेक्षा हुई जिस रेलवे की पत्रिका के संपादन का अधिकारी वह था, उसे किसी अत्यंत योग्य व्यक्ति को दे दिया गया। उसके पागलपन का एक और कारण उसका दांपत्य जीवन भी था। धोखे से इतने सुंदर लड़के की शादी चुपचाप एक अंधी लड़की से कर दी गई थी और वह चुपचाप अपने अंदर यह दुख ढोता रहा और धीरे-धीरे असंतुलित होता गया। ऐसे अन्य उपन्यासों में भी कई स्त्रियाँ हैं, कई अभिशप्त वर्ग के लोग हैं जिनके दुख के साथ चलता हुआ उन्हें अपने कथा संसार में रूपायित करता रहा हूँ।

अक्सर लेखक परकाया प्रवेश में पटु होते हैं। कहा जाता है कि वे दूसरे के दर्द की कहानी शायद ज्यादा अच्छे ढंग से सुना सकते हैं। लेकिन अक्सर यह भी कहा जाता है कि लेखक के रचना संसार में कहीं न कहीं वह स्वयं विद्यमान होता है। किसी न किसी विचार, दृष्टि या चरित्र के रूप में।

प्रश्न :- अपने कथा संसार में अपने आपको कितना जिया है?
उत्तर :- ओम जी मेरे कथा संसार में जो भी पात्र हैं, वे मेरे गाँव या शहर के जाने-पहचाने लोग हैं और कई उपन्यासों में किसी रूप में मैं भी आया हूँ जैसे 'जल टूटता हुआ' में सतीश के रूप में मेरे बड़े भाई साहब हैं और उनके छोटे भाई चंद्रकांत के रूप में काफी दूर तक मैं हूँ। 'अपने लोग' में प्रमोद के रूप में भी मैं काफी दूर तक हूँ। गुजरात पर आधारित उपन्यास 'दूसरा घर' मैं गौतम के रूप में तो मैं ही हूँ और भी उपन्यासों में कुछ-कुछ मात्रा में मेरी उपस्थिति देखी और महसूस की जा सकती है।

प्रश्न :- रामदरश मिश्र इन दिनों जबकि वे सौ की दहलीज पर हैं; उन्हें लिखते हुए आठ दशक से ज्यादा का समय हो गया है। इस बीच उनके तमाम मित्र समकालीन और समवयस लेखक इस दुनिया से चले गए। अपने घर में गाँधी के जीवन दर्शन को जीते हुए अपने भीतर अपने गाँव, अपने चरित्रों, अपने समाज और उस देशज मनुष्यता को बचाए हुए हैं जो किसी-किसी में ही दिखाई देता है। गाँधी कहते थे 'वैष्णव जन तो तेने कहिए जो पीर पराई जाने रे।' क्या लेखक को वैष्णव जन होना चाहिए।

उत्तर :- विचारधाराएँ तो अनेक हैं चाहे वह सनातन धर्म, बौद्ध धर्म और जैन धर्म हो या मार्क्सवाद हो, सब के अनेक तरह के विचार हो सकते हैं- समाज को लेकर, लोक कल्याण को लेकर तरह-तरह का चिंतन हो सकता है लेकिन सारे वैविध्य के बावजूद सब का मूल्य तो मनुष्य का कल्याण ही है न, जैसा कि तुलसीदास ने कहा है 'परहित सरिस धरम नहिं भाई।' कबीर ने 'ढाई आखर' कहकर प्रेम की परिभाषा की। अन्य विचारकों ने भी मानव मूल्यों की बात कही है। पीर पराई जानना हर विचारधारा का मूल है, की वर्ड है। कोई भी धर्म या विचारधारा मनुष्य के अहित की बात नहीं करती है। हाँ यदि विकृत मस्तिष्क के लोग इन विचारधाराओं का दुरुपयोग करते हैं और उसके मूल को नहीं समझते तो बात और है।

ओम निश्चल
जी-1/506 ए, उत्तम नगर
नई दिल्ली 110059
मो.- 9810042770

रामदरश मिश्र
आर-38, वाणी विहार,
उत्तर नगर, नई दिल्ली-110059
फोन - 7303105299

रामदरश मिश्र एक शिनाख्त

– अलका सिन्हा

प्रलेक प्रकाशन की चर्चित श्रृंखला शिनाख्त के अंतर्गत डॉ. स्मिता मिश्र द्वारा संपादित मूर्धन्य साहित्यकार डॉ. रामदरश मिश्र के व्यक्तित्व और कृतित्व पर एक नायाब संकलन प्रकाशित हुआ है। डॉ. स्मिता ने साहित्य और मीडिया पर प्रचुर लेखन किया है। यशस्वी रचनाकार रामदरश मिश्र की 14 खंडों में प्रकाशित रचनावली का भी संपादन कर आपने एक महती उपलब्धि हासिल की है। उल्लेखनीय है कि डॉ. स्मिता मिश्र लिम्का बुक ऑफ रिकॉर्ड्स द्वारा प्रथम महिला खेल संपादक के लिए सम्मानित की जा चुकी हैं। एक मंझे हुए खिलाड़ी के आत्मविश्वास से भरे अंदाज में पुस्तक की रूपरेखा दिखाई पड़ती है जिसमें शीर्षस्थ साहित्यकार रामदरश मिश्र जी के जीवन और रचना के विविध पड़ावों की यात्रा क्रमबद्ध रूपायित होती है। डॉ. रामदरश मिश्र के लेखन को आपने पाठकीय और आलोचकीय दृष्टि से तो देखा ही है, सुयोग्य पुत्री के रूप में भी स्मिता जी का विश्लेषण-संपादन अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। लेखक की सिरे से की जाने वाली पड़ताल शिनाख्त की श्रृंखला को महत्त्वपूर्ण बनाती है। व्यक्ति से लेखक बनने की प्रक्रिया और लेखक के भीतर समाहित व्यक्ति की छानबीन का यह अंदाज भी कम दिलचस्प नहीं! पुस्तक में आमंत्रित लेख, संस्मरण, आलोचनाएँ इत्यादि उन महत्त्वपूर्ण साहित्यकारों, आलोचकों द्वारा लिखित हैं जिनमें से अधिकतर एक लंबे समय से मिश्र जी के रचना संसार से संबद्ध हैं। कई तो ऐसे भी हैं जिन्हें किसी रचना के गढ़े जाने की पृष्ठभूमि की भी जानकारी है। ऐसी पूर्वपीठिकाओं और संस्मरणों ने लेखक और उसके लेखन को जानने-समझने में बहुत सार्थक भूमिका निभाई है। उल्लेखनीय है, समकालीन साहित्य के महत्त्वपूर्ण आलोचकों-साहित्यकारों ने मूर्धन्य लेखक डॉ. रामदरश मिश्र की कई-कई कोणों से शिनाख्त कर, इस पुस्तक को समृद्ध किया है।

पुस्तक : रामदरश मिश्र एक शिनाख्त
संपादन : स्मिता मिश्र
प्रकाशक : प्रलेक प्रकाशन, 702, जे-50, ग्लोबल सिटी, विरार (वेस्ट), मुंबई, महाराष्ट्र-401303
मूल्य : 760 /- रु.

संपादकीय के जरिए स्मिता मिश्र कहती हैं, 'वे कविता के साथ-साथ उपन्यास और कहानियाँ भी लिखते गए। सन 1961 में प्रकाशित उनके पहले आंचलिक उपन्यास 'पानी के प्राचीर' ने लोगों का ध्यान आकृष्ट किया। प्रभाकर माचवे ने खुले मन से इस उपन्यास के महत्व को रेखांकित किया। उसके पश्चात 'जल टूटता हुआ' बड़ा उपन्यास आया और उसने धीरे-धीरे मिश्र जी की औपन्यासिक क्षमता के वैशिष्ट्य को उजागर कर दिया।' (पृ-09) स्मिता यह भी उद्घाटित करती हैं कि विधा कोई भी रहे, रचना में जब भी कोई मार्मिक संदर्भ आता है या सौंदर्य चित्रण की आवश्यकता होती है, तब कविता वहाँ आकर अपनी आभा फैला जाती है।

संपादकीय में लिखी गई ये पंक्तियाँ डॉ. मिश्र को समझने में आधार का काम करती हैं। वे मुख्यत: बसंत के कवि हैं। गाँव संस्कृति बनकर उनकी रचनाओं में उजागर होता है। मिश्र जी की रचनाओं में संस्कारवान समाज की न जाने कितनी ही छवियाँ दीप्त होती रहती हैं और मानव मन को उल्लसित करते फूल-पौधे दिखाई पड़ते हैं। उनकी लेखनी में आंचलिक हास-परिहास, ऋतुओं का रास-रंग और त्यौहारों में मुखरित लोकजीवन, उनकी शब्दावली को प्राणवंत करता है। इसके मूल में उनका बचपन और बचपन की पगडंडियाँ रही हैं। अपने आत्मसंघर्ष के बारे में वे स्वयं लिखते हैं कि उनका जीवन दो नदियों के बीच घिरे कछार से उपजा है जहाँ दूर-दूर तक सड़क नाम की कोई चीज नहीं थी।

'अभावों से अभिशप्त अनंत टूटे-फूटे कच्चे घर थे जिनमें चुपके-चुपके न जाने कितने सपने टूट-टूट कर सो जाते थे, कितने आँसू रात भर बहकर सवेरे सूख जाते थे, कितने चूल्हों की आँचें कभी जागकर कई-कई दिनों तक बुझी रहती थीं। शरीरों पर फटे-पुराने वस्त्र झूलते रहते थे। अपने समय पर दहाड़ती हुई बाढ़ आती थी और खेतों को लूट ले जाती थी। उनके साथ

आते थे जमींदार के कारिंदे, कुर्क अमीन, पटवारी, थानेदार और न जाने कौन-कौन से लोग, जोंक की तरह दुर्बल देहों से खून चूसने के लिए। मेरा भी घर इन्हीं घरों में से एक था। और मैं भी इन तमाम लोगों में से एक व्यक्ति था। लेकिन कैसे कहूँ कि मैं उनमें से होकर उन्हीं में विलीन हो गया था। न जाने क्यों मैं बचपन से ही कुछ तलाशने लगा था। कोई पगडंडी मुझे ले जाकर कहीं छोड़ती थी तो मैं दूर दिशा में देखने लगता था— वहाँ और उसके बाद क्या है।' **(पृ. 11)**

डॉ. मिश्र ने बेहद ईमानदारी से अपने समय के अभावों और उसके साथ किए गए संघर्ष का उल्लेख किया है। यह उल्लेख उन्हें उन डिजाइनर लेखकों से अलग और विशिष्ट बनाता है जो वातानुकूलित कमरों में बंद होकर बाढ़ और अकाल पर रचना लिखते हैं जो बेरोजगारी और भुखमरी की समस्या को उजागर करने के लिए उपन्यास लिखने मनोरम पहाड़ों पर चले जाते हैं। यह डॉ. मिश्र के व्यक्तित्व की विशेषता है कि वे ईमानदार लेखन करते हैं न कि बिकाऊ। कठिन संघर्ष में भी वे अडिग खड़े रहे हैं तो इसलिए कि वे ऊबड़-खाबड़ पगडंडियों पर चलते रहे, चिकनी सड़कों ने उन्हें कभी आकर्षित नहीं किया। खुश होने के लिए उन्हें नए परिधानों या पकवानों का इंतजार नहीं था। वे तो फागुन की मस्ती में मतवाले हो जाते।

'मन फागुनी हवाओं में उड़ा-उड़ा फिरता था। डहडहाती चाँदनी में एक स्वप्नलोक साकार हो उठता और मैं देखता कि अभावों के मारे हुए लोग फागुनमय हो उठे हैं। वे मस्ती में पगलाये हुए यहाँ-वहाँ, जब-तब फाग गा रहे हैं। कबीर गा रहे हैं, फटे कपड़ों पर पानी और रंग खेल रहे हैं। गलियों से गुजरते हुए देवरों पर न जाने कब किस भाभी द्वारा फेंका गया पानी का छपाका आ गिरता था और हँसी-मजाक का एक फौआरा फूट पड़ता था।' **(पृ 13)**

यही कारण है कि मिश्र जी की रचनाओं में हँसी-खुशी लोकतांत्रिक रूप में आती है। सभी को हँसने-गाने का अधिकार है, वह अमीरों की कॉपीराइट न होकर सभी के लिए प्रच्छन्न भाव से दिखाई पड़ता है। खुशियाँ खरीदने के लिए मॉल न जाकर किसी बगीचे में चले जाइए। देखिए, किसी ताजा खिले फूल से चेहरे पर कैसी रौनक दौड़ पड़ती है। शायद यही कारण है कि मिश्र जी के नायक 'हीरो' टाइप न होकर भी आकर्षित करते हैं। पाठकों को उसमें अपनी छवि दिखाई पड़ती है और वे सहज ही मान लेते हैं कि अगर वह ऐसा कर सकता है तो वास्तविक जीवन में हम ऐसा क्यों नहीं कर सकते! जब यह लेखक शहर को देखता है तब वहाँ भी अपने तरह की दुनिया ढूँढ़ ही लाता है। अहमदाबाद उसका दूसरा घर बन जाता है। उसका अपनापन, उसके शहरीपने से आगे निकल जाता है।

यों शिनाख्त की शुरुआत तो संपादकीय से भी दिखने लगती है मगर पाठकों, आलोचकों की नजर से देखा जाए तो डॉ. फूलबदन यादव का लेख मिश्र जी के व्यक्तित्व और कृतित्व को समानांतर रखते हुए आद्योपांत यात्रा चित्रण करता चलता है। यह लेख मिश्र जी के क्रमिक विकास को समझने में बहुत सहायक होता है। पगडंडियों से चिकनी सड़कों तक के सफर को जाना जा सकता है। मिश्र जी का पारिवारिक परिवेश, उनके माता-पिता, भाई-बहन और बाद में पत्नी तथा बच्चों से भी सहज परिचय कराता यह लेख शिनाख्त का आधार बनता है। मिश्र जी की शिक्षा, साहित्य में रुचि और रोजगार के साथ-साथ साहित्य के लिए छटपटाहट भी साक्ष्य भाव से इस लेख में उद्घाटित होता है। व्यक्ति के भीतर की पड़ताल करता अत्यंत संवेदनशील लेख है डॉ. ओम निश्चल का जिसे वे निस्पृह आत्मीयता के साथ प्रस्तुत करते हैं। उनके लेखन और प्रकाशन की निरंतरता पर भी रोशनी डालता है यह लेख। पुरस्कारों और विवादों से अप्रभावित मिश्र जी के लेखन कर्म को ही नहीं, डॉ. निश्चल का लेख मिश्र जी के जीवन मर्म को भी प्रस्तुत करता है। विष्णु प्रभाकर, डॉ. विजयेंद्र स्नातक, नित्यानंद तिवारी, डॉ. विश्वनाथ प्रसाद तिवारी, प्रकाश मनु जैसे वरिष्ठ आलोचकों की कसौटी पर परखा और समकालीन लेखकों द्वारा नए संदर्भों में परखा गया यह ग्रंथ शोध के नए मापदंड स्थापित करता है। डॉ. चंद्रकला त्रिपाठी, सविता मिश्र के रोचक संस्मरण पुस्तक को आत्मीय आभा से उद्भासित करते हैं।

मिश्र जी के औपन्यासिक विस्तार को उजागर करते कई लेख इसमें संग्रहीत हैं। अलग-अलग उपन्यासों पर केंद्रित लेख मिश्र जी की लेखनी की विविधता और उसके पैनेपन को समझने में बहुत सहायक होती है। डॉ. ललित शुक्ल की पड़ताल 'आकाश की छत' को लेकर है तो ज्ञानचंद गुप्त का लेख 'पानी के प्राचीर'

पर केंद्रित है। 'जल टूटता हुआ' को लेकर डॉ. प्रेम कुमार की समीक्षा निश्चय ही उल्लेखनीय है। इसी प्रकार वेदप्रकाश अमिताभ, डॉ. विवेकी राय, डॉ. अंजलि तिवारी आदि के लेख मिश्र जी के उपन्यासों का केंद्रित विश्लेषण प्रस्तुत करते हैं। मिश्र जी की रचनाधर्मिता पर वेद मित्र शुक्ल निरंतर लिखते रहे हैं और यहाँ उन्होंने किशोर उपन्यास 'एक बचपन यह भी' के साथ-साथ मिश्र जी की कविताओं पर भी अपना दृष्टिकोण रखा है। इसी प्रकार डॉ. चंद्रकला त्रिपाठी ने भी मिश्र जी के कविता संसार के नायाब बिंबों की खोज कर पाठकों के लिए प्रस्तुत किया है। डॉ. विश्वनाथ प्रसाद तिवारी जी का महत्त्वपूर्ण लेख है जो मिश्र जी की कविताओं में सामाजिक यथार्थ को रेखांकित करता है और इस बात की शिनाख्त करता है कि बदलते समय का सच उजागर करती ये कविताएँ किस प्रकार प्रासंगिक बनी रहती हैं। पृष्ठ 118 से 167 के बीच मिश्र जी की चुनिंदा कविताओं को अंकित किया गया है ताकि पाठक कविताओं पर आलोचना को पढ़ते हुए सीधे-सीधे कविता से सामंजस्य स्थापित कर सके। शिनाख्त की भाषा में कहें तो साक्ष्य स्वरूप ये कविताएं स्वयं अपनी गवाही में मौजूद दिखाई पड़ती हैं।

रामदरश मिश्र ने साहित्य की लगभग हर विधा में लिखा है और भरपूर लिखा है। इस लिहाज से इस लेखक की शिनाख्त कोई आम शिनाख्त नहीं है। लेखक भले ही एक हो किंतु उस पर विविध विधाओं के आलोचकों ने अपनी राय लिखी है और रचनाओं को अपनी तरह से परखा है। कहानियों की ओर चलें तो डॉ. नरेंद्र मोहन, डॉ. महावीर सिंह चौहान, डॉ. गिरीशचंद्र श्रीवास्तव, डॉ. गुरचरण सिंह, सुरेंद्र तिवारी और महेश दर्पण जैसे कथाकारों के आलेख इस परख को मूल्यवान बना रहे हैं। डॉ. अंजलि उपाध्याय ने मिश्र जी के संस्मरणों पर अपनी विवेचना रखी है तो डॉ. सविता मिश्र ने मिश्र जी के सान्निध्य में संजोया बेहद आत्मीय संस्मरण लिखा है। रमेश कुंतल मेघ के लालित्य पूर्ण लेख 'वैसा शतरंज खेला तो नहीं, परख लिया' इस शिनाख्त को सार्थक बनाते हैं।

यों मिश्र जी हमेशा ही स्वयं को यात्रा भीरू बताते रहे हैं मगर इसके बावजूद उन्होंने खूब यात्राएं की हैं और उन यात्राओं पर पर्याप्त लिखा भी है। पृष्ठ 666 से 737 के बीच उनकी कुछ प्रतिनिधि रचनाओं को अंकित किया गया है जिसमें 'पांडिचेरी की ओर' की गई यात्रा, आत्मकथा अंश, निबंध, संस्मरण, डायरी आदि की झलक भी साक्ष्य स्वरूप दिखाई पड़ती है।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का दिनांक 26.06.1976 का पत्र इस शिनाख्त का सबसे महत्त्वपूर्ण पन्ना है। यह पत्र एक गुरु की ओर से अपने शिष्य के प्रति आश्वस्ति भी प्रगट करता है। उपन्यास 'अपने लोग' के संदर्भ में आचार्य जी का मानना है कि गोरखपुर के माध्यम से मिश्र जी ने समूचे पूर्वांचल को जीवंत रूप में चित्रित कर दिया है। यथार्थवादी दृष्टि से इसके प्रत्येक पक्ष को देखा गया है। इसके पात्र परिचित मालूम पड़ते हैं। आचार्य जी आश्चर्य प्रकट करते हुए लिखते हैं, 'कमाल है! संज्ञा जैसे पात्र की सृष्टि करके तुमने मानवी के रूप में एक ऐसी देवी को चित्रित किया है जिसे साधारणत: यथार्थवादी लोग भूल जाया करते हैं। शिक्षा और राजनीति के क्षेत्र की स्वार्थपरता अत्यंत स्पष्ट होकर उभरी है। इस प्रदेश के सांस्कृतिक धरातल का पलायन भी प्रकट हो गया है। सन् 60 के आस-पास की चारित्रिक शिथिलता को इतने यथार्थ और जीवंत में शायद चित्रित नहीं किया गया। तुमने निस्संदेह एक बड़े अभाव की ही पूर्ति की है। मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई है। मेरी बधाई स्वीकार करो।' (पृ. 415)

निस्संदेह, हिंदी साहित्य में सदी के महानायक डॉ. रामदरश मिश्र की सुदीर्घ और समृद्ध रचनात्मकता को प्रस्तुत करने में शिनाख्त बहुत सफल रहा है। सरकंडे की कलम को साध कर लिखने वाले सर्जक रामदरश मिश्र तकनीकी युग के साथ भी उसी आत्मविश्वास के साथ खड़े हैं। गाँव और शहर की मध्यस्थता करते हुए उनकी रचनाएँ गाँव को प्रगतिशील बनाने का संदेश दे रही हैं तो शहर के फ्लैटों के बीच कच्ची मिट्टी के लिए भी स्थान सुरक्षित कर रही हैं।

रामदरश मिश्र की रचनाओं की शिनाख्त निश्चय ही उत्सवधर्मिता के मंगलगान के रूप में की जाती है।

371, गुरु अपार्टमेंट
प्लाट नं. 2, सेक्टर 6
द्वारका, नई दिल्ली 110075
मो.-9910994321

मेरा कमरा : डायरी

– कमलेश भारतीय

इधर लगातार किताबें आ रही हैं। कोशिश रहती है कि सबको थोड़ा, ज्यादा या पूरा पढ़ ही डालूँ। मित्रों की उम्मीदें होती हैं। मेरी भी होती हैं जब अपनी किताब भेजता हूँ। दिल्ली जाना हुआ अपने नये कथा संग्रह 'सूनी माँग का गीत' की पांडुलिपि सौंपने हंस प्रकाशन के हरेंद्र तिवारी के पास! कार्यालय में अन्य प्रकाशन भी रैक में सजाये हुए थे और उनमें डॉ. रामदरश मिश्र की पुस्तक 'मेरा कमरा' दिखी तो लोभ संवरण हुआ इसे पाने का! हरेंद्र ने मुझे उपहार स्वरूप यह किताब दे दी। हार्दिक आभार हरेंद्र मेरे प्रिय रचनाकार की किताब देने के लिये!

लगभग बीस साल से ऊपर मेरा डॉ. रामदरश मिश्र के साथ नाता जुड़ा उनकी बेटी डॉ. स्मिता मिश्र के माध्यम से। वे यहाँ गुरु जम्भेश्वर विश्वविद्यालय में आई थीं बीस साल पहले रिफ्रेशर कोर्स करने। पूरे इक्कीस दिन का। तभी रिपोर्टर के तौर पर इसकी कवरेज करते-करते मेरा स्मिता से परिचय हुआ और इनके ही हाथों मैंने अपना कथा संग्रह 'एक संवाददाता की डायरी' मिश्र जी के लिये भेजा। उन्हें कहानियाँ पसंद आईं और वे हिसार मेरे निमंत्रण पर आये सर्वोदय भवन में इसके लोकार्पण के मुख्यातिथि बन कर! जसवीर त्यागी भी साथ थे। इनका इंटरव्यू भी किया जो मेरी पुस्तक यादों की धरोहर में संकलित है।

पुस्तक : मेरा कमरा
लेखक : रामदरश मिश्र
प्रकाशक : हंस प्रकाशन, नई दिल्ली।
मूल्य : 515/- रु.

खैर! अब आते हैं मेरा कमरा की ओर जिसकी शुरुआत इसी से होती है-मेरा कमरा। इसमें बचपन में गाँव के कमरे से लेकर अहमदाबाद, बनारस, दिल्ली और अन्य जगहों के कमरों के जिक्र के साथ-साथ इनके निरंतर विकास और फैलाव के बहुत ही प्यारे संस्मरण हैं। कहाँ -कहाँ, क्या-क्या रचा, कहाँ कौन-सी संतान का जन्म हुआ और इन सारे पड़ावों में धर्मपत्नी सरस्वती जी कैसे-कैसे हर परिस्थिति में इसका साथ देती आ रही हैं और सबसे खुशी की बात है कि दोनों उम्र के इस पड़ाव पर भी सक्रिय हैं और हर पल को जीते हैं-चाहे होली हो, पुस्तक मेला हो, साहित्यिक समारोह हो, साहित्य अकादमी हो, सब जगह साथ-साथ हैं! हम साथ-साथ हैं तो जैसे इनके लिये ही बना है और दो जिस्म मगर इक जान हैं हम भी कह सकते हैं! यह एक प्रकार से डायरी है यानी दैनंदिनी! छोटे से लेकर बड़े सुख-दुख, खुशी गमी सब इसमें दर्ज हैं। प्रतिभाशाली बेटे, एक्टर हेमंत मिश्र का दुखांत भी सामने आया तो बेटी स्मिता के प्रति लाड दुलार भी कि कभी एक बार भी नही डांटा! बेटे शशांक की, स्निग्धा और उपवन की प्यारी सी बातें! यह सारा संसार तो है ही, साहित्य का संसार भी है। कितने लोग डॉ. मिश्र का सान्निध्य पाने को आकुल व्याकुल हैं और वे कितनी विनम्रता से सबको समय देते हैं। साहित्य की गुटबाजी पर भी कहा है लेकिन वे किसी गुट में नहीं गये फिर भी हर बड़ा पुरस्कार इनके दरवाजे पर आया! यह बड़ी बात और बड़ी सीख। कुछ संस्मरण शराबी, घर की कामवाली बाई और सड़क पर एक्सीडेंट कर पैसा ऐंठने वालों पर भी हैं तो कुछ बनारस, दिल्ली और गाँव से भी जुड़े हैं। नवम्बर और फरवरी इनके प्रिय महीने हैं। पुस्तक मेला कभी छोड़ना नहीं चाहते। वादा करके तोड़ना अच्छा नहीं लगता। किसी युवा लेखक को निराश नहीं करते। अनेक रचनाकारों की पुस्तकों का जिक्र है। बेशक मैं भी जब अपनी नयी पुस्तक भेजता हूँ तो स्मिता इनकी फोटो जरूर भेजती हैं!

यह मेरा कमरा यानी डायरी बहुत कुछ सिखाती है-जीवन व्यवहार, साहित्य समाज और देश दुनिया की चिंता भी। सब कुछ इसमें समाया है! डॉ. रामदरश मिश्र की माया है। सबसे अच्छा संदेश यह कि मस्त होकर जीवन जिओ और निरंतर लिखते रहो-मंजिल या सम्मान या पुरस्कार के पीछे भागो मत। अपने आप सब आ जायेगा। गुटबाजी में समय न गवाओ! सिर्फ लिखते रहो, लिखते रहो। अब डॉ. रामदरश मिश्र सौ वर्ष के होने जा रहे हैं इसी पंद्रह अगस्त को। बेटी स्मिता ने एक बड़े आयोजन की योजना बनाई है और मुझे भी आयोजन समिति में स्नेहपूर्वक रखा है।

शतायु हों। मैंने कल ही चंडीगढ़ में डॉ. वीरेंद्र मेहंदीरत्ता जी से भी फोन पर बात की। वे 92 साल के हैं और यह प्रेरणा मिली यह किताब पढ़कर कि वयोवृद्ध रचनाकारों का हालचाल पूछते रहिये। इनकी बड़ी बेटी अपराजिता ने फोन उठाया और बड़ी खुशी से पापा से बात करवाई। इन लोगों का वरद्हस्त बना रहे! यही दुआ है। रामदरश मिश्र जी के शब्दों में जो उन्होंने बहुत डूब कर लिखे हैं और मुझे बहुत प्रिय हैं –

जहाँ आप पहुँचे छलाँगें लगाकर
वहाँ मैं भी पहुँचा मगर धीरे-धीरे
मिला क्या न मुझको ऐ दुनिया तुम्हारी
मोहब्बत मिली है मगर धीरे धीरे!

9416047075

छोटे-छोटे सुख

- जया केतकी

आज से सत्रह वर्ष पूर्व यानी 2006 में छोटे-छोटे सुख निबंध संग्रह आया। भारतीय ज्ञानपीठ से प्रकाशित एस निबंध संग्रह में 15 निबंध संकलित हैं। बिना किसी भूमिका के लिखी गई इस पुस्तक के अंतिम निबंध यानी पंद्रहवाँ आलेख जिसका शीर्षक है-'मेरे जाने के बाद' पर सबसे पहले दृष्टि ठहर गई। पढ़कर लगा कि कोई ऐसा कैसे लिख सकता है अपने ही बारे में। जब बचपन के साथी एक-एक कर जाने लगते हैं तब लेखक स्वयं के लिए लिखता है कि उसकी मृत्यु हो गई है। इस निबंध में उनकी मृत्यु और उससे संदर्भित चर्चा अंकित है। पृष्ठ 120 पर दर्ज इन पंक्तियों को देखें -

कौन मर गया? / 'रामदरश मिश्र।
अरे कवि जी! / अरे डॉक्टर साहब!
अरे भाई साहब! /अरे चाचा जी!
अरे बाबा जी! / अरे बड़ा बुरा हुआ वे मर गए।'

बिल्कुल इसी तरह के वाक्यांश सुनाई पड़ते हैं जब किसी की मृत्यु का समाचार मिलता है परंतु स्वयं के बारे में इस तरह से लिखना कठिन है। यह करते हुए हाथ काँप जाएँ आदमी के, कलम साथ न दे और मन तो बिल्कुल नहीं। इसी का अंत देखिए पृष्ठ 131 पर कितना सुंदर-

'पंडित जी, पंडित जी! उठिए क्या हो गया आपको?'

पत्नी के झकझोरने से मेरी अफ़नाहट भरी नींद खुल गई। देखा चाय की प्याली टेबुल पर रखी है। मैं पत्नी को एकटक देखता रहा फिर उठा और धंधाकर उनसे लिपट गया।

'अरे, अरे क्या कर रहे हैं आप?'

'दूसरे जन्म में तुमसे मिल रहा हूँ।'

इस पुस्तक के सबसे बड़े निबंध 'मैं और मेरी सर्जना', की बात करते हैं। इन 14 पृष्ठों में रामदरश मिश्र जी ने अपने गाँव की, बचपन की, शहर से लेकर दोस्तों-यारों के बीच से गुजरते हुए अपने प्रमुख की चर्चा भी रोचकता से की है। वे लिखते हैं-यह सारी यात्राएँ मेरा अनुभव बनती चली गईं और उतरती रही हैं मेरी रचनाओं में। काली माई के थान से गुजरा, बरम बाबा की पीढ़ी से गुजरा, धीर राजा की मृतिका मूर्ति से गुजरा। लगा था कि वैज्ञानिक सोच और विकास के तेज प्रवाह में सभी बह गए होंगे लेकिन आश्चर्य उनके आसपास की चहल-पहल बढ़ गई थी। मैं एक-एक कर खेतों से गुजरता रहा. . . लगता था मैं उनमें खाद फेंक रहा हूँ, उन्हें गोड़ रहा हूँ, निराई कर रहा हूँ। धान, कोदो, समा, टाँगुन, मक्का, अरहर, फिर गेहूँ, जौ, सरसों, तीसी, मटर आदि की रंग-बिरंगी उमड़ती फसलों के सौंदर्य के बीच भूला-भूला सा, फूला-फूला सा बह रहा हूँ, कटिया कर रहा हूँ, फसल ढोकर खलिहान में ला रहा हूँ।

तभी पत्नी की आवाज सुनकर वे जाग जाते हैं- **'अरे खाना-पीना नहीं होगा।'** और गाँव से लौटकर कमरे में आ जाते हैं। **हाँ-हाँ क्यों नहीं कितने बजे हैं?**

दो बज रहे हैं।

'चलो भाई यह काम भी कर लेते हैं।'

पुस्तक : छोटे-दोटे सुख
लेखक : रामदरश मिश्र
प्रकाशक : भारतीय ज्ञानपीठ, 18 इंस्टीट्यूशनल एरिया, पो.बा.नं.-3113, लोधी रोड, भीष्मपितामह मार्ग, नई दिल्ली-110003

इस संग्रह का अगला निबंध है-'तुम्हारी माँ कहाँ है?' अपने नगर में अंग्रेजी मेम को देखकर वह बच्चा परेशान हो जाता है, जिसे स्कूल में शिक्षक ने यह कह दिया हो कि तुम्हारी जो यह माँ है, यह असली माँ नहीं है यह तो तुम्हारी आया है। यह लोग तुम्हें हिंदुस्तान से यहाँ ले आए हैं।

इस संग्रह के अन्य निबंध हैं छोटे-छोटे सुख, तुम्हारी माँ कहाँ है, रिमझिम बरसत मेघ हे!, चिट्ठियाँ, नदियाँ और राष्ट्रीय एकता, नन्हा पार्क, आज फिर लौट आया हूँ मेरे देश! पानी के रंग : मेरा रचना नेपथ्य, मेला-पुस्तक मेला, नया चौराहा, शरद आयी, दंगे के बीच गुजरात, शोर मत करो, आदमी सो रहे हैं।

रिमझिम बरसत मेघ हे! रामदरश मिश्र जी की एक खास बात है कि वे संदर्भ जहाँ से भी उठाएँ चाहे मैला आँचल शिवानी हो, चाहे रेनू हो वे स्पष्ट लिख देते हैं। बरसात की खूबसूरती के साथ में यह भी बताते हैं कि सोनाई यादव अपनी झोपड़ी में बारहमासे का तान छेड़े हैं -

सावन हे सखी सबद सुहावन / रिमझिम बरसात में गए मेघ हे

एक बिरहनी मैथिली कह रही है -

मास असाढ़ हो रामा, पंथ जनि चढ़िह / दूर ही से गर्जत मेघ रे-रे

चिट्ठियाँ निबंध में अनेक प्रकार की छुट्टियों की चर्चा की है। कई जगह यह चर्चा इतनी रोचक बन पड़ी है कि मन करता है पढ़ते ही चले जाएँ। जैसे की हम सभी जानते चिट्ठियाँ अनेक प्रकार की होती हैं और सबसे ज्यादा प्रभावित करती हैं प्रेम पत्र। यानी प्रेम में लिखी

गई चिट्ठियाँ। उन चिट्ठियों का भी कोई जवाब नहीं जो किसी रचनाकार की रचना को पढ़कर कोई साहित्यकार लिखता है। एक मूर्धन्य कलम से निकली चिट्ठी रचनाकार के लिए बहुत खास बन जाती है। इसके अंत में उन्होंने दर्ज किया है- देश होया परदेश आता हुआ डाकिया अपना लगता है/ लगता है कि वह ठहर कर मेरा नाम पूछेगा/ और कहेगा-'हाँ यह चिट्ठी आपके लिए है।' आधुनिक युवाओं को यह लेख भले ही अप्रासंगिक लगता हो परंतु जिन्होंने चिट्ठियों का रस लिया है उनके लिए यह बहुत मायने रखता है।

'नदियाँ और राष्ट्रीय एकता' यह निबंध पूरा एक शोध आलेख है। सिंधु नदी के संदर्भ में आयोजित एक संगोष्ठी में दिया गया यह व्याख्यान सिंधु नदी की दिव्यता को परिभाषित करता है। वे लिखते हैं-हाँ, लेह में सिंधु नदी भले ही एक पतली नदी दिखाई पड़ती हो किंतु वह इतनी ही तो नहीं है। वह आगे चलकर विराट रूप धारण कर लेती है। वह विराट रूप भले ही पाकिस्तान चला गया हो किंतु है तो इसी नदी का रूप। . . . उसकी मंद-मंद हँसी के साथ उसका भीषण अट्टहास, उसकी निर्मल, शांत संगीतात्मक तन्वंगी धारा के साथ उसका समुद्र आकार गर्व से उसके आकाश को आलोकित लोड़ित करती उत्ताल तरंगें कल्पना में उतर आती हैं। **(पेज 57)**

वे आगे लिखते हैं यह आकस्मिक नहीं कि कवियों और लेखकों ने अपने-अपने क्षेत्र की नदियों का ही आत्मीय चित्रण किया है। उनके साथ उनका अनुभव प्राथमिक होता है अत: अनुभव बिंब बनकर वे आती हैं वह नदियाँ नहीं जो महान तो हैं किंतु जिनसे उनका सीधा सरोकार नहीं। तब मैं खेतों के बीच आम का बगीचा था। मुझ में कई तरह के पेड़ थे। कुछ छोटे, कुछ बड़े, कुछ छतनार कुछ पतले। कुछ के फल बहुत मीठे होते थे, कुछ के खट्टे, कुछ के लहसुनिया। फूलों में तरह-तरह की सुगंध व्याप्त होती थी। सारे पेड़ों के अपने-अपने नाम थे और सबके साथ उन पुण्यात्मा पितरों के नाम जुड़े थे, जिन्होंने इन्हें लगाया था। यह निबंध है नन्हा पार्क। **(पृ. 63)**

पृष्ठ 65 पर वे लिखते हैं-देखते-देखते अनेक खाली प्लाटों में छोटे-बड़े मकान उग आए और मेरे ऊपर दबाव भी बढ़ते गए। बच्चे छुट्टियों में मेरे भीतर क्रिकेट खेलने लगे उनके शोर तथा नन्हें पाँव की धमाचौकड़ी से मैं मुखर हो उठता था भविष्य के सपनों से भरी हुई आँखों की छाँव मुझ पर बरसती थी। . . . दिवाली के दिन भी लोग मेरे भीतर मिलते थे, एक-दूसरे को बधाइयाँ देते थे और फिर पूरे मोहल्ले में घूमने के लिए निकल जाते थे। मेरे चारों ओर दियों की जगमगाहट तो थी और पटाखे भी छूटते थे किंतु पटाखों का कानफोड़ आलम नहीं था। **(पृ. 67)**

एक दिन देखा कि मेरे भीतर पत्थर के बेंच, लोहे की कुर्सियाँ रखी जा रही हैं। मेरे भीतर मेरे चारों और कच्चे रास्ते बनाए जा रहे हैं। फिर देखा उन रास्तों में एक ओर तरह-तरह की लताएँ लगाई जा रही हैं और एक ओर गुलाब के पौधे लगाए जा रहे हैं। . . . और देखिए कि पृष्ठ 72 पर इस पार्क का दुख वे किस तरह प्रकट करते हैं-'अब इसमें या तोशिए हैं या भजन कीर्तन या पीपल और केले के नीचे पूजा-पाठ है या कभी-कभी नेताओं का सम्मान-समारोह है। यह भी सुनने में आता है कि रात को कुछ असामाजिक तत्व भी आते हैं जो सुबह के लिए बोतलें खाली छोड़ जाते हैं।'

खैर मुझे अब भी इस बात से अपनी सार्थकता का अनुभव होता है कि सुबह-सुबह अनेक लोग मेरे भीतर टहलते हैं, थोड़ा व्यायाम करते हैं और मैं उनके तन मन को स्वस्थ रखने का एक साधन बना हुआ हूँ। इस तरह देखा जाए तो यह निबंध एक उद्यान के सुख-दुख की संपूर्ण गाथा है।

'आज फिर लौट आया हूँ मेरे देश' निबंध में लेखक अपनी कविता से आरंभ करते हैं- तुम्हारी उपजाऊ मिट्टी में /तुम्हारे सपूतों ने बो दिए हैं/ जहरीले काँटों और पत्थरों को देखा / उनके बेटे बीच-बीच में उगते संबंधों के नहीं से उगाते हैं संबंध . . . और जब मैं अपने से प्रश्न करता हूँ तब-तब लौट आता हूँ/तुम्हारे पास मेरे देश/ आज फिर लौट आया हूँ। उनका अगला निबंध है-'पानी के रंग : मेरा रचना नेपथ्य में वे लिखते हैं लोग पूछते रहते हैं कि मेरे उपन्यासों के नाम पानी से संबंधित क्यों हैं? अभी-अभी दूसरे शहर में एक मित्र के यहाँ गया था। वहाँ बहुत दिनों से पानी नहीं बरसा था। मेरे जाते ही जमकर बारिश हुई। मित्र बोले आप जहाँ रहेंगे वहाँ जल रहेगा ही।' इस माहौल में कई कविताओं ने जन्म लिया-

रात-रात भर भोरा पिहँ के बैरिन नींद न आए
बड़े भोर सारस के कारे नदिया तीर बुलाए

इन पंक्तियों का जन्म उस समय हुआ जब कवि हो पहली बार शहर आकर बाढ़ का सामना करना पड़ता है। गाँव में खास बात यह होती है कि बाढ़ तो आती है परंतु पानी घर के अंदर नहीं भरता जबकि शहरों में मकान की पहली मंजिल तो डूब ही जाती है।

अगले निबंध का शीर्षक है 'मेला-पुस्तक मेला।' हम सभी मेले से भलीभाँति परिचित हैं। पुस्तक मेले के अलावा भी अन्य त्यौहारों पर लगने वाले मेले हमें बहुत आकर्षित करते हैं। परंतु लेखको साहित्यकारों को पुस्तक मेला बड़ा प्रिय है और आकर्षित भी करता है। लेखक प्रगति मैदान में लगने वाले मेले की बात करते हैं। प्रगति मैदान में विभिन्न प्रकार के मेले प्रतिवर्ष आयोजित किए जाते हैं व्यापार, मेला ऑटो एक्सपो आदि।

और जब किसी मेले में आपको कोई पाठक मिल जाए और आपका

हाथ पकड़ कर अभिवादन करता हुआ बोल पड़े कि मैं आपका पाठक हूँ मैंने आपकी अमुक रचना पढ़ी है तो उस मेले की याद जीवन भर की अमिट छाप छोड़ जाती है। परंतु अब मेले का स्वरूप बिल्कुल बदल गया है। अब वह उत्साह रहता है और न वह पूछ-परख। आधुनिकता की उपभोक्तावादी संस्कृति की गंध मेले में भी व्याप्त हो चली है जो मेले को खाने-पीने का और मनोरंजन का पर्याय बना चुकी है।

स्मार्ट सिटी की दौड़ में सभी शहरों का आमूलचूल रद्दो बदल किया जा रहा है। जहाँ चौराहे थे उन्हें हटाया जा रहा है और जहाँ चौराहे नहीं हैं वहाँ चौराहे बनाए जा रहे हैं। आइए देखें रामदरश मिश्र जी अपने निबंध 'नया चौराहा' में क्या कहते हैं। मुझे कहाँ पता था कि मैं चौराहा बन जाऊँगा और कहाँ पता था कि मुझ पर धीरे-धीरे कुछ दुकानें उगती चली जाएँगी मैं तो एक सुनसान बगीचे का हिस्सा रहा जहाँ से एक रास्ता गुजरता था।... कितने-कितने हृदयों की धड़कनें होती हैं, उन्हें सुनना हो तो जरा अपने को तात्कालिक हलचलों से काटिए प्रलोभनों की दौड़ से थोड़ा विश्राम कीजिए और अपने भीतर के मनुष्य से कहिए कि थोड़ा जागे और कान लगाकर सुने कि मैं क्या कह रहा हूँ धुँआ नींद में कहानी नहीं सुनी जाती है। उधर दूसरी ओर ईंट के भट्टे का धुँआ आसमान में छा रहा था और आटे की चक्की पुक पुक पुक चिल्लाए जा रही थी। रह-रहकर शहर की ओर जाती गाड़ियों का हार्न जैसे पूछ रहा था यह क्या है भाई यह क्या है भाई?

'शरद आई' इस पुस्तक का अगला निबंध है जो शरद ऋतु का वर्णन करता है। शरद ऋतु आती है तो नवरात्र सहसा याद आ जाते हैं नवरात्र की जगमगाहट शरद ऋतु को जीवंत बना जाती है। लेखक ने इस निबंध के माध्यम से रामलीला के अविस्मरणीय अनुभव भी साझा किए हैं। विशनपुरा की रामलीला में एक ओर लीला चलती थी दूसरी ओर कुछ लोग रामचरित का गान कर रहे होते थे जबकि शहर की रामलीलाओं के परिदृश्य में फिल्मी या उसी अंदाज के गीत माइक पर चलते रहते हैं। गाँव की रामलीला सबके लिए थी। वहाँ टिकट नहीं था, पास नहीं था। वहाँ तो दिल का दिल के लिए खुला आमंत्रण था। हम देर रात को घर लौटते और सोते थे तो अगले दिन की रामलीला के सपने देखते थे। और वहीं रामलीला में नारियों के कंठ से रामकथा के लोकगीत गूँजते थे।

ए भरत वीर लौटि जा घर के तू वन-वन मेला तपसिया हथवाँ घू धनुहियाँ लिहले ना।

लेखक ने गाँव की रामलीला के साथ बनारस की रामलीला की भी चर्चा की है उसके साथ ही दुर्गा पूजा की बात करते हुए कवि कहते हैं कर्म में तो अपने पास से कुछ देना पड़ता है किंतु कर्महीन पूजा के प्रदर्शन से तो लोग चढ़ावा बटोरते हैं। यह समय-धर्म हो गया है फिर गाँव इस धर्म के पालन में पीछे क्यों रहें?

सांप्रदायिकता की आग में कभी पंजाब में लगता है कभी बंगाल तो कभी गुजरात में दंगे होते रहे हैं। लेखक ने 'दंगे के बीच गुजरात' शीर्षक निबंध में लिखा है कि हर दंगे के बाद जब कभी मैं अहमदाबाद गया हूँ तब वहाँ के संवेदनशील मित्रों और शिष्यों ने दंगे की त्रासदी का चित्र खींचा है। इस बार जाऊँगा तो कितना भयावह चित्र खींचा जाएगा यह सोचकर ही थर्रा उठता हूँ। मुसलमान मित्र और शिष्य मिलेंगे तो उनकी आँखों में आँखें डाल कर डर लगेगा। सच बात तो यह है कि गुजरात में काम करते हुए मुझे कभी अनुभव ही नहीं हुआ कि अमुक शिष्य या मित्र मुसलमान है पारसी है या ईसाई है या हिंदू सब मुझे गुजराती ही लगे। **(पृ. 111)**

और इसी निबंध के अंत में वे दर्ज करते हैं। मुझे विश्वास है कि दंगे के बीच भी कुछ संस्थाओं ने और मूल्य धर्मी लोगों ने यहाँ-वहाँ की आग की लपटों पर पानी की छोटी-छोटी धाराएँ फेंकने का प्रयत्न किया होगा किंतु ऐसे समाचार लोगों तक कहाँ आ पाते हैं? मीडिया के लिए तो सर्वग्रासी आग समाचार लगती है, उससे लड़ने वाली पानी की छोटी-छोटी धाराएँ नहीं। **(पृ. 113)**

शोर मत करो, आदमी सो रहे हैं! शीर्षक पढ़कर समझ नहीं आता कि कहाँ के लिए यह बात हो रही है। बात घर के लिए भी हो सकती है स्टेशन के लिए या अन्य किसी स्थान के लिए भी हो सकती है। श्री मिश्र जी इस निबंध में स्टेशन की बात कर रहे हैं जहाँ पर तमाम थके-हारे मजदूर आदि सो रहे हैं। इक्का-दुक्का आने-जाने वाले आ जा रहे हैं। ट्रेन आती है लोग उतरते हैं, निकल जाते हैं। जब वे ध्यान से सुनते हैं तो देखते हैं कि बाहर पार्क में उस क्षेत्र का एक पागल बैठा है और कह रहा है शोर मत करो आदमी सो रहे हैं। ऐसा लगता है कि वह किसी से बात कर रहा है परंतु वहाँ कोई भी नहीं है और यह बात लगातार किए जा रहा है। इसके बाद लेखक ट्रेन में सवार हो जाते हैं गंतव्य तक पहुँच जाते हैं लेकिन रास्ते भर उस पागल की बातें उसके दिमाग में उनके दिमाग में चलती रहती हैं। गाड़ी रुकती है तो लेखक आत्मालाप से जाग जाते हैं और शोर सुनाई पड़ता है नेता जी की जय नेता जी जिंदाबाद। अचानक शोर उमड़ पड़ता है जिसमें अनेक कुलि, मजदूर, प्लेटफार्म पर पड़े बीमार यात्री खोमचे वाले, अन्य सामान्य लोग अपने-अपने काम छोड़कर डूबे हुए हैं और मुझे लगने लगा कि यह प्लेटफार्म नहीं मेरा देश है। 131 पेज के इस निबंध संग्रह-'मेरे जाने के बाद' को पढ़कर मुझे लगा यह नवोदित निबंधकारों के लिए केवल एक पुस्तक नहीं बल्कि निबंध लेखन की पूरी पाठशाला है।

द्वारा हिंदी भवन
मो.-9826245286

छायाचित्रों में रामदरश मिश्र जी

पुस्तकों में रामदरश मिश्र जी

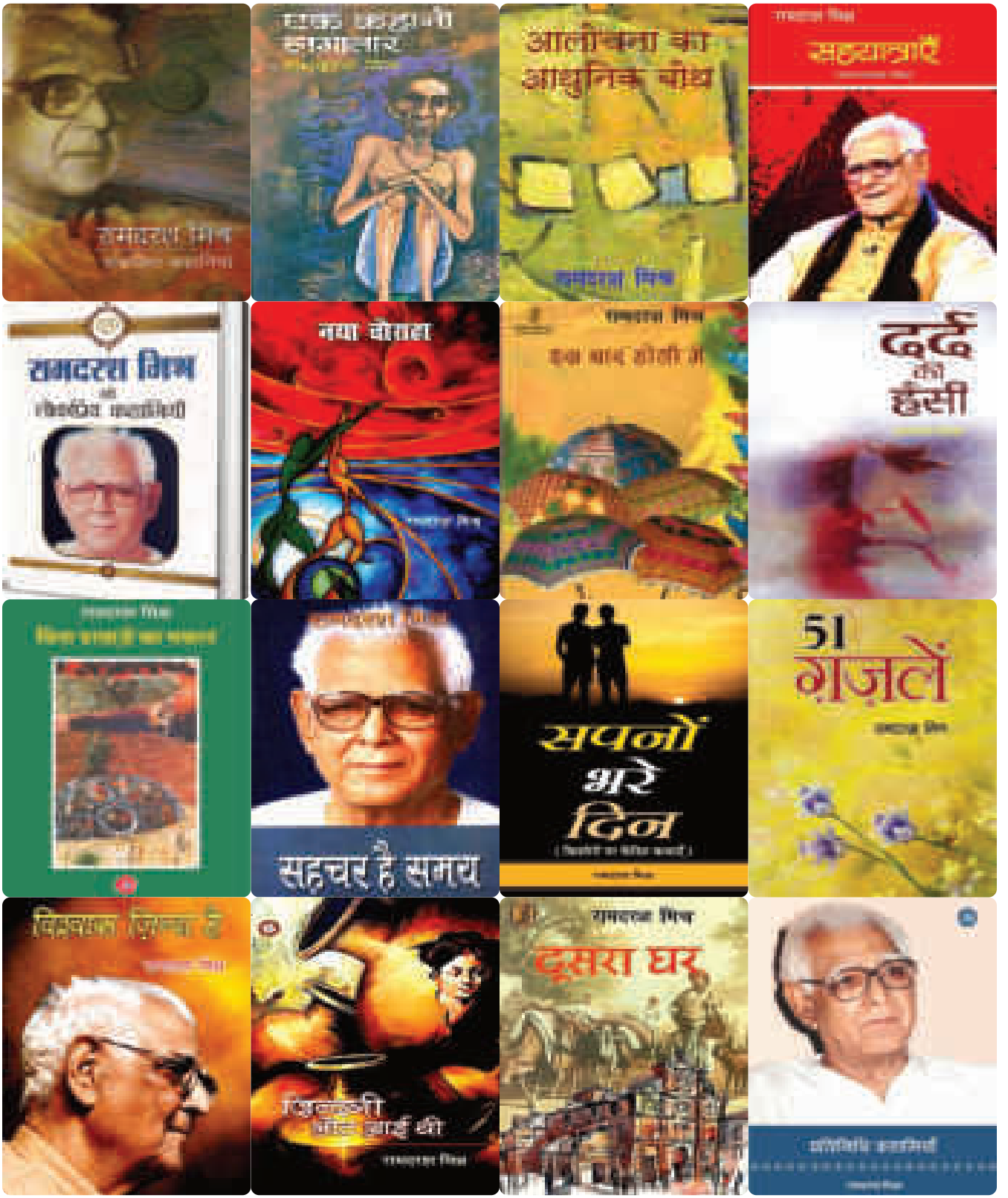

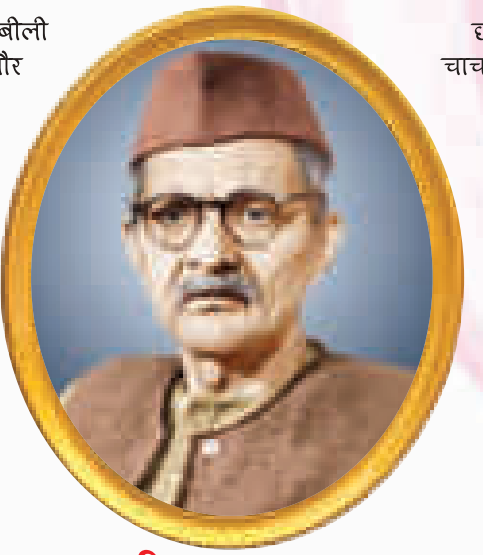

शिवपूजन सहाय

जन्म – 09 अगस्त 1893
प्रयाण – 21 जनवरी 1963

मँझोला कद। गठीला बदन। रोबीली आँखें। शिला जैसी छाती। घनी भौंहें और मूँछें। मुग्दर की तरह पीन-प्रबल भुजदण्ड। बृकोदर भीम का पेट और सुदामा की गरीबी। तब भी उन्नीसवीं और बीसवीं सदी का प्रथम चरण देखा था। लगभग सवा सौ साल की लम्बी ज़िन्दगी केवल पौरुष और पराक्रम के चमत्कार देखने-दिखाने में ही बीती।

गाँव के जेठ-रैयत धनी जमीन्दार सुरेश पाँड़े नम्बरी शौकीन। बैठक का बुलन्द चौतरा, टीकासन बराबर ऊँचा। उस पर एक हजार रुपये से कम का घोड़ा कभी न बँधा। कभी-कभी खुद घोड़ा फेरने निकलते। मस्ताने घोड़े का रोम-रोम फड़कता रहता। खुलते ही मोर-सा नाचने लगता। कोड़ा तो कभी बरदाश्त ही न करता।

महेश पाँड़े को जो कुछ जुरता उसी से पेट पालते। जब कोई अच्छी चीज खाने की तबियत होती, सुरेश पाँड़े के पास पहुँच जाते। उन्हें देखते ही, मालिक का इशारा समझ, इधर रईस झट जीन कस कर घोड़ा तैयार करता, उधर में घी का कड़ाह और दूध का हण्डा चढ़ जाता।

महेश पाँड़े का प्रिय भोजन था मालपुआ, तस्मई मखाने की खीर, बेसन का लड्डू। पेट और जीभ में कभी पटरीन बैटती। पेटू और चटोर का बलवान महेश पाँड़े का प्रिय भोजन था मालपुआ, तस्मई मखाने की खीर, बेसन का लड्डू। पेट और जीभ में कभी पटरी न बैटती। पेटू और चटोर का बलबान होना दुलभ है। पर महेश पाँड़े को विधाता ने अपबाद बनाया।

सुरेश पाँड़े एक ही छलाँग में घोड़े की पीट पर रान जमा देते। महेश पाँड़े घोड़े की लगाम थाम साथ-साथ बतियाते चलते।

... चाचाजी, नदी-तीर के अखाड़े में नरेश और गोपाल भिड़े, मगर गोपाल करकस पड़ा, दो ही पकड़ में नरेश को आसमान दिखा दिया। ... इस गाँव में बस भैरो काका ही असली किसान है। तड़के ही कुदाल लेकर ऊख का खेत गोड़ने निहुरते हैं तो दो घड़ी दिन चढ़े तक कमर सीधी नहीं करते। ... जोधा लुहार की लुहसार में हाथ पर बड़ी निहाई उछालने की बाजी रामधन ने जीती है। वह गाँव में अच्छा पट्टा तैयार हो रहा है। ...'भुआल भाई ने तो कभी तन में अखाड़े की धूल नहीं रमायी, गाँव-भर के लैंगोटबन्द जवानों को चुनौती देकर पाँचों अँगुलियों के सहारे दुनाली बन्दुक और लोहबन्द लाठी उठा लेते हैं। यहाँ नहीं चाचाजी एक ही मुक्के से बेल ओर कैथे फोड़ना, दांतों से सुपारी तोझना, साँड़-भैंसे के सींग पकड़ कर नथवाना तो उनके बायें हाथ का खेल हैं।'

महेश पाँड़े की ऐसी ही बातें सुनते और 'हूँ-हाँ' करते घुड़सवार सुरेश पाँड़े बस्ती में बाहर निकल आते और अचानक कह उठते, 'अच्छा महस, अपनी कथनी बंद करो, मैं तो अब चला।'

छूटते ही महेश पाँड़े भी बोल उठते, 'तो चाचाजी में भी आपके पास ही हूँ।'

इधर सुरेश पाँड़े घोड़े को ऐड़ लगाते, उधर महेश पाँड़े घोड़े के साथ दौड़ पड़ते। हवा से बातें करता, तब भी महेश पाँड़े उसकी गर्दन के सामने ही बने रहते। डेढ़ कोस की सरपट दौड़ में महेश पाँड़े कभी घोड़े से एक पग भी पीछे न रहते।

गाँव से डेढ़ कोस दूर नदी के तीन पहुँच, घोड़ा पुचकारते ही ठिठक जाता। सुरेश पाँड़े शाबास बेटा कहकर उसकी गर्दन थपथपाते और महेश पाँड़े उसके अयाल पकड़ कर फिर उसी तरह गाँव-भर की बातें कहते चलते।

'चाचाजी छकौड़ी के पेट में मसम-छई समा गई है। उस दिन भुलोटन के बथान में जाँघ भर लम्बे कटहल के सब कोये खाकर पचा गया और भुलोटन के नये मकान की दीवार पर, एक तरफ अकेले ही कन्धा लगाकर धरन चढ़ा दी, दूसरी तरफ गाँव-भर के मूँछ-उठान जवान लगे हुए थे, सब के दांत खट्टे हो गये।'

'भुलोटन भी बड़े जीवट का आदमी है चाचाजी, उस दिन अकलू के घर के अँधेरे कोने में बड़ा भारी गहुअन गाँए निकाले गए।'

'भुलोटन भी बड़े जीवट का आदमी है चाचाजी, उस दिन अकलू के घर के अँधेरे कोने में बड़ा भारी गहुअन साँप निकला फेटा मारे, फन काढ़े फुफकारने लगा तो इकट्ठे हुए लोगों का कलेजा दहल गया। मगर भुलोटन पहुँचते ही भीड़ छँट गई। वह झट मुट्ठी में गप-से उसका फन पकड़ कर बाहर खेंच लाया और इस मुँह को जमीन पर रगड़-रगड़ कर मार डाला। उसकी बाँह में लिपट कर इतने जोर से कस दिया मरने के बाद भी टुकड़े-टुकड़े कर जाने पर ही बाँह की मुश्क छोड़ी।'

चाचाजी, आप तो दिन-रात मिरदंग-सितार बजा ही मस्त रहते हैं, गाँव की खोज-खबर कहाँ लेते हैं, हीरा का हाल सुना है? एक दिन उसके बड़े भाई ने एक पसेरी चना देकर खेत पर भेजा। बहाँ बोने के लिए हलवाहा पहर-भर दिन चढ़े तक नहीं पहुँचा। हीरा नहर में मुँह धोकर सब चना फाँक गया। इसी पर बड़े भाई ने उसे अलग कर दिया है। खाली ऊसर और महुए के दो पेड़ उसके बाँटे पड़े हैं।'

इसी तरह की बातें करते हुए दोनों गाँव में पहुँच जाते। सुरेश पाँड़े अपने साथ ही महेश को नहलाते और खिलाते-पिलाते।

महेश पाँड़े की छककर खाने की वासना सुरेश पाँड़े के घर में ही तृप्त होती। कहीं और ठौर शायद ही उनकी गोटी जमती। पहले भर कठौता देख लेते सभी आसन जमाते। उन्हें हिया भर कोई चकाचक खिला दे, फिरकी टक्कर लगवा ले, एस एस आर भी जो करतब देखना चाहे देख ले।

पर खाने-खिलाने वाले तो कभी के चले गये।

bob World

आज़ादी का अमृत महोत्सव

एक ऐसा बचत खाता जो है पूरी तरह से डिजिटल.

खाते के साथ पाएं आकर्षक उपहार

B3 | प्लस खाता शून्य शेष | एज खाता न्यूनतम ₹ 25,000/- | अल्ट्रा खाता न्यूनतम ₹ 50,000/-

एक खाता जो आपकी तरह रहता है ऑनलाइन.

क्यूआर कोड स्कैन करें
bobworld.com पर जाएं

बैंक ऑफ़ बड़ौदा
Bank of Baroda
विजया VIJAYA | देना बैंक DENA

प्रेषक, प्रकाशक, मुद्रक कैलाशचन्द्र पंत, भोपाल द्वारा, स्वत्वाधिकारी मध्य प्रदेश राष्ट्र भाषा प्रचार समिति, हिन्दी भवन, श्यामला हिल्स, भोपाल से प्रकाशित एवं श्रेया ऑफसेट, 4 लाजपत भवन, जोन-1, एम.पी.नगर, भोपाल से मुद्रित।